सिध गोस्ट
और
बारह माहा

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 7
लेखक की ओर से 9
पाठकों से निवेदन 11

सिध गोस्ट 13
रामकली महला १ सिध गोस्ट 21
सिध गोस्ट: पुन: अवलोकन 154

बारह माहा: काव्य रूप 156
बारह माहा मांझ महला ५ 159
चेत 162
वैसाख 166
जेठ 170
आसाड़ 172
सावण 178
भादुइ 183
असुन 189
कतिक 192
मंघिर 196
पोख 199

माघ 202
फलगुण 207

बारह माहा तुखारी छंत महला १ 217
बारह माहा: एक संदेश 253

संदर्भ सूची 262
संदर्भ ग्रंथ 267
हमारे प्रकाशन 270

सिध गोस्ट

रचयिता

गुरु नानक देव जी (1469-1539 ई.) मध्यकाल के दौरान पंजाब में गुरुमत की धारा प्रवाहित करनेवाले पहले पूर्ण सतगुरु थे। आपकी गणना संसार के महान् पूर्ण पुरुषों में की जाती है। भाई गुरदास जी गुरु साहिब के बारे में लिखते हैं:

सतगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानण होआ।[1]

आप फ़रमाते हैं कि गुरु नानक देव जी के संसार में प्रकट होने से अज्ञानता का अंधकार दूर हुआ तथा हर तरफ़ सच्चे ज्ञान का प्रकाश फैल गया। भाई गुरदास जी ने यह संकेत भी किया है: 'बारह पंथ एकत्र कर गुरमुख गाडी राह चलाइआ।'[2] गुरु साहिब के उपदेश के कारण अनेक प्रकार के मत-मतांतरों में विभाजित लोग गुरुमत के सीधे और सच्चे मार्ग पर आ गए।

प्रभु प्राप्ति के सच्चे साधन और मार्ग का प्रचार करने के लिए गुरु नानक देव जी ने कई यात्राएँ कीं। आप द्वारा देश-विदेश में की गई इन यात्राओं को उदासियों का नाम दिया गया। गुरु साहिब देश की चारों दिशाओं में गए और विदेश में लंका, ईरान, इराक़, अफ़गानिस्तान तथा सऊदी अरब आदि भी गए। इन उदासियों के समय आप अनेक धर्म स्थानों पर गए तथा आपका अनेक विद्वानों, पुजारियों, योगियों, सिद्धों, नाथों, पीरों और फ़कीरों आदि से वार्तालाप हुआ। इस प्रकार अनेक स्थानों पर कई लोग गुरु साहिब के श्रद्धालु तथा अनुयायी बन गए।

इन उदासियों के पश्चात् गुरु नानक देव जी ज़िला गुरदासपुर में रावी दरिया के किनारे बसे कस्बे करतारपुर (पाकिस्तान) में रहने लगे। करतारपुर में आप स्वयं खेती करते थे और अपनी संगति में आनेवालों को भी हक़-हलाल की कमाई करने, बाँटकर खाने और नाम का अभ्यास करने का उपदेश देते थे। गुरु साहिब द्वारा सब धर्मों को एक समान प्रेम और आदर मिलता था। हिंदू और मुसलमान समान रूप से आपके प्रति श्रद्धा रखते थे।

गुरु नानक देव जी की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर भाई लहिणा जी भी करतारपुर आपकी संगति में आए तथा उन्होंने आपकी शरण ले ली। गुरु साहिब ने अपनी कृपा दृष्टि द्वारा भाई लहिणे को अपना ही रूप बना लिया। आपने निज धाम जाने से पहले अपने पुत्रों के बजाय अपने सच्चे शिष्य भाई लहिणा को सतगुरु का पद सौंपा तथा इनका नाम अंगद देव रखा। गुरु साहिब अपनी सांसारिक यात्रा पूरी करके 22 सितंबर, 1539 ई. को ज्योति-जोत समा गए।

वाणी

गुरु नानक देव जी के दिव्य व्यक्तित्व की तरह आपकी वाणी भी आध्यात्मिक ज्ञान का अलौकिक भंडार है। आकार, प्रकार तथा मात्रा की दृष्टि से गुरु साहिब का आध्यात्मिक काव्य बहुत विशाल तथा समृद्ध है। आप की प्रमुख रचनाएँ 'जप जी', 'सिध गोस्ट', 'दखणी ओअंकार', 'बारह माहा', 'पटी', 'माझ की वार', 'आसा की वार', तथा 'मलार की वार' हैं। इनके अलावा आप ने पहरे, अलाहणीआं, कुचजी-सुचजी, थिती आदि की भी रचना की है। आप की वाणी को बीस रागों में रखा गया है। वाणी का विवरण इस प्रकार है: मूल मंत्र-1; चउपदे-206; असटपदियाँ-121; छंत-24; पउड़ियाँ-116; सलोक-260; पहरे-2; अलाहणीआं-5; कुचजी-सुचजी-2; सोलहे-22; पदे-199; कुल 958।

गुरु नानक देव जी की वाणी दिव्य प्रकाश का सहज प्रवाह है। यह वाणी रहस्यमयी अनुभव को सिद्धांत, तर्क तथा भाव के सुंदर तालमेल में प्रस्तुत करती है। यह वाणी श्रद्धालु के धार्मिक भाव को तथा कला प्रेमी की सौंदर्य संबंधी भूख को तृप्त करती है। यह वाणी उस अगम सृजनहार को अनुभव

करने की युक्ति का वर्णन करती है तथा पाठक के लिए प्रेरणादायक मार्ग प्रशस्त करती है। इस वाणी का सत्य जितना सुंदर और रमणीय है, उतना ही प्रेरणादायक, आदर्शमय, कल्याणकारी तथा आशा से ओतप्रोत भी है।

संक्षिप्त परिचय

'जप जी', 'सिध गोस्ट' और 'दखणी ओअंकार' सैद्धांतिक दृष्टि से गुरु नानक साहिब की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वाणियाँ हैं। 'जप जी' और 'दखणी ओअंकार' में अनेक विषयों का वर्णन है। 'सिध गोस्ट' में योग के कुछ विषयों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

आदि ग्रन्थ में सम्मिलत संपूर्ण वाणी में 'सिध गोस्ट' का अपना विशिष्ट स्थान है। यह वाणी गोष्ठी शैली में लिखी गयी है। सिद्ध प्रश्न करते हैं तथा गुरु साहिब उत्तर देते हैं। इस वाणी द्वारा योगमत तथा गुरुमत का स्वरूप बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'सिध गोस्ट' नाम से यह संकेत मिलता है कि यह रचना गुरु साहिब की सिद्धों के साथ हुए संवाद पर आधारित है। गोष्ठी के अंत में 72 वीं पउड़ी में वे कहते हैं: 'सबदै का निबेड़ा सुण तू अउधू बिन नावै जोग न होई॥' गुरु साहिब योग में सिद्धि प्राप्त करने की युक्ति समझा रहे हैं और यही 'सिध गोस्ट' का वास्तविक उद्देश्य है। 'योग' संस्कृत की युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है मिलाप। आत्मा का परमात्मा के साथ मिलाप ही सच्चा योग है और यह योग या मिलाप नाम द्वारा होता है। संत बेणी जी अपने शब्द 'इड़ा पिंगुला अउर सुखमना'[3] में आत्मा की अंतर्मुख उन्नति का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए कहते हैं:

दसम दुआरा अगम अपारा परम पुरख की घाटी॥
ऊपर हाट हाट पर आला आले भीतर थाती॥
जागत रहै सो कबहु न सोवै॥ तीन तिलोक समाध पलोवै॥
बीज मंत्र लै हिरदै रहै॥ मनूआ उलट सुंन मह गहै॥
.....
अजर जरै सो निझर झरै॥ जगंनाथ सिउ गोस्ट करै॥[4]

आप फ़रमाते हैं कि आत्मा दसवें द्वार को पार करके प्रभु की हुज़ूरी में पहुँचकर उसके साथ गोष्ठी करती है। गुरु नानक साहिब 'सिध गोस्ट' की 33वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं: 'नाम रते सिध गोस्ट होए॥' आप नाम के अभ्यास द्वारा प्रभु के दरबार में पहुँचकर उसके प्रत्यक्ष दीदार कर लेने को ही गोष्ठी, ज्ञान या योग की पूर्णता स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से 'सिध गोस्ट' 'सफल मुलाक़ात' या 'पूर्ण मिलाप' का उल्लेख करती है। 'सिध गोस्ट' एक तरफ़ बाहरी गोष्ठी का वर्णन करती है तो दूसरी तरफ़ अंतर्मुख, सूक्ष्म रूहानी गोष्ठी का उल्लेख करती है।

सिध गोस्ट की रचना

पुरातन जनम साखी (साखी 52) के अनुसार पाँचवीं उदासी (यात्रा) के समय, गुरु साहिब की गोरख हटड़ी नामक स्थान पर सिद्धों के साथ मुलाक़ात हुई। मिहरबान वाली साखी में भी गुरु साहिब की गोरख हटड़ी में सिद्धों के साथ हुई मुलाक़ात का प्रसंग तो प्राप्त है, परंतु उसमें सिद्धों के साथ हुई गोष्ठी का उल्लेख नहीं है। भाई गुरदास जी ने गुरु नानक साहिब के जीवन पर आधारित लिखी अपनी पहली वार की 39 से 44 तक छः पउड़ियों में अचल बटाले में गुरु साहिब की सिद्धों के साथ हुई गोष्ठी का उल्लेख किया है।

विद्वानों ने 'सिध गोस्ट' के समय और स्थान के विषय में अलग-अलग विचार प्रकट किए हैं। कुछ विद्वानों ने ऐसा माना है कि यह गोष्ठी आंतरिक मंडलों में हुई है। वर्तमान युग के पाठक या श्रोता के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि गुरु साहिब की सिद्धों के साथ गोष्ठी आंतरिक आध्यात्मिक मंडलों में हुई या बाहरी जगत् में किसी विशेष समय तथा किसी विशेष स्थान पर हुई। उनका मुख्य उद्देश्य गुरु साहिब और सिद्धों के बीच संवाद के आधार पर योगमत और गुरुमत का परस्पर संबंध समझना है। यह बात स्पष्ट है कि यह गोष्ठी जब भी और जहाँ भी हुई हो, एक काव्य रचना है। योगियों के प्रश्न और गुरु साहिब के उत्तर, गुरु साहिब की भाषा और शैली में है।

'सिध गोस्ट' के आरंभ में यह वर्णन आता है: 'सिध सभा कर आसण बैठे संत सभा जैकारो॥' सिद्ध गुरु साहिब के दीवान में आसन लगाकर बैठ गए और प्रभु तथा संतों की महिमा के साथ गोष्ठी का आरंभ हो गया। 'सिध गोस्ट' की चौथी पउड़ी में योगी चरपट नाथ प्रश्न करते हैं:

दुनीआ सागर दुतर कहीऐ किउ कर पाईऐ पारो॥
चरपट बोलै अउधू नानक देहो सचा बीचारो॥

योगी चरपट नाथ संसाररूपी सागर से पार होने का साधन पूछते हैं और गुरु साहिब उसके प्रश्न के उत्तर में कहते हैं:

सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥

सातवीं पउड़ी इस प्रकार है:

हाटी बाटी रहह निराले रूख बिरख उदिआने॥
कंद मूल अहारो खाईऐ अउधू बोलै गिआने॥
तीरथ नाईऐ सुख फल पाईऐ मैल न लागै काई॥
गोरख पूत लोहारीपा बोलै जोग जुगत बिध साई॥

लोहारीपा योगी अपने आपको गोरखनाथ जी का शिष्य बताते हुए योगमत की प्रमुख मान्यताओं का उल्लेख करते हैं। उनके कथन से स्पष्ट हो जाता है कि योगी बाहरी रहनी पर ज़ोर देते हैं। गुरु साहिब उसके उत्तर में तीन पउड़ियों द्वारा गुरुमुख की अंतर्मुख रहनी का उल्लेख करते हैं।

उपर्युक्त तीन प्रसंगों के बाद गोष्ठी में किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं लिया गया। कुछ प्रसंगों में सामूहिक प्रश्न किए गए हैं और गुरु साहिब की तरफ़ से उनके उत्तर दिए गए हैं। कुछ प्रसंगों में गुरु साहिब वक्ता के तौर पर विस्तारपूर्वक उपदेश देते हैं और योगी श्रोता हैं।

पाठक को गुरु साहिब की 'सिध गोस्ट' को ऐसी रचना के रूप में देखना चाहिए, जिसमें आपने अलग-अलग समय और स्थान में योगियों के साथ हुई अनेक मुलाक़ातों के आधार पर उनकी तरफ़ से प्रकट किए

गए सिद्धांतों और गुरु साहिब की विचारधारा से संबंधित पूछे गए अनेक प्रश्नों को अपने उत्तरों सहित, एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है। इससे पाठक को योगमत को योगियों की दृष्टि से समझने और योगमत के प्रसंग में गुरु साहिब के फ़लसफ़े (विचारधारा) को समझने में सहायता मिलेगी।

स्वरूप

'सिध गोस्ट' में कुल 73 पद यानी पउड़ियाँ हैं। पहले 18 पद चार-चार पंक्तियों के और 19 से 73 तक के पद छः-छः पंक्तियों के हैं। अलग-अलग पउड़ियों में मात्राओं की संख्या अलग-अलग है। किसी पद की पंक्तियाँ छोटे आकार की हैं और किसी की बहुत बड़े आकार की हैं। पहले पद के बाद रहाउ (टेक) की पंक्तियों में संपूर्ण रचना का सार समझाया गया है।

इस वाणी के नाम से स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह सिद्धों और गुरु नानक देव जी के बीच हुई वार्तालाप पर आधारित है। इस रचना में योगी प्रश्न करते हैं और गुरु साहिब उनके उत्तर देते हैं। कई बार गुरु साहिब के उत्तर के बाद योगी फिर से प्रश्न करते हैं। इस संवाद का मुख्य उद्देश्य योगमत और गुरुमत के मूल सिद्धांतों पर प्रकाश डालना है। प्रश्न कई प्रकार के हैं और कई प्रश्नों के साथ गुरु साहिब ने अपनी तरफ़ से अनेक बातों को विस्तारपूर्वक समझाया है। विशेष रूप से 'सिध गोस्ट' के आरंभ से अंत तक हुए प्रश्नों और उत्तरों को विचार की दृष्टि से इस तरह बाँट सकते हैं:

1. प्रभु के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति के बारे में हुई चर्चा: पउड़ी 12, 14, 20, 66
2. जीव, सृष्टि की रचना और इसके अंत के बारे में हुई चर्चा: पउड़ी 22 और 68
3. सृष्टि की वास्तविकता और इसमें व्याप्त माया के खेल के विषय में हुई चर्चा: पउड़ी 14
4. शब्द यानी नाम के बारे में हुई चर्चा: पउड़ी 20, 32-37, 40-42, 48, 55, 64
5. नाम की प्राप्ति कहाँ से हो? पउड़ी 1, 6, 10-11, 20, 43

6. गुरुमुख और मनमुख के विषय में हुई चर्चा: 27-31
   अनहत सुन्न, अनहद शब्द, गुप्ती वाणी, हृदय कँवल के विषय में हुई चर्चा: 21, 52, 53, 61, 64, 66

मुख्य विषयों के साथ-साथ पृष्ठभूमि में योगमत और गुरुमत के मूल भाव के बारे में स्थान-स्थान पर अनेक संकेत दिए गए हैं।

'जप जी' की तरह 'सिध गोस्ट' की भाषा भी गंभीर है। 'जप जी' की तरह इसमें भी कई सूत्र प्राप्त हैं। इसमें योगमत और गुरुमत की शब्दावली का मिश्रण है। संपूर्ण चर्चा इन दोनों के प्रसंग में हो रही है, इसलिए अन्य कई रचनाओं के विपरीत इसमें अरबी और फ़ारसी की शब्दावली का अधिक प्रयोग नहीं किया गया। योगमत और गुरुमत की मिश्रित शब्दावली द्वारा योगमत और गुरुमत के सार तत्त्व तक पहुँचने का प्रयत्न किया गया है।

शैली

'सिध गोस्ट' को सरसरी नज़र से देखने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि संपूर्ण गोष्ठी में गुरु साहिब ने कहीं भी खंडनात्मक शैली का प्रयोग नहीं किया। गुरु साहिब सिद्धों, नाथों और योगियों के विचारों को अस्वीकार किए बिना ही अपने विचार प्रकट करते हैं। गुरु साहिब योगियों की बात बड़े ध्यान से सुनते हैं, बहुत नम्रता और प्रेम से उन्हें अपनी बात समझाते हैं। योगी भी अपनी बात अहंकार या प्रशंसा के भाव से नहीं करते। योगियों की प्रत्येक बात से सम्मान का रंग झलकता है और गुरु साहिब की प्रत्येक बात में दिव्य कोमलता, नम्रता, दया और प्रेम का प्रकाश झरता है। भाई गुरदास जी लिखते हैं:

> बाबे कीती सिध गोस्ट सबद सांत सिधी विच आई।
> जिण मेला सिवरात दा खट दरसन आदेस कराई।
> सिध बोलन सुभ बचन धन नानक तेरी वडी कमाई।
> वडा पुरख परगटिआ कलिजुग अंदर जोत जगाई॥[5]

गुरु साहिब द्वारा प्रकट किए गए शब्द के सिद्धांत ने सिद्धों के सब संशय दूर कर दिए और उनके मन शांत हो गए। सिद्धों ने गुरु साहिब के प्रति अति कोमल शब्दों द्वारा प्रेम और सम्मान के भाव प्रकट किए। उन्होंने गुरु साहिब की ऊँची आध्यात्मिक अनुभूति की प्रशंसा की। गुरु नानक साहिब को मानवता के उद्धार के लिए कलियुग में पिता परमेश्वर द्वारा प्रज्ज्वलित की गई निर्मल ज्ञान की ज्योति कहकर सराहा है। इससे पता चलता है कि गुरु साहिब जिसे भी सत्य का ज्ञान देते थे प्रेम, नम्रता और दया के भाव से देते, जिस कारण स्वत: ही वे आपके सामने नतमस्तक हो जाते और आपके वचन भी उन श्रोताओं के हृदय की गहराई में अपना स्थायी घर बना लेते थे।

गुरु साहिब की वाणी में प्राय: प्रभु, रचना, हुक्म, कर्म सिद्धांत, आवागमन आदि का उल्लेख तथा प्रभु प्राप्ति के साधन और मार्ग का वर्णन साथ-साथ चलता है, जबकि 'सिध गोस्ट' में प्रभु, रचना, कर्म सिद्धांत और आवागमन आदि विषय गौण हैं, क्योंकि इनके बारे में गुरु साहिब और सिद्धों में अधिक मतभेद नहीं है। गोष्ठी में प्रभु प्राप्ति के साधन और मार्ग का वर्णन है। प्रभु की प्राप्ति का साधन शब्द यानी नाम है जिसकी सूझ सतगुरु द्वारा होती है। यही कारण है कि गोष्ठी में बार-बार सतगुरु और शब्द पर बल दिया गया है।

रामकली महला १
सिध गोस्ट

१ ओ सतगुर प्रसाद

सिध सभा कर आसण बैठे संत सभा जैकारो॥
तिस आगै रहरास हमारी साचा अपर अपारो॥
मसतक काट धरी तिस आगै तन मन आगै देउ॥
नानक संत मिलै सच पाईऐ सहज भाए जस लेउ॥१॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 938-946

शब्दार्थ: रहरास=नमस्कार; **अपर अपारो**=बेअंत, अनंत; **सच**=प्रभु; **सहज भाए**=सहज रूप से।

सरलार्थ: सिद्ध सभा में आसन लगाकर बैठ गए हैं और इस सभा में प्रभु की जय-जयकार हो रही है। (सभा में शामिल सब लोग कहते हैं) हम संतों की सभा को नमस्कार करते हैं। उस अनुपम, अविनाशी प्रभु के आगे हमारी विनती है। हम चाहते हैं कि तन-मन उन पर न्योछावर कर दें। हे नानक! संतों की संगति द्वारा सुगमता से उस सच्चे के साथ मिलाप हो जाता है और (उसके दरबार में पहुँचने की) सच्ची बड़ाई प्राप्त हो जाती है।

❖ ये आरंभिक पंक्तियाँ उस शांत और प्रेमपूर्ण वातावरण की तरफ़ ध्यान आकर्षित करती हैं, जिसमें सारा वार्तालाप हुआ। इन पंक्तियों में प्रभु और संतों की महिमा की गई है और साथ ही यह भाव भी दृढ़ करवाया गया है कि संत-सतगुरु की शरण द्वारा सुगमता से प्रभु के साथ मिलाप का गौरव

प्राप्त हो जाता है। शेष गोष्ठी की 40 से अधिक पउड़ियों में अनेक बार गुरु, सतगुरु और गुरुमुख की महिमा की गई है। संपूर्ण गोष्ठी में गुरुमत का आधार, गुरु और उस की प्रभु से मिलाप करवानेवाली, शब्द यानी नामरूपी युक्ति की ध्वनि गूँजती सुनाई देती है।

किआ भवीऐ सच सूचा होए॥
साच सबद बिन मुकत न कोए॥१॥रहाउ॥

सरलार्थः (घर छोड़कर) जगह-जगह भटकने से क्या मिलता है? जो भी निर्मल होता है, सत्य (प्रभु से मिलाप) द्वारा होता है। किसी को भी सच्चे शब्द के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

❖ प्रभु और पूर्ण संतों की महिमा का गुणगान करने के बाद गुरु साहिब रहाउ की इन पंक्तियों में अपनी विचारधारा का सार बयान करते हैं। आप कहते हैं: हमारा वास्तविक उद्देश्य हरि की प्राप्ति है, उसके दरबार में स्वीकार होना है। यह कार्य स्थान-स्थान पर भ्रमण करने या तीर्थों आदि पर जाने से कैसे पूर्ण हो सकता है? जब तक हम सच्चे हरि के साथ नहीं जुड़ते, तब तक हम सच्चे और निर्मल कैसे हो सकते हैं? हरि के साथ मिलाप की बड़ाई यानी मुक्ति केवल सच्चे शब्द के साथ लिव जोड़ने से ही प्राप्त हो सकती है।

गुरु साहिब पहली पंक्ति में सत्य को निर्मलता की प्राप्ति का साधन बताते हैं और दूसरी पंक्ति में शब्द को मुक्ति का साधन स्वीकार करते हैं। स्पष्ट है कि आप प्रभु और शब्द में कोई अंतर नहीं मानते। प्रभु या शब्द को आत्मा की निर्मलता, प्रभु के मिलाप और मुक्ति का साधन समझने में कोई अंतर नहीं है।

सरसरी नज़र से देखने पर उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रसंग रहित प्रतीत होती हैं, परंतु वास्तव में गुरु साहिब ने इन दो पंक्तियों द्वारा न केवल आगे होने वाले संवाद के लिए आधार क़ायम कर दिया है, बल्कि अपनी विचारधारा का सार भी बयान कर दिया है। गुरु साहिब ने प्रभु से मिलाप और मुक्ति की प्राप्ति का समान अर्थों में प्रयोग किया है।

योगियों का उद्देश्य भी मुक्ति की प्राप्ति है और गुरु साहिब की विचारधारा भी मुक्ति की प्राप्ति से संबंध रखती है। योगी मुक्ति की प्राप्ति के लिए देश-देशांतर के भ्रमण पर बल देते हैं और तीर्थों के स्नान को पवित्रता की प्राप्ति का साधन मानते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं: जगह-जगह भटकने से और तीर्थों पर स्नान करने से मन की निर्मलता प्राप्त नहीं हो सकती। मन और आत्मा तभी स्थिर और निर्मल होते हैं जब वे प्रभुरूपी सत्य से जुड़ते हैं। सत्य से जुड़ने का साधन प्रभु का सच्चा शब्द यानी सच्चा नाम है। इसलिए जब तक हम शब्द (नाम) के साथ जुड़कर प्रभु में अभेद नहीं होते, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

गुरु साहिब 'आसा की वार' में इस भाव को दो तरह से प्रकट करते हैं:

कहो नानक सच धिआईऐ॥ सुच होवै ता सच पाईऐ॥
.....
सूचे एह न आखीअह बहन जि पिंडा धोए॥
सूचे सेई नानका जिन मन वसिआ सोए॥[1]

प्रभु का ध्यान करना चाहिए क्योंकि इससे ही सच्ची पवित्रता प्राप्त होती है। शरीर की निर्मलता से मन और आत्मा निर्मल नहीं होते। जिनके मन में उस सच्चे का निवास हो जाता है, वे पूर्णतः निर्मल हो जाते हैं।

इससे पता चलता है कि दोनों पक्षों का उद्देश्य एक ही है, परंतु उद्देश्य की प्राप्ति की युक्ति के बारे में मतभेद है। इस तरह से ये दोनों पंक्तियाँ गोष्ठी की नींव के समान हैं। इस गोष्ठी का संपूर्ण विस्तार उपर्युक्त दोनों पंक्तियों में प्रकट विचार पर आधारित है।

कवन तुमे किआ नाउ तुमारा कउन मारग कउन सुआओ॥
साच कहउ अरदास हमारी हउ संत जना बल जाओ॥
कह बैसहो कह रहीऐ बाले कह आवहो कह जाहो॥
नानक बोलै सुण बैरागी किआ तुमारा राहो॥२॥

शब्दार्थः सुआओ=उद्देश्य, मनोरथ; **कह बैसहो**=कहाँ रहते हो।

सरलार्थ: योगी पूछते हैं: तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम किस मार्ग पर चलनेवाले हो और तुम्हारा वास्तविक उद्देश्य क्या है? गुरु साहिब मीठे और नम्रता भरे शब्दों में कहते हैं: मैं सत्य कहता हूँ कि मेरी उस कर्ता के आगे सदैव यही प्रार्थना है कि मैं संतों पर बलिहारी जाऊँ। गुरु साहिब का प्रेम और नम्रतापूर्ण उत्तर सुनकर योगी प्रभावित हो जाते हैं और विनम्रता से पूछते हैं: हे बाले! तुम कहाँ रहते हो? तुम कहाँ से आए हो और कहाँ जाओगे? तुम्हारा मार्ग क्या है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

घट घट बैस निरंतर रहीऐ चालह सतगुर भाए॥
सहजे आए हुकम सिधाए नानक सदा रजाए॥
आसण बैसण थिर नाराइण ऐसी गुरमत पाए॥
गुरमुख बूझै आप पछाणै सचे सच समाए॥ ३॥

शब्दार्थ: बैस=विराजमान।

सरलार्थ: आप समझाते हैं: जो प्रभु प्रत्येक हृदय में विराजमान है, हमने उसमें अपने-आपको लीन कर दिया है। हम सदा सतगुरु के भाणे और उपदेश पर चलते हैं। हम (बिना किसी बंधन या दबाव के) सहज रूप से संसार में आए हैं और प्रभु के हुक्म द्वारा सहज ही वापस उसके पास चले जाएँगे। हम सदा उस कुल मालिक की रज़ा में ख़ुश रहते हैं। वह नारायण स्वयं भी निश्चल है और उसका आसन भी निश्चल है। प्रभुरूपी निश्चल सत्य की सूझ सतगुरु के उपदेश पर चलकर प्राप्त होती है। जो साधक गुरुमुखों की सहायता से अपने अस्तित्व की पहचान कर लेता है, वह उस प्रभुरूपी सत्य में समा जाता है।

❖ तीसरी पउड़ी में प्राप्त गुरु साहिब का उत्तर पहली पउड़ी के बाद की रहाउ की पंक्तियों में प्रकट भाव को ही आगे बढ़ाता है। संपूर्ण गोष्ठी में इस पउड़ी का विशेष महत्त्व है। योगी गुरु साहिब से उनके नाम, गाँव आदि के बारे में पूछते हैं। गुरु साहिब उत्तर देते हैं: ***घट घट बैस निरंतर रहीऐ चालह सतिगुर भाए॥***—आप अपना असली स्वरूप अपनी आत्मा को मानते हैं।

इसी प्रकार आप मायामय संसार को नहीं, प्रभु के धाम को वास्तविक निज घर स्वीकार करते हैं। ***सहजे आए हुकम सिधाए नानक सदा रजाए॥***—गुरु साहिब बहुत सूक्ष्म ढंग से अपने वास्तविक स्वरूप और संसार में आने के अपने वास्तविक प्रयोजन की तरफ़ संकेत कर देते हैं। इस कथन से संकेत मिलता है कि गुरु साहिब कर्मों से बँधे हुए इस संसार में नहीं आए, बल्कि प्रभु के हुक्म से उस द्वारा सौंपे गए दिव्य कार्य की पूर्ति के लिए आए हैं और उस कार्य की पूर्ति के बाद निज घर वापस चले जाएँगे।

आसण बैसण थिर नाराइण ऐसी गुरमत पाए॥
गुरमुख बूझै आप पछाणै सचे सच समाए॥

आप कहते हैं कि हमारा वास्तविक ठिकाना उस निश्चल प्रभु में है। अभिप्राय यह है कि नि:संदेह देखने में तो हम शरीर में हैं, परंतु हमारा ध्यान सदैव प्रभु में टिका रहता है। हम जिस प्रभु के भेजे हुए यहाँ आए हैं, उस द्वारा सौंपा हुआ कार्य करते हुए, सतगुरु के उपदेशानुसार अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान द्वारा, वापस उसमें ही समा जाएँगे। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

जनम मरण दुहहू मह नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दान दे भगती लाइन हर सिउ लैन मिलाए॥[2]

साधारण जीव कर्मों से बँधे हुए संसार में आते हैं, लेकिन संत-सतगुरु प्रभु के हुक्म से दूसरे जीवों के कल्याण के लिए संसार में आते हैं। वे जीवों को प्रभु प्राप्ति का सच्चा मार्गदर्शन करके आवागमन के चक्कर से मुक्त कर देते हैं।

दुनीआ सागर दुतर कहीऐ किउ कर पाईऐ पारो॥
चरपट बोलै अउधू नानक देहो सचा बीचारो॥
आपे आखै आपे समझै तिस किआ उतर दीजै॥
साच कहहो तुम पारगरामी तुझ किआ बैसण दीजै॥ ४॥

शब्दार्थ: **दुतर**=जिसे पार करना कठिन हो; **पारगरामी**=जो पार जा चुका है।

सरलार्थ: चरपट योगी, गुरु साहिब से पूछते हैं: हे अवधूत नानक! यह कहा जाता है कि संसाररूपी सागर को पार करना बहुत कठिन है। इस संदर्भ में आप सच्चा विचार प्रकट करिये कि संसाररूपी सागर को कैसे पार किया जा सकता है? गुरु साहिब प्रेमपूर्वक उत्तर देते हैं: जो स्वयं ही यह प्रश्न करता है, परंतु इस सत्य को समझता भी है कि संसार सागर को पार करना कठिन है, उसे और क्या उत्तर दिया जाए? गुरु साहिब कहते हैं: मैं सत्य कहता हूँ कि तुम तो संसार सागर को पार कर चुके हो, फिर तुम्हें इसके बारे में समझाने की क्या आवश्यकता है?

गुरु साहिब प्रश्न पूछनेवाले योगी की बड़ाई करते हैं। आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि वास्तव में आपको मुझसे कुछ भी पूछने की आवश्यकता नहीं, फिर भी मैं संक्षेप में अपने विचार प्रकट कर देता हूँ।

जैसे जल मह कमल निरालम मुरगाई नै साणे॥
सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥
रहहे इकांत एको मन वसिआ आसा माहे निरासो॥
अगम अगोचर देख दिखाए नानक ता का दासो॥५॥

शब्दार्थ: **नै साणे**=नदी में; **अगोचर**=इंद्रियों की पहुँच से परे।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: कमल का फूल पानी में रहता हुआ भी उससे निर्लेप रहता है, मुर्ग़ाबी पानी में रहती हुई भी अपने पंख भीगने नहीं देती। उसी प्रकार सुरत को अंदर प्रभु के शब्द के साथ जोड़कर, जीवात्मा भवसागर से पार हो जाती है। हे सिद्धो! नाम का अभ्यास ही भवसागर से पार जाने का वास्तविक साधन है।

गुरु साहिब समझाते हैं: भक्त के मन में भगवान् इस तरह से बस जाना चाहिए कि वह संसार में रहता हुआ भी इसकी आशा-तृष्णा से निर्लेप रहे। हम उनके दास हैं, जो स्वयं अंदर से प्रभु का दर्शन करते हैं और दूसरों को भी उसका दर्शन करवाते हैं।

❖ ***जैसे जल मह कमल निरालम मुरगाई नै साणे॥***
सुरत सबद भव सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि योग और त्याग दोनों का संबंध मन-आत्मा से है, शरीर से नहीं। कमल की जड़ें पानी और कीचड़ में होती हैं, परंतु फूल सदा इनसे ऊपर रहता है। मुर्ग़ाबी सदैव पानी में रहती है, परंतु उसके पंख कभी भीगते नहीं। इसी प्रकार जो साधक अपनी सुरत को शब्द यानी नाम के साथ जोड़ लेता है, वह मायामय संसार में रहता हुआ भी इससे निर्लेप रहता है और भवसागर से पार हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

ए मन मेरिआ बिन पउड़ीआ मंदर किउ चड़ै राम॥
ए मन मेरिआ बिन बेड़ी पार न अंबड़ै राम॥
पार साजन अपार प्रीतम गुर सबद सुरत लंघावए॥
मिल साधसंगत करह रलीआ फिर न पछोतावए॥[3]

गुरु साहिब बहुत सुंदर उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार महल पर चढ़ने का साधन सीढ़ियाँ हैं और दरिया को पार करने का साधन नाव है, उसी प्रकार संसार सागर के इस किनारे पर रह रही जीवात्मा (सुरत) को इसके पार (सचखण्ड) निवास कर रहे प्यारे प्रियतम से मिलाने का साधन, सतगुरु का शब्द है। शब्द सचखण्ड से आ रहा है। इसलिए सुरत शब्द में लीन होकर सहज ही वियोग का सागर पार करके अपने प्रियतम के साथ मिलाप कर लेती है और लोक-परलोक दोनों में सुखी हो जाती है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

साकत नर सबद सुरत किउ पाईऐ॥
सबद सुरत बिन आईऐ जाईऐ॥
नानक गुरमुख मुकत पराइण हर पूरै भाग मिलाइआ॥[4]

आप सावधान करते हैं कि गुरुमुख लोग सुरत को अंदर शब्द के साथ जोड़कर सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, परंतु मनमुख सदैव आवागमन के दु:खदायी चक्कर से बँधे रहते हैं।

गुरु साहिब अपनी विचारधारा के इस महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालते हैं कि सुरत को संसार से उपराम कर लेना ही सच्चा त्याग है और इसे शब्द द्वारा प्रभु के साथ जोड़ देना ही सच्चा योग है। आप समझाते हैं कि इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि हम संसार में रह रहे हैं या जंगल में। फ़र्क़ इस बात से पड़ता है कि हमारा मन कहाँ है और इसमें किसका प्रेम है। जिस हृदय में प्रभु का प्रेम समा जाता है, वह संसार के मोह से मुक्त हो जाता है। जो अंतर में शब्द के साथ जुड़ा हुआ है, वह माया में रहता हुआ भी इसकी आशा-तृष्णा से निर्लेप है। वह सुरत को शब्द के साथ जोड़कर सहज रूप से भवसागर से पार हो जाता है।

रहहे इकांत एको मन वसिआ आसा माहे निरासो॥—गुरु साहिब योग में सिद्धि के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत कर रहे हैं। आप कहते हैं: जंगलों में जाने या घर-गृहस्थी के त्याग की आवश्यकता नहीं, बल्कि मन को संसार के मोह से निर्लेप रखने की आवश्यकता है। मन इस प्रकार प्रभु के प्रेम में सराबोर होना चाहिए कि इसमें संसार के मोह के लिए कोई स्थान ही न रहे। आप समझा आए हैं कि जब सुरत, शब्द में लीन हो जाती है तो यह अपने-आप ही शारीरिक और मायामय जगत् के प्रभाव से मुक्त हो जाती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सो इकांती जिस रिदा थाए॥ सोई निहचल साच ठाए॥[5]

आप समझाते हैं कि एकांत का संबंध शरीर के साथ नहीं, ध्यान या मन के साथ है। जिसका ध्यान यानी मन अंदर अपने निज घर में स्थिर हो गया है, उसके लिए प्रत्येक स्थान ही एकांत है।

अगम अगोचर देख दिखाए नानक ता का दासो॥—आप फ़रमाते हैं कि योग में सिद्धि के लिए ऐसे पूर्ण पुरुष की शरण लेनी चाहिए जो स्वयं उस अगम-अपार प्रभु के साथ मिलाप कर चुका हो और दूसरे साधकों को भी ऐसा करवाने का सामर्थ्य रखता हो। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

एको सबद वीचारीऐ अवर तिआगै आस॥
नानक देख दिखाईऐ हउ सद बलिहारै जास॥[6]

आप कहते हैं कि जो गुरुमुख अन्य सभी साधनों का त्याग करके केवल शब्द का आश्रय लेता है और स्वयं प्रभु के दर्शन करके दूसरों को भी उसके दर्शन करवा देता है, हम उस पर बलिहारी जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सत पुरख जिन जानिआ सतिगुर तिस का नाउ॥
तिस कै संग सिख उधरै नानक हर गुन गाउ॥[7]

जो महापुरुष स्वयं प्रभु के साथ मिलाप कर चुका है, वही सच्चा सतगुरु है और उसकी संगति में ही प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप किया जा सकता है।

सुण सुआमी अरदास हमारी पूछउ साच बीचारो॥
रोस न कीजै उतर दीजै किउ पाईऐ गुर दुआरो॥
इह मन चलतउ सच घर बैसै नानक नाम अधारो॥
आपे मेल मिलाए करता लागै साच पिआरो॥६॥

शब्दार्थ: चलतउ=चंचल, अस्थिर; **बैसै**=बैठ जाए, निश्चल हो जाए।

सरलार्थ: योगी कहते हैं: स्वामी जी! हमारी यह विनती है कि हम आपका सच्चा उपदेश सुनना चाहते हैं। हमारी बात का बुरा न मानना। हमें विस्तारपूर्वक समझाओ कि ('आपे मेल मिलाए' वाले) गुरु का द्वार कैसे प्राप्त हो? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि आवश्यकता इस बात की है कि चंचल मन अपने घर में टिककर बैठ जाए और इसे अंदर से नाम का आधार मिल जाए। (यह अवस्था गुरु की सहायता से प्राप्त होती है और) वह कर्ता स्वयं सतगुरु से मिलाता है। जब सतगुरु से मिलाप हो जाता है तो हृदय में प्रभु का प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

❖ योगियों ने अपनी बात बड़ी दृढ़ता से आरंभ की थी। गुरु साहिब के साथ संक्षिप्त वार्तालाप के बाद वे प्रेम और नम्रता के भाव से उन्हें 'सुआमी' कहकर संबोधित कर रहे हैं और अपने प्रश्न को 'अरदास' का नाम देते हैं। योगी पूछते हैं कि आपने यह तो कह दिया कि प्रभु के साथ मिलाप केवल वह गुरु करवा सकता है, जो स्वयं प्रभु के साथ मिलाप कर चुका हो और जीवात्मा को भी प्रभु के साथ मिलाने में समर्थ हो। यह भी समझाओ कि ऐसे गुरु के साथ मिलाप कैसे हो?

गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

1. प्रभुरूपी सत्य के साथ मिलाप करानेवाले सतगुरु के साथ मिलाप भी प्रभु की दया-मेहर से होता है। यदि जीव ऐसे पूर्ण पुरुष के साथ अपनी बल-बुद्धि द्वारा मिलाप कर सकता, तो प्रभु के साथ भी कर सकता। गुरु साहिब का भाव है कि पूर्ण सतगुरु का मिलाप जीव के अपने यत्न या बल-बुद्धि पर नहीं बल्कि प्रभु की दया पर निर्भर है।
2. आप कहते हैं कि सतगुरु द्वारा जीव के अंदर प्रभु का प्रेम उत्पन्न होता है। सतगुरु द्वारा बख़्शे गए नाम द्वारा, मन वश में आ जाता है और प्रभुरूपी सत्य के साथ मिलाप हो जाता है।

गुरु साहिब द्वारा समझाए गए साधन और मार्ग के बारे में सुनकर लोहारीपा नामक एक योगी अपने मन का संशय प्रकट करता हुआ कहता है:

हाटी बाटी रहहे निराले रूख बिरख उदिआने॥
कंद मूल अहारो खाईऐ अउधू बोलै गिआने॥
तीरथ नाईऐ सुख फल पाईऐ मैल न लागै काई॥
गोरख पूत लोहारीपा बोलै जोग जुगत बिध साई॥७॥

शब्दार्थ: हाटी=बस्ती; **बाटी**=मार्ग; **रूख बिरख**=वृक्षों के नीचे; **उदिआने**=जंगल; **कंदमूल**=एक पौधा जिसकी जड़ भूनकर या उबालकर खाई जाती है; **गोरख पूत**=गोरख का शिष्य।

सरलार्थ: लोहारीपा योगी अपने-आपको गोरख नाथ का शिष्य बताता हुआ **जोग जुगत बिध साई** का संकेत देता है। वह कहता है: (हमें तो हमारे गुरु गोरखनाथ ने उपदेश दिया है कि योग की सिद्धि के लिए) साधक को बस्ती ही नहीं, बस्तियों के मार्गों से भी दूर जंगलों में वृक्षों के नीचे निर्वाह करना चाहिए। उसे कंदमूल आदि पर गुज़ारा करना चाहिए। तीर्थ स्थानों पर जाकर स्नान करना चाहिए, इस प्रकार सुख की प्राप्ति होती है। यदि तीर्थों पर स्नान द्वारा शुद्ध हो जाएँ तो फिर मैल नहीं लगती। गोरख नाथ का शिष्य लोहारीपा योगी कहता है कि यही योग की वास्तविक युक्ति है।

हाटी बाटी नीद न आवै पर घर चित न डोलाई॥
बिन नावै मन टेक न टिकई नानक भूख न जाई॥
हाट पटण घर गुरू दिखाइआ सहजे सच वापारो॥
खंडित निद्रा अलप अहारं नानक तत बीचारो॥८॥

शब्दार्थ: पटण=मंडी, शहर; **खंडित निद्रा**=कम सोना।

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: हे योगी! आवश्यकता इस बात की है कि साधक इन मार्गों पर चलता हुआ अज्ञानता या ग़फ़लत की नींद में न सो जाए। उसे चाहिए कि मन को पराए घर में न जाने दे। नाम के बिना मन निश्चल नहीं होता और न ही तृष्णा शांत होती है। गुरु साहिब समझाते हैं कि सतगुरु ने मुझे (वह वास्तविक) दुकान, बाज़ार और घर दिखा दिया है जिसमें सहज अवस्था में पहुँचकर सत्य का व्यापार किया जा सकता है। सच्चा साधक कम सोता है, कम खाता है और सदैव (प्रभु या नामरूपी) परमतत्त्व के विचार में मग्न रहता है।

❖ ***हाटी बाटी नीद न आवै पर घर चित न डोलाई॥***—यह पउड़ी अब तक हुए संवाद का खुलासा करती है और अगले संवाद के लिए आधार भी बनाती है। गुरु साहिब समझाते हैं: आबादी और उसकी तरफ़ जानेवाले मार्ग का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ भी रहें, अज्ञानता की नींद से बचकर रहें। संसार में रहें, परंतु आम संसारियों की तरह नहीं बल्कि प्रभु के भक्तों की तरह। संसार में रहें परंतु प्रभु प्राप्ति के आदर्श की ओर से अचेत न हो जाएँ।

बिन नावै मन टेक न टिकई नानक भूख न जाई॥—गुरु साहिब समझाते हैं कि योग का संबंध शरीर से नहीं, मन की साधना से है। आप फ़रमाते हैं कि आत्मा और परमात्मा के बीच वास्तविक रुकावट मन की है। मन चंचल है। इसके अंदर तृष्णाओं की अग्नि प्रचंड है। जब तक मन स्थिर नहीं होता और तृष्णा की अग्नि शांत नहीं होती, आत्मा का परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता। मन को केवल वह ताक़त स्थिर कर सकती है, जो मन से अधिक शक्तिशाली हो और जिसके अंदर इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों से ऊँची और विशुद्ध लज़्ज़त हो। वह शक्ति प्रभु का नाम है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि जब तक मन प्रभु के नाम से नहीं जुड़ता, तब तक यह निश्चल नहीं हो सकता और न ही इसकी तृष्णा शांत हो सकती है।

मन के गुण, कर्म, स्वभाव और इसे वश में करने के साधन के रूप में आदि ग्रन्थ की संपूर्ण वाणी में गुरु साहिब द्वारा आसा राग में उच्चारण किए गए शब्द 'मन मैगल साकत देवाना' का एक विशेष स्थान है। उसमें से कुछ अंशों पर विचार करते हैं:

> मन मैगल साकत देवाना॥ बन खंड माइआ मोह हैराना॥
> इत उत जाहे काल के चापे॥ गुरमुख खोज लहै घर आपे॥
> बिन गुर सबदै मन नही ठउरा॥
> सिमरहो राम नाम अत निरमल अवर तिआगहो हउमै कउरा॥[8]

माया का उपासक मन, मस्त हाथी की तरह संसाररूपी माया के जंगल में भटक रहा है। यह काल का दबाया हुआ हर तरफ़ भागता है। जब गुरुमुखों की शरण प्राप्त होती है तो इसे अपने वास्तविक घर की सूझ हो जाती है। सतगुरु के शब्द से लिव जोड़े बिना मन कभी शांत नहीं हो सकता। इसलिए मनमत का त्याग करके मन को प्रभु के निर्मल नाम में लीन करना चाहिए।

> गुरमुख राग सुआद अन तिआगे॥ गुरमुख इह मन भगती जागे॥
> अनहद सुण मानिआ सबद वीचारी॥ आतम चीन्हि भए निरंकारी॥[9]

सतगुरु की कृपा से मन, मोह-ममता और इंद्रियों के भोगों के स्वाद त्याग देता है। यह अज्ञानता की नींद का त्याग करके प्रभु की भक्ति में जाग्रत हो जाता है। अनहद शब्द के साथ लिव जोड़ने से मन वश में आ जाता है और आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान हो जाती है।

गुरु साहिब गुरुमत के इस बुनियादी सिद्धांत पर प्रकाश डाल रहे हैं कि प्रभु प्राप्ति शरीर की साधना पर नहीं, बल्कि मन की साधना पर निर्भर है। जो व्यक्ति सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार परमेश्वर के नाम के साथ लिव जोड़ लेता है, वह हर प्रकार की आशा-तृष्णा से मुक्त हो जाता है। उसका मन वश में आ जाता है और उसकी आत्मा मन के चंगुल से आज़ाद होकर प्रभु में लीन हो जाती है। साधक के मन की अवस्था घर-गृहस्थी के त्याग, जंगलों में निवास और कंदमूल के आहार से नहीं, बल्कि सुरत को शब्द में लीन करने से बदलती है। उद्देश्य नाम के साथ लिव जोड़ने का है। यह कार्य चाहे घर में रहते हुए कर लिया जाए या घर से बाहर रहते हुए, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

पर घर चित न डोलाई॥—इस महत्त्वपूर्ण कथन में गहरे आध्यात्मिक अर्थ छिपे हुए हैं। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: साधक को चाहिए कि ध्यान को पराए घरों में न भटकने दे। जब तक साधक का मन अस्थिर है और पराए घरों में भटकता है, वह योग में सिद्धि का स्वप्न भी नहीं ले सकता। गुरु साहिब आगे कहते हैं: ***हाट पटण घर गुरू दिखाइया सहजे सच वापारो॥***—जिस घर में बैठकर प्रभु की भक्ति यानी नाम के अभ्यास का सच्चा व्यापार किया जा सकता है, उसकी सूझ सतगुरु की कृपा से प्राप्त होती है।

इस संदर्भ में 'अपने घर' और 'पराए घर' का अंतर समझना ज़रूरी है। गुरु साहिब का कथन है: 'नउ घर थापे थापणहारै॥ दसवै वासा अलख अपारै॥'[10] प्रभु ने शरीर के नौ घर या नौ दरवाज़े संसार के कार्य-व्यवहार के लिए स्थापित किए हैं। उस अलख-अगम प्रभु का निवास इनसे ऊपर दसवें घर यानी दसवें दरवाज़े में है। आप फ़रमाते हैं:

घर रहो रे मन मुगध इआने॥ राम जपहो अंतरगत धिआने॥
लालच छोड रचहो अपरंपर इउ पावहो मुकत दुआरा हे॥[11]

ऐ मूर्ख मन! तू संसार का लोभ त्यागकर निज घर में टिककर बैठ जा और ध्यान को अंतर्मुख करके प्रभु के नाम का सुमिरन कर ताकि तुझे मुक्ति प्राप्त हो जाए। गुरु साहिब की वाणी है:

भीतर कोट गुफा घर जाई॥ नउ घर थापे हुकम रजाई॥
दसवै पुरख अलेख अपारी आपे अलख लखाइदा॥[12]

प्रभु ने अपने हुक्म से शरीररूपी गुफा के दस दरवाज़े बनाये हैं। नौ दरवाज़े—दो आँखें, दो कान, दो नाक के छिद्र, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थान—बाहर की तरफ़ खुलते हैं। दसवाँ घर जिसमें वह अलख-अगम प्रभु निवास कर रहा है, इनसे ऊपर है। नौ द्वारों के ज़रिये मन और आत्मा ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर जाते हैं तथा सारे संसार में फैल जाते हैं। मन और आत्मा की असली बैठक अंदर आँखों से ऊपर है। नौ द्वारों को पराए घर कहा गया है। आँखों से ऊपर दसवें दरवाज़े को मन और आत्मा का वास्तविक घर या निज घर कहा गया है। गुरु साहिब समझाते हैं कि जब तक मन और आत्मा अंदर अपने वास्तविक घर में स्थिर नहीं होते, तब तक उनका शब्द यानी नाम के साथ मिलाप नहीं हो सकता। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

नउ दर ठाके धावत रहाए॥ दसवै निज घर वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजह दिन राती गुरमती सबद सुणावणिआ॥[13]

साधक को चाहिए कि नौ द्वारों में फैले ध्यान को अंदर आँखों से ऊपर स्थिर करे। फिर यह पराए घरों की भटकन से मुक्त होकर अंदर निज घर में पहुँच जाएगा। वहाँ पहुँचकर इसे शब्द की कभी न बंद होनेवाली ध्वनि सुनाई देगी।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि साधक घर में रह रहा है अथवा बाहर जंगल में। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

उसका ध्यान कहाँ है। जब तक ध्यान नौ द्वारों में फैला हुआ है, चाहे कोई घर में रह रहा हो या जंगलों में, परमार्थ में उन्नति कर पाना असंभव है। जब वह सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार ध्यान को नौ पराए घरों में से समेटकर आँखों से ऊपर निज घर में स्थिर कर लेता है, तो उसकी लिव नाम के साथ जुड़ जाती है और यही योग में सिद्धि का सच्चा साधन है।

खंडित निद्रा अलप अहारं नानक तत बीचारो॥—आप परमार्थ में सफलता के इच्छुक साधक को खाने और सोने में संयम रखने का उपदेश देते हैं। गुरु साहिब 'आसा की वार' की सातवीं पउड़ी में फ़रमाते हैं:

सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सच धिआइआ॥
ओन्ही मंदै पैर न रखिओ कर सुक्रित धरम कमाइआ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंन पाणी थोड़ा खाइआ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवह चड़ह सवाइआ॥
वडिआई वडा पाइआ॥[14]

गुरु गोबिन्द सिंह राग रामकली के एक शब्द में योगियों को सच्चे योग की युक्ति समझाते हैं। आप फ़रमाते हैं:

अलप अहार सुलप सी निंद्रा दया छिमा तन प्रीत।
सील संतोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीत॥[15]

आप उपदेश देते हैं कि जो साधक कम खाता है, कम सोता है, दया, क्षमा, संयम, संतोष और प्रेम के गुण धारण करता है, वह तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि गृहस्थी के त्याग और कंदमूल खाने का कोई महत्त्व नहीं है, वास्तविक महत्त्व कम खाने, कम सोने और ध्यान को सदैव परमतत्त्व के विचार में रखने का है। वास्तविक बड़ाई संयम में रहकर जीवन निर्वाह करते हुए सदैव प्रभु की भक्ति में लगे रहने की है। आपने इसके साथ ही 'तत बीचारो' का उपदेश दिया है, जिसका अर्थ प्रभुरूपी परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

जिस बिसरिऐ जम जोहण लागै॥ सभ सुख जाहे दुखा फुन आगै॥
राम नाम जप गुरमुख जीअड़े एह परम तत वीचारा हे॥[16]

उस प्रभुरूपी परमतत्त्व को बिसारने पर हम यम की पकड़ में आ जाते हैं। दु:खों का आक्रमण हो जाता है और सुख पंख लगाकर उड़ जाते हैं। सतगुरु की शिक्षा के अनुसार राम नाम का सुमिरन करना चाहिए और यही उस परमतत्त्व की भक्ति का वास्तविक साधन है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

सच तीरथ नावहो हर गुण गावहो॥ तत वीचारहो हर लिव लावहो॥
अंत काल जम जोह न साकै हर बोलहो राम पिआरा हे॥[17]

मेरे प्यारे! प्रभु भक्ति के सच्चे तीर्थ में स्नान करो। हरि के साथ लिव जोड़कर परमतत्त्व के बारे में विचार करो, ताकि यमों की मार से छुटकारा मिल जाए।

दरसन भेख करहो जोगिंद्रा मुंद्रा झोली खिंथा॥
बारह अंतर एक सरेवहो खट दरसन इक पंथा॥
इन बिध मन समझाईऐ पुरखा बाहुड़ चोट न खाईऐ॥
नानक बोलै गुरमुख बूझै जोग जुगत इव पाईऐ॥९॥

शब्दार्थ: भेख=रूप; **जोगिंद्रा**=योगीराज; **खिंथा**=गोदड़ी; **बारह अंतर**=योगियों के बारह संप्रदाय; **खट दरसन**=योगियों के छ: प्रकार के भेष; **एक सरेवहो**=एक की भक्ति करो, एक भेष को धारण करो; **बाहुड़**=फिर से; **चोट...खाईऐ**=काल की चोट या मार नहीं खानी पड़ती।

सरलार्थ: योगी गुरु साहिब से कहते हैं: हे योगिश्वर! तुम योगियों वाला भेष धारण कर लो। तुम योगियों की तरह कानों में मुँदराएँ डाल लो, गले में झोला डाल लो और बैठने के लिए गोदड़ी ले लो। तुम योगियों के बारह संप्रदायों में से एक को धारण कर लो और छ: प्रकार के भेषों में से एक भेष धारण कर लो। हे महापुरुष! यदि आप इस प्रकार मन को वश में कर लें तो काल की चोट नहीं खानी पड़ेगी। गुरु साहिब कहते हैं: योग की युक्ति केवल गुरु द्वारा ही जानी जा सकती है।

❖ भाई गुरदास अपनी पहली वार की 31वीं पउड़ी में लिखते हैं कि गुरु साहिब के वचनों और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर योगी सोचते हैं:

सिधी मने बीचारिआ किवै दरसन ए लेवै बाला।
ऐसा जोगी कली मह हमरे पंथ करे उजिआला।[18]

अर्थात् सिद्धों ने मन में सोचा कि यदि यह नानक योगियों वाला भेष धारण करके, हमारे पंथ में शामिल हो जाए तो यह कलियुग में योगमत को प्रत्येक स्थान पर फैला देगा और चारों तरफ़ योगमत की जय-जयकार हो जाएगी। इसलिए योगी गुरु साहिब को योगियों वाला भेष धारण करके योग मत को धारण करने की प्रेरणा देते हैं।

योगियों का सारा ज़ोर बाहरी भेष पर है। वे समझते हैं कि योगियों के बारह संप्रदायों में से किसी एक में शामिल हो जाने और छ: प्रकार के भेषों में से कोई एक भेष धारण कर लेने से मन वश में आ जाएगा और परमात्मा से मिलाप हो जाएगा। गुरु साहिब योगियों को प्रेमपूर्वक समझाते हैं कि योग में सिद्धि का आधार कोई विशेष संप्रदाय या भेष न होकर, पूर्ण संत-सतगुरु की युक्ति के अनुसार आध्यात्मिक अभ्यास करना है। गुरु साहिब अगली पउड़ी में पूरे सतगुरु द्वारा समझाई सच्चे योग की युक्ति पर प्रकाश डालते हैं।

अंतर सबद निरंतर मुद्रा हउमै ममता दूर करी॥
काम क्रोध अहंकार निवारै गुर कै सबद सु समझ परी॥
खिंथा झोली भरपुर रहिआ नानक तारै एक हरी॥
साचा साहिब साची नाई परखै गुर की बात खरी॥१०॥

शब्दार्थ: मुद्रा=मुँदराएँ; **निवारै**=दूर कर दिया; **नाई**=महिमा।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं कि हे योगियो! (हमारे) अंदर शब्द का निरंतर प्रवाह चल रहा है। हमने अहंकार और ममता को दूर कर दिया है, यही हमारी मुँदराएँ हैं। हमने काम, क्रोध, अहंकार आदि विकारों का नाश कर दिया है। सतगुरु के शब्द द्वारा सच्ची सूझ प्राप्त हुई है।

उस हरि को सर्वव्यापक देखना और मुक्तिदाता समझना हमारी गोदड़ी है। प्रभु सच्चा है, उसकी महिमा भी सच्ची है। गुरु के उपदेश पर चलकर इस सत्य की परख की जा सकती है।

❖ ***अंतर सबद निरंतर मुद्रा हउमै ममता दूर करी॥***
काम क्रोध अहंकार निवारै गुर कै सबद सु समझ परी॥

गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी की अंतिम पंक्ति में समझाया था कि सच्चे योग की युक्ति का ज्ञान गुरु द्वारा होता है। आप उसी भाव को विस्तारपूर्वक समझाते हुए कहते हैं कि हम किसी विशेष प्रकार के बाहरी भेष पर विश्वास नहीं करते। हमारे लिए अंतर में शब्द की निरंतर चल रही धारा के साथ ध्यान जोड़ना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। कोई बाहरी विशेष वेशभूषा धारण करने के बजाय सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द साधना आवश्यक है। इससे मोह-ममता, अहंकार, विषय-विकार आदि दूर हो जाते हैं।

खिंथा झोली भरिपुर रहिआ नानक तारै एक हरी॥
साचा साहिब साची नाई परखै गुर की बात खरी॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि उस सर्वव्यापक प्रभु के कर्ता, रक्षक, प्रतिपालक और मुक्तिदाता होने में विश्वास रखना ही हमारी गोदड़ी और झोली है। आपका भाव है कि हमें किसी दूसरे से भिक्षा माँगने की आवश्यकता नहीं, वह प्रतिपालक स्वयं ही हमारा प्रतिपालन करेगा और हमारी मुक्ति का प्रबंध भी कर देगा। आप कहते हैं कि जो सेवक सतगुरु के उपदेशानुसार सच्चे साहिब की सच्ची भक्ति में लग जाता है, उसे किसी बाहरी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे अंदर से ही सतगुरु के उपदेश की सच्चाई का प्रमाण मिल जाता है।

बाहरी भेषों, चिन्हों और पूजा के बाहरी साधनों की वास्तविकता और प्रभु की सच्ची भक्ति के अंतर्मुख साधन का महत्त्व समझने के लिए गुरु नानक साहिब का सूही राग का शब्द 'जोग न खिंथा जोग न डंडै' विशेष ध्यान देने योग्य है।

जोग न खिंथा जोग न डंडै जोग न भसम चड़ाईऐ॥
जोग न मुंदी मूंड मुडाइऐ जोग न सिंङी वाईऐ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ जोग जुगत इव पाईऐ॥[19]

गुरु साहिब समझाते हैं कि गुदड़ी पहन लेने से, हाथ में डंडा पकड़ लेने से, शरीर पर भस्म लगा लेने से, कानों में मुँदराएँ पहन लेने से, सिर मुंडवा लेने या सिंङी बजाने से योग में सिद्धि नहीं मिल जाती। योग में सिद्धि के लिए साधक को माया में रहते हुए, उससे निर्लेप रहने की युक्ति आनी चाहिए।

प्रत्येक धर्म के अपने-अपने धार्मिक भेष या चिन्ह हैं। सतगुरु के उपदेशानुसार लिव को अंदर शब्द के साथ जोड़ने का साधन प्रत्येक धर्म के प्रत्येक साधक के लिए समान है। आध्यात्मिक उन्नति उस साधन के अनुसार रूहानी अभ्यास करने से होती है, एक को छोड़कर दूसरा भेष धारण करने से नहीं। गुरु साहिब ने विशेष भेषों या चिन्हों का न तो समर्थन किया है और न ही विरोध। आप ने गुरुमत के अनुसार शब्द की अंतर्मुख साधना का महत्त्व समझाने पर अधिक बल दिया है।

ऊंधउ खपर पंच भू टोपी॥ कांइआ कड़ासण मन जागोटी॥
सत संतोख संजम है नाल॥ नानक गुरमुख नाम समाल॥११॥

शब्दार्थ: खपर=भिक्षापात्र; **पंच...टोपी**=पाँच तत्त्वों के सतोगुणी अंश की टोपी; **जागोटी**=लंगोटी।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: विषय-विकारों की तरफ़ से मुँह मोड़ चुका मन हमारा खप्पर (भिक्षापात्र) है और हमने पाँच तत्त्वों के सतोगुणी अंश की टोपी पहनी हुई है। काया (शरीर) को वश में करके संयम में रखना ही हमारा मृगछालारूपी आसन है और मन को सदैव वश में रखना हमारी लंगोटी है। सत्य, संतोष और संयम हमारे साथ हैं। हमने गुरुमुखों के उपदेशानुसार नाम को धारण किया हुआ है।

❖ **ऊंधउ खपर**—योगी भिक्षा माँगने के लिए खप्पर हाथ में रखते हैं। गुरु साहिब योगियों के बाहरी भेष के चिन्हों को मुख्य रखते हुए अपनी

बात आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि हमने अपने मन को विषय-विकारों की ओर से हटाकर, इसका रुख़ बाहर से अंदर की तरफ़ तथा नीचे से ऊपर कर दिया है। आप कहते हैं कि हम प्रत्येक द्वार पर भिक्षा माँगने नहीं जाते। आपका कथन है:

गुर पीर सदाए मंगण जाए॥ ता कै मूल न लगीऐ पाए॥
घाल खाए किछ हथहो दे॥ नानक राह पछाणह से॥[20]

आप कहते हैं कि सच्चे परमार्थ की अगुवाई करनेवाला न केवल स्वयं हक़-हलाल की कमाई पर निर्वाह करता है, बल्कि अपनी कमाई का कुछ हिस्सा संगत में भी बाँटता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

उदम करेदिआ जीउ तूं कमावदिआ सुख भुंच॥
धिआइदिआ तूं प्रभू मिल नानक उतरी चिंत॥[21]

आप स्वार्थ और परमार्थ दोनों में सफलता के लिये उद्यम और पुरुषार्थ का प्रयोग करके, प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने का उपदेश देते हैं।

पंच भू टोपी—पंच भू का अर्थ है: पाँच तत्त्व – आकाश, वायु, अग्नि, पानी और धरती – का सात्विक अंश। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि योग साधना किसी ख़ास किस्म की टोपी की मोहताज नहीं है। वास्तविक आवश्यकता मायामय आकर्षण उत्पन्न करनेवाले और विषयों-विकारों का कारण बननेवाले तत्त्वों को वश में करने की है।

कांइआ कड़ासण मन जागोटी॥—गुरु साहिब कहते हैं: हम शरीर को संयम में रखते हैं और मन को कभी अविद्या और अज्ञानता की नींद में नहीं सोने देते। गुरु साहिब इंद्रियों के दमन द्वारा नहीं, संयम में रहते हुए मनोवृत्ति को सुधारने का उपदेश देते हैं। गुरु साहिब रामकली राग के एक शब्द में योगियों को संबोधित करते हुए कहते हैं: 'सहज जगोटा बंधन ते छूटा॥ काम क्रोध गुर सबदी लूटा॥'[22] हे योगी! तू सतगुरु के उपदेश पर अमल करके सहज अवस्था की लंगोटी बाँध ले। इससे विषय-विकारों का नाश हो जाएगा और आवागमन के बंधन से छुटकारा मिल जाएगा।

सत संतोख संजम है नाल॥ नानक गुरमुख नाम समाल॥—गुरु साहिब फ़रमाते हैं: हम सत्य, संतोष और संयम धारण करते हुए सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़कर रखते हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है: 'गुरमुख मन मेरे नाम समाल॥ सदा निबहै चलै तेरै नाल॥'[23] हे मेरे मन! तू गुरु के उपेदशानुसार नाम के साथ लिव जोड़। लोक-परलोक में साथ निभानेवाली एकमात्र वस्तु प्रभु का नाम है।

गुरु साहिब ने 10वीं और 11वीं पउड़ी में योगियों द्वारा 9वीं पउड़ीं में प्रकट किए गए योगमत के स्वरूप के उत्तर में अपने विचार प्रकट किए हैं। गुरु साहिब बार-बार बाहरी चिन्हों और कर्मकांडों की ओर से मुँह मोड़कर आचरण की निर्मलता धारण करते हुए, लिव को सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द (नाम) के साथ जोड़ने पर बल देते हैं।

गुरु साहिब ने 'जप जी' की 28 से 31 चार पउड़ियाँ योगियों को संबोधित करके लिखी हैं। आप 28वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं:

मुंदा संतोख सरम पत झोली धिआन की करह बिभूत॥
खिंथा काल कुआरी काइआ जुगत डंडा परतीत॥
आई पंथी सगल जमाती मन जीतै जग जीत॥
आदेस तिसै आदेस॥
आद अनील अनाद अनाहत जुग जुग एको वेस॥[24]

गुरु साहिब बाहरी भेष का निषेध किए बिना एक तरफ़ निर्मल रहनी का उपदेश देते हैं, तो दूसरी तरफ़ मन-इंद्रियों को वश में करके शब्द या नाम के साथ जोड़कर प्रभु में समाने का उपदेश देते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि योग का वास्तविक अर्थ परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा को पुनः परमात्मा से मिलाना है। योग शरीर का नहीं, आत्मा का धर्म है। तुम शरीर की साधना तक ही सीमित न रहो। कानों में कुंडल या मुँद्राएँ तो पाँच साल की बच्ची भी डाल सकती है। हाथ में भिक्षापात्र लेकर, तो भिखारी भी भीख माँगते हैं। गले में गुदड़ी, तो कोई भी पहन सकता है। हाथ में डंडा, तो पाँच साल का बालक भी पकड़ सकता है। शरीर पर विभूति लगाना कोई कठिन

कार्य नहीं है। शंख, घंटा या सिंडी, तो कोई भी बजा सकता है। भंडारे में बाँटा जानेवाला भोजन, तो कोई भी बाँट और खा सकता है। हे सिद्धो! तुम सदाचार की पवित्रता और मन की निर्मलता धारण करते हुए, प्रभु के नाम द्वारा उससे मिलाप करने का सफ़र तय करो।

कवन सो गुपता कवन सो मुकता॥ कवन सो अंतर बाहर जुगता॥
कवन सो आवै कवन सो जाए॥
कवन सो त्रिभवण रहिआ समाए॥१२॥

शब्दार्थ: जुगता=जुड़ा हुआ; **त्रिभवण**=तीनों लोकों में।

सरलार्थ: गुरु साहिब के कथन को सुनकर योगी जान-बूझकर कठिन प्रश्न पूछते हैं: गुप्त कौन है और मुक्त कौन है? वह कौन है जो अंदर-बाहर जुड़ा हुआ है? जो आता है, वह कौन है; जो जाता है, वह कौन है और जो तीनों लोकों में समाया हुआ है, वह कौन है?

घट घट गुपता गुरमुख मुकता॥ अंतर बाहर सबद सो जुगता॥
मनमुख बिनसै आवै जाए॥ नानक गुरमुख साच समाए॥१३॥

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: वह प्रभु घट-घट में समाया हुआ है, परंतु गुप्त है। उस प्रभु के साथ आपनी लिव जोड़ चुका गुरुमुख मुक्त है। जो अंदर और बाहर व्याप्त शब्द में लीन हो चुका है, वही सत्य से जुड़ा हुआ है। मनमुख बार-बार जन्म लेता और मरता है, आवागमन के चक्कर से बँधा रहता है गुरुमुख सच्चे प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाता है।

❖ गुरु साहिब कहते हैं कि वर्तमान अवस्था में प्रभु सर्वव्यापक होने के बावजूद कहीं भी दिखाई नहीं देता। वह हर घट में समाया हुआ है और जीव के अंदर है, परंतु जीव उसके दर्शन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति मन के पीछे लगा रहता है, वह सदैव अज्ञानता का शिकार रहता है। वह प्रभु के साथ मिलाप नहीं कर सकता और सदा आवागमन के चक्कर से बँधा रहता है। इसके विपरीत जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द के साथ लिव जोड़ लेता है, उसे अंदर और बाहर हर जगह प्रभु का प्रकाश

दिखाई देने लगता है। ऐसा गुरुमुख शब्द के अभ्यास द्वारा सदा के लिए प्रभु में समा जाता है।

किउ कर बाधा सरपन खाधा॥ किउ कर खोइआ किउ कर लाधा॥
किउ कर निरमल किउ कर अंधिआरा॥
इह तत बीचारै सो गुरू हमारा॥१४॥

शब्दार्थ: **बाधा**=बँधा हुआ; **सरपन**=मायारूपी सर्पिणी; **लाधा**=ढूँढ़ लिया।

सरलार्थ: एक योगी कुछ अन्य सूक्ष्म प्रश्न पूछता है: यह जीव कैसे बँधा हुआ है और (मायारूपी) सर्पिणी इसे कैसे खा रही है? जीव का सत्यरूपी अमूल्य रत्न कैसे खो गया और फिर कैसे मिल गया? जीव निर्मल कैसे होता है? यह (अज्ञानता के) अंधकार में क्यों फँसा रहता है? जो इस सत्य को समझा दे, हम उसे अपना गुरु मानने के लिए तैयार हैं।

दुरमत बाधा सरपन खाधा॥ मनमुख खोइआ गुरमुख लाधा॥
सतगुर मिलै अंधेरा जाए॥ नानक हउमै मेट समाए॥१५॥

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: यह जीव अज्ञानता या अविद्या के कारण आवागमन में बँधा हुआ है और मायारूपी सर्पिणी का ग्रास बना हुआ है। मनमुखता के कारण यह नामरूपी सत्य को गँवा बैठता है और गुरुमुखता धारण करके उसे प्राप्त कर लेता है। सतगुरु के मिलाप द्वारा अज्ञान के अँधेरे का नाश हो जाता है और हौंमैं का नाश करके जीव फिर प्रभु में समा जाता है।

❖ गुरु साहिब इस प्रसंग में दुर्मति, मनमुखता, अज्ञानता और हौंमैं को समान अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि जीव का सबसे बड़ा दुश्मन अज्ञानता, हौंमैं या मनमुखता है। मनमुखता के कारण ही जीव मायामय संसार और आवागमन के जाल से बँधा हुआ है और इस अज्ञानता के कारण ही इस मायारूपी सर्पिणी की ख़ुराक बना हुआ है। गुरु साहिब का भाव है कि अज्ञानता भी माया द्वारा ही उत्पन्न की गई है। मायारूपी सर्पिणी भी गुरु की शरण द्वारा वश में आती है और अज्ञानता या हौंमैं का

नाश करके प्रभु के साथ मिलाप का सौभाग्य भी सतगुरु की शरण द्वारा प्राप्त होता है। कबीर साहिब की वाणी है:

सरपनी ते ऊपर नही बलीआ॥
जिन ब्रहमा बिसन महादेउ छलीआ॥
मार मार स्रपनी निरमल जल पैठी॥
जिन त्रिभवण डसीअले गुर प्रसाद डीठी॥
स्रपनी स्रपनी किआ कहहो भाई॥
जिन साच पछानिआ तिन स्रपनी खाई॥[25]

मायारूपी सर्पिणी में इतना बल है कि इसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवताओं को भी छला है। आप कहते हैं: जिस सर्पिणी ने संपूर्ण त्रिलोकी को डस लिया था, उसे गुरु की कृपा से वश में कर लिया। वह पहले बेचैन थी, अब नाम के अमृत से शांत होकर बैठ गई है। मेरे भाइयो! सर्पिणी के लिए क्यों शोर मचाते हो और शिकायत करते हो? जो कोई गुरु की संगति द्वारा सत्य (नाम यानी प्रभु) को पहचान लेता है, वह इस सर्पिणी को खा जाता है।

सुंन निरंतर दीजै बंध॥ उडै न हंसा पड़ै न कंध॥
सहज गुफा घर जाणै साचा॥ नानक साचे भावै साचा॥ १६॥

शब्दार्थ: पड़ै...कंध=शरीररूपी दीवार स्थिर हो जाती है।

सरलार्थ: गुरु साहिब आगे कहते हैं: ध्यान को सुन्न मंडल में निश्चल कर दिया जाए तो आत्मारूपी हंस की भटकन समाप्त हो जाती है और शरीर भी स्थिर हो जाता है। जो साधक सहज गुफारूपी निज घर में पहुँच जाता है, उसे प्रभु की सूझ हो जाती है। जो साधक प्रभु को अच्छा लगने लगता है, वह भी उसकी तरह सच्चा यानी अविनाशी हो जाता है।

❖ इस पउड़ी में तीन महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक और साधनामयी संकेत हैं: 1. **उडै न हंसा पड़ै न कंध॥**—गुरु साहिब समझाते हैं कि जब ध्यान सुन्न मंडल में स्थिर हो जाता है तो मन भी निश्चल हो जाता है और शरीर भी स्थिर हो जाता है। आप रामकली राग के एक शब्द में योगियों को संबोधित

करते हुए कहते हैं: 'भुगत नाम गुर सबद बीचारी॥ असथिर कंध जपै निरंकारी॥'[26] हे योगी! जब तू सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को निरंकार के शब्द के साथ जोड़ लेगा तो शरीररूपी दीवार स्थिर हो जाएगी। 2. **सुंन निरंतर दीजै बंध॥** 3. **सहज गुफा घर जाणै साचा॥**—योगमत में सुन्न के विषय में अनेक प्रकार के विचार प्रचलित हैं। गुरु साहिब ने सिद्धों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में 51 से 53 तक की पउड़ियों पर इस विषय पर चर्चा की है। यहाँ निरंतर सुन्न, सहज सुन्न और सहज गुफा आदि द्वारा यह भाव प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है कि साधक को त्रिलोकी पार करके सचखण्ड, चौथी सुन्न या सहज सुन्न में पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि वह कर्म और फल तथा उससे उत्पन्न होनेवाले आवागमन के चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाए।

गुरु साहिब ने चौथी सुन्न को चौथा पद भी कहा है। आपका कथन है: 'जत सत संजम रिदै समाए॥ चउथे पद कउ जे मन पतीआए॥'[27] यदि सुरत चौथे पद में स्थिर हो जाए तो हृदय में अनेक प्रकार के शुभ गुणों का निवास हो जाता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

त्रिह गुणा विच सहज न पाईऐ त्रै गुण भरम भुलाए॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहो घुथा जाए॥
चउथे पद मह सहज है गुरमुख पलै पाए॥
निरगुण नाम निधान है सहजे सोझी होए॥[28]

गुरु साहिबान ने चौथी सुन्न या चौथे पद को सहज गुफा भी कहा है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अनहद वाजै सहज सुहेला॥ सबद अनंद करे सद केला॥
सहज गुफा मह ताड़ी लाई आसण ऊच सवारिआ जीउ॥[29]

जो सहज गुफा के सर्वोच्च स्थान पर समाधि लगा लेता है, वह सहज अवस्था का अधिकारी बन जाता है। उसकी सुरत सदा अनहद शब्द में आनंदमग्न रहती है।

नानक साचे भावै साचा॥—गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि प्रभु के साथ मिलाप की सर्वोच्च अवस्था उसकी दया से प्राप्त होती है।

गुरु साहिब अलग-अलग ढंग से योगियों को बार-बार यह भाव दृढ़ कराने का प्रयत्न करते हैं कि प्रभु से मिलाप तभी होगा जब मन स्थिर हो जाए और आत्मा आंतरिक मंडलों को पार करके प्रभु के घर पहुँच जाए।

किस कारण ग्रिह तजिओ उदासी॥ किस कारण इह भेख निवासी॥
किस वखर के तुम वणजारे॥ किउ कर साथ लंघावहो पारे॥१७॥

शब्दार्थ: ग्रिह=घर; **निवासी**=धारण किया; **वखर**=सौदा; **साथ**=संगत।

सरलार्थ: योगी प्रश्न करते हैं: हे नानक! (यदि योग में सफलता के लिए घर-गृहस्थी के त्याग और योगियों वाला भेष धारण करना आवश्यक नहीं तो) आपने घर-गृहस्थी का त्याग क्यों किया तथा योगियों वाला भेष क्यों धारण किया? आप किस सौदे के व्यापारी हो और आप अपनी संगत को (भवजल से) पार कैसे लेकर जाओगे?

गुरमुख खोजत भए उदासी॥ दरसन कै ताई भेख निवासी॥
साच वखर के हम वणजारे॥ नानक गुरमुख उतरस पारे॥१८॥

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: हम गुरुमुखों की खोज में घर-गृहस्थी का त्याग करके उदासी (यात्री) हुए थे और उनके दर्शनों के लिए उदासियों वाला भेष धारण किया था। हम नामरूपी सच्चे सौदे के व्यापारी हैं और जो कोई गुरुमुखों द्वारा बताए मार्ग पर चलता है, भवसागर से पार हो जाता है।

❖ ***गुरमुख खोजत भए उदासी॥ दरसन कै ताई भेख निवासी॥***—गुरु साहिब समझाते हैं कि हमने प्रभु के प्यारों की खोज में घर-गृहस्थी का त्याग करके उदासियों का भेष धारण किया है तथा उनके दर्शन करना ही हमारा वास्तविक उद्देश्य है।

साच वखर के हम वणजारे॥—आप फ़रमाते हैं कि हम नाम यानी शब्दरूपी सच्चे पदार्थ के सौदागर हैं। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

मन मह माणक लाल नाम रतन पदारथ हीर॥
सच वखर धन नाम है घट घट गहिर गंभीर॥
नानक गुरमुख पाईऐ दइआ करे हर हीर॥[30]

नाम ही सच्चा धन है, नाम ही वह अनमोल हीरा है, जो प्रत्येक घट में समाया हुआ है। जब प्रभु की कृपा से सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाती है तब अंदर से उस अनमोल धन या हीरे की प्राप्ति हो जाती है। गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

जिस वखर कउ लैन तू आइआ॥ राम नाम संतन घर पाइआ॥
तज अभिमान लेहो मन मोल॥ राम नाम हिरदे मह तोल॥
लाद खेप संतह संग चाल॥ अवर तिआग बिखिआ जंजाल॥
धंन धंन कहै सभ कोए॥ मुख ऊजल हर दरगह सोए॥[31]

नानक गुरमुख उतरस पारे॥—योगियों ने प्रश्न किया था कि आप अपनी संगत का भवसागर से कैसे उद्धार करोगे? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: भवसागर से उद्धार केवल गुरुमुखों की दया से होता है। आप वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

ऐसे जन विरले संसारे॥ गुर सबद वीचारह रहह निरारे॥
आप तरह संगत कुल तारह तिन सफल जनम जग आइआ॥[32]

जो पूर्ण पुरुष सदैव शब्द का अभ्यास करते हैं, वे स्वयं भी भवसागर से पार हो जाते हैं और उनकी संगत भी उनके उपदेशानुसार शब्द का अभ्यास करते हुए, भवसागर से पार हो जाती है।

कित बिध पुरखा जनम वटाइआ॥ काहे कउ तुझ इह मन लाइआ॥
कित बिध आसा मनसा खाई॥ कित बिध जोत निरंतर पाई॥
बिन दंता किउ खाईऐ सार॥ नानक साचा करहो बीचार॥१९॥

शब्दार्थ: वटाइआ=बदल लिया; **सार**=लोहा।

सरलार्थः योगी प्रश्न करते हैं: हे महापुरुष! आपने अपना जन्म कैसे बदला है? आप जीवन में परिवर्तन कैसे लाए? आपने अपना मन किसके साथ जोड़ा? आपने आशा-मनसा को किस तरह मिटाया, इच्छा-तृष्णा का नाश कैसे किया? आपको प्रभु की सदा एक-रस रहनेवाली ज्योति कैसे प्राप्त हुई? बिना दाँतों के लोहा कैसे खाया जा सकता है? हे नानक! इसके बारे में सच्चा विचार प्रकट करिये।

सतगुर कै जनमे गवन मिटाइआ॥ अनहत राते इह मन लाइआ॥
मनसा आसा सबद जलाई॥ गुरमुख जोत निरंतर पाई॥
त्रै गुण मेटे खाईऐ सार॥ नानक तारे तारणहार॥ २०॥

शब्दार्थः गवन=आवागमन; **अनहत**=अनहद शब्द।

सरलार्थः गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जब सतगुरु के घर में जन्म लिया तो आवागमन का नाश हो गया। अपना मन अनहद शब्द के साथ जोड़ दिया। शब्द द्वारा आसा-मनसा को जला दिया। सतगुरु द्वारा प्रभु की अखंड ज्योति प्राप्त हो गई। इस प्रकार तीन गुणों को समाप्त (पार) करके माया का लोहा चबाया जा सकता है। वह प्रभु स्वयं जीव का भवसागर से उद्धार करता है।

❖ ***सतगुर कै जनमे गवन मिटाइआ॥ अनहत राते इह मन लाइआ॥***—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि आवागमन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सतगुरु की शरण ज़रूरी है। शिष्य ख़ुद सतगुरु की शरण नहीं लेता बल्कि सतगुरु उसे अपनी शरण में लेता है। गुरु और शिष्य का संबंध शिष्य की इच्छा पर नहीं, सतगुरु की रज़ा पर निर्भर है। शिष्य ख़ुद भवसागर से पार नहीं होता बल्कि सतगुरु उसे भवसागर से पार लेकर जाता है। यही कारण है कि संतों ने सतगुरु से उपदेश या दीक्षा प्राप्त होने को जीव का आत्मिक जन्म स्वीकार किया है। सतगुरु की शरण में आने से पहले शिष्य का मन सांसारिक शक्लों और पदार्थों में लिप्त होता है। सतगुरु उसकी लिव अनहद शब्द के साथ जोड़ देते हैं। सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द की साधना करने

से साधक के जीवन में पूरी तरह बदलाव आ जाता है। उसकी दिशा भी बदल जाती है, दशा भी बदल जाती है। वह माया का पुजारी बनने के स्थान पर प्रभु का भक्त बन जाता है। यही नया जन्म है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

सतगुर देखिआ दीखिआ लीनी॥ मन तन अरपिओ अंतरगत कीनी॥
गत मित पाई आतम चीनी॥ भोजन नाम निरंजन सार॥
परम हंस सच जोत अपार॥ जह देखउ तह एकंकार॥[33]

जब सतगुरु के दर्शन करके उससे दीक्षा प्राप्त की, तब तन-मन से उस पर अमल करके बाहर की ओर जानेवाले ध्यान को अंदर स्थिर कर लिया। जब उसके उपदेश के अनुसार आत्मा को मन-इंद्रियों से अलग करके अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान की, तो आंतरिक अथाह जगत् की सूझ हो गई। इससे आत्मा को प्रभु के नाम का उत्तम भोजन मिल गया। नाम के अभ्यास से परमहंस की अवस्था प्राप्त हो गई और उस हरि की ज्योति के दर्शन होने पर सृष्टि के कण-कण में उसका नूर समाया हुआ दिखाई देने लगा।

मनसा आसा सबद जलाई॥ गुरमुख जोत निरंतर पाई॥—गुरु साहिब समझाते हैं कि जब अंदर शब्द का अमृत मिलता है तो सांसारिक भोगों की इच्छा-तृष्णा शांत हो जाती है। जब सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर स्थिर कर लेते हैं, तो अंदर दिव्य ज्योति के दर्शन हो जाते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सिध समाध करह नित झगरा दुहु लोचन किआ हेरै॥
अंतर जोत सबद धुन जागै सतगुर झगर निबेरै॥[34]

सिद्ध आँखों पर दबाव डालकर ध्यान को अंदर स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं, परंतु वह दिव्य और सूक्ष्म ज्योति इंद्रियों का विषय नहीं है। जब सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार ध्यान को अंदर स्थिर किया जाता है, तो अंदर शब्द की ध्वनि सुनाई देने लगती है और शब्द की ज्योति दिखाई देने लगती है। आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

मन बैराग रतउ बैरागी सबद मन बेधिआ मेरी माई॥
अंतर जोत निरंतर बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥[35]

जब मन प्रभु के प्रेम के रंग में रँग गया, तो सुरत संसार और शरीर की तरफ़ से निर्लेप होकर अंदर स्थिर हो गई तथा अंदर शब्द की ज्योति प्रकट हो गई, शब्द की ध्वनि सुनाई देने लगी और प्रभु के साथ लिव जुड़ गई।

त्रै गुण मेटे खाईऐ सार॥ नानक तारे तारणहार॥—जब प्रभु के साथ मिलाप हो गया तो आत्मा स्वाभाविक रूप से तीन गुणों की मायामय सीमा पार कर गई। इस प्रकार जीव माया का लोहा चबाने में सफल हो गया। शब्द के साथ लिव जोड़कर मायामय रचना से पार जाने का सौभाग्य प्रभु की दया से प्राप्त होता है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

त्रिह गुणा विच सहज न पाइऐ त्रै गुण भरम भुलाए॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ थीऐ जां मुढहो घुथा जाए॥
चउथे पद मह सहज है गुरमुख पलै पाए॥[36]

गुरु साहिब समझाते हैं कि जब तक जीवात्मा तीन गुणों की त्रिलोकी में क़ैद है, उसे सहज अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब तक मन कुमार्ग पर अग्रसर है, ग्रंथों और शास्त्रों का पाठ-विचार करने से भी सहज अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। सहज अवस्था की प्राप्ति सतगुरु के उपदेश पर अमल करते हुए, त्रिलोकी की सीमा पार करके सचखण्ड या चौथे पद में पहुँचकर होती है।

आद कउ कवन बीचार कथीअले सुंन कहा घर वासो॥
गिआन की मुद्रा कवन कथीअले घट घट कवन निवासो॥
काल का ठीगा किउ जलाईअले किउ निरभउ घर जाईऐ॥
सहज संतोख का आसण जाणै किउ छेदे बैराईऐ॥
गुर कै सबद हउमै बिख मारै ता निज घर होवै वासो॥
जिन रच रचिआ तिस सबद पछाणै नानक ता का दासो॥ २१॥

शब्दार्थ: आद कउ=आरंभ में, शुरुआत में; **कथीअले**=कथन करो, वर्णन करो; **सुंन...वासो**=क्या सुन्न का कोई सहारा भी है? **मुद्रा**=निशानी, साधन—योगियों के पाँच साधन: खेचरी, भूचरी, गोचरी, चाचरी और उनमनी; **ठीगा**=डंडा; **किउ जलाईअले**=कैसे जलाया जाए? बैराईऐ=दुश्मन को; **रच रचिआ**=सृष्टि का सृजन किया है।

सरलार्थ: योगी प्रश्न करते हैं: आदि के बारे में आपके क्या विचार हैं? आदि में परमात्मा का निवास स्थान कहाँ था? ज्ञान कौन-सी मुद्रा द्वारा प्राप्त होता है और ज्ञान की प्राप्ति की निशानी क्या है तथा घट-घट में किसका निवास है? काल का डंडा कैसे जलाया जाए और निर्भय पद कैसे प्राप्त किया जाए? सहज अवस्था का संतोषवाला निश्चल आसन कैसे प्राप्त किया जाए और वैरियों अर्थात् दुश्मनों का नाश कैसे किया जाए?

गुरु साहिब उत्तर देते हैं: गुरु के शब्द यानी नाम द्वारा हौंमैं के ज़हर को ख़त्म कर लिया जाए, तो निज घर की प्राप्ति हो जाती है। जो शब्द द्वारा संसार की रचना करनेवाले रचयिता की पहचान कर लेता है, हम उसके सेवक हैं।

❖ गुरु साहिब योगियों के इन प्रश्नों के उत्तर में सार रूप में केवल इतनी बात समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा के मध्य वास्तविक रुकावट हौंमैं यानी मैं-मेरी की है। जो साधक सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द के अमृत द्वारा हौंमैं के विष का नाश कर लेता है, उसे निज घर में निवास मिल जाता है। इस प्रसंग में गुरु साहिब ने 'गुर कै सबद' पद का प्रयोग किया है। गुरु साहिब ने शब्द को प्रभु का शब्द कहा है, क्योंकि वह प्रभु का रूप है। उन्होंने उसे गुरु का शब्द इसलिए कहा है, क्योंकि वह शब्द अंदर होने के बावजूद गुरु के उपदेश पर अमल करने से ही प्रकट होता है। गुरु साहिब राग रामकली के एक शब्द में योगियों को समझाते हैं:

गुर का सबद वीचार जोगी॥
दुख सुख सम करणा सोग बिओगी॥
भुगत नाम गुर सबद बीचारी॥[37]

हे योगी! तू गुरु के शब्द की आराधना कर। गुरु के शब्द का भोजन करने से तू दु:ख-सुख, शोक और वियोग को समान समझने लगेगा।

कहा ते आवै कहा इह जावै कहा इह रहै समाई॥
एस सबद कउ जो अरथावै तिस गुर तिल न तमाई॥
किउ ततै अविगतै पावै गुरमुख लगै पिआरो॥
आपे सुरता आपे करता कहो नानक बीचारो॥
हुकमे आवै हुकमे जावै हुकमे रहै समाई॥
पूरे गुर ते साच कमावै गत मित सबदे पाई॥ २२॥

शब्दार्थ: अरथावै=अर्थ बता दे, पहचान करवा दे; **तमाई**=अंधकार; **ततै**=आत्मारूपी तत्त्व।

सरलार्थ: योगी प्रश्न करते हैं: जीव कहाँ से आता है, कहाँ चला जाता है तथा कहाँ समा जाता है? जो इस प्रश्न का उत्तर दे दे। समझो कि वह गुरु तिल मात्र भी अज्ञानता के अंधकार में नहीं है और न उसमें कोई लालच है। उस अदृष्ट प्रभु को कैसे पाया जा सकता है और गुरुमुखों के साथ (या गुरुमुखों द्वारा प्रभु के साथ) कैसे प्रेम हो सकता है? आप इस बात का निर्णय करो कि वह कौन है जो स्वयं ही कर्ता है और स्वयं ही सुननेवाला अथवा ज्ञाता भी है?

गुरु साहिब योगियों के बहुत-से प्रश्नों को समेटते हुए कहते हैं: जीव हुक्म द्वारा आता है, हुक्म द्वारा ही जाता है और हुक्म द्वारा ही उसमें समा जाता है। जीव को चाहिए कि पूर्ण सतगुरु से युक्ति सीखकर, सत्य की कमाई और शब्द का अभ्यास करे, इससे उसे प्रभु प्राप्ति यानी मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।

❖ ***हुकमे आवै हुकमे जावै हुकमे रहै समाई॥***—जीव प्रभु की रज़ा से संसार में आता है, उसकी रज़ा से वापस जाता है और उसकी रज़ा से ही उसमें समा जाता है। गुरु साहिब 'जप जी' की दूसरी पउड़ी में फ़रमाते हैं कि प्रभु के हुक्म द्वारा ही सृष्टि के सब आकार प्रकट होते हैं। हुक्म द्वारा ही जीव, सृष्टि का अंग बनते हैं, छोटे-बड़े बनते हैं और उनके जीवन में दु:ख-सुख

भी हुक्म के अनुसार आता है। 'इकना हुकमी बखसीस इक हुकमी सदा भवाईअह॥'[38] प्रभु के साथ मिलाप की बड़ाई भी उसकी रज़ा से मिलती है और जीव के आवागमन से बँधे रहने का कारण भी उसकी रज़ा है।

पूरे गुर ते साच कमावै गत मित सबदे पाई॥—गुरु साहिब ने अधिकतर प्रसंगों में गुरु और गुरुमुख पद का प्रयोग किया है। अन्य अनेक प्रसंगों में सतगुरु या सच्चा गुरु के पद का प्रयोग किया है। यहाँ आप पूरे गुरु की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं, क्योंकि पूरे गुरु से ही भक्ति के सच्चे साधन और मार्ग का ज्ञान प्राप्त हो सकता है और जीव शब्द के साथ जुड़कर प्रभु से मिलाप कर सकता है।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि गुरु का होना ही काफ़ी नहीं, गुरु पूरा भी होना चाहिए। गुरु साहिब पाँचवीं पउड़ी में पूरे गुरु की पहचान का संकेत दे आए हैं: 'अगम अगोचर देख दिखाए नानक ता का दासो॥' आप कहते हैं कि जो पूर्ण पुरुष स्वयं प्रभु के दर्शन कर चुका है, वही दूसरों को भी उसके दर्शन करवा सकता है। आप 'दखणी ओअंकार' की 21वीं पउड़ी में कहते हैं:

केते गुर चेले फुन हूआ॥ काचे गुर ते मुकत न हूआ॥
.....
दह दिस ढूढ घरै मह पाइआ॥ मेल भइआ सतगुरू मिलाइआ॥[39]

आप फ़रमाते हैं कि अधूरे गुरु से मुक्ति प्राप्त न हुई और हम प्रभु की खोज में बाहर ही बाहर भटकते रहे। जब सच्चे गुरु की संगति प्राप्त हुई, तो अंदर ही प्रभु से मिलाप हो गया।

आद कउ बिसमाद बीचार कथीअले सुंन निरंतर वास लीआ॥
अकलपत मुद्रा गुर गिआन बीचारीअले घट घट साचा सरब जीआ॥
गुर बचनी अविगत समाईऐ तत निरंजन सहज लहै॥
नानक दूजी कार न करणी सेवै सिख सो खोज लहै॥
हुकम बिसमाद हुकम पछाणै जीअ जुगत सच जाणै सोई॥
आप मेट निरालम होवै अंतर साच जोगी कहीऐ सोई॥ २३॥

शब्दार्थ=लहै=प्राप्ति कर ले; **जीअ जुगत**=आत्मिक युक्ति।

सरलार्थ: जो प्रभु सृष्टि के आरंभ (आदि) से भी पहले था, उसके विषय में सोचकर आश्चर्य होता है। वह आनंदमयी अवस्था वर्णन से परे है। उस अवस्था में वह प्रभु अपने में ही समाया हुआ था। गुरु का ज्ञान कल्पना से परे का वह विचित्र साधन है, जिसके द्वारा सब जीवों के घट-घट में बस रहे उस प्रभु की सूझ होती है। गुरु के उपदेश की कमाई से जीव उस अव्यक्त, माया से निर्लेप, निराकार में समा जाते हैं, जो एकमात्र सार-पदार्थ है। इस प्रकार सहज अवस्था की प्राप्ति हो जाती है। जो शिष्य अन्य हर प्रकार की करनी को त्यागकर केवल सतगुरु के उपदेशानुसार सेवा या भक्ति करता है, वह अपने अंदर ही खोज करके परमतत्त्व की प्राप्ति कर लेता है।

गुरु साहिब कहते हैं: जिस प्रकार प्रभु विस्मादपूर्ण है, उसी प्रकार उसका हुक्म भी विस्मादपूर्ण है। न तो प्रभु का वर्णन किया जा सकता है, न ही उसके हुक्म का। जो व्यक्ति प्रभु के हुक्म को पहचान लेता है, वह सही युक्ति द्वारा प्रभुरूपी सत्य को पहचान लेता है। वह आपाभाव को समाप्त करके संसार से निर्लिप्त हो जाता है। उसके अंदर नाम यानी प्रभुरूपी सत्य समा जाता है। ऐसा साधक ही सच्चा योगी है।

❖ गुरु साहिब विस्तारपूर्वक अपने विचारों को प्रकट करते हैं। 23वीं से 42वीं पउड़ी तक संवाद प्रवचन का रूप धारण कर लेता है। योगी शांतिपूर्वक गुरु साहिब की बात सुनते हैं और गुरु साहिब दिव्य ज्ञान के हीरे-मोती उनके सामने बिखेरते जाते हैं। आपका प्रवचन इस प्रकार आरंभ होता है: ***आद कउ बिसमाद बीचार कथीअले सुंन निरंतर वास लीआ॥***—गुरु साहिब समझाते हैं कि सृष्टि के आरंभ से पहले, प्रभु की पूर्ण अद्वैत की आश्चर्यजनक अवस्था, कल्पना और वर्णन से परे है। उस समय प्रभु सुन्न अवस्था में अपने-आप में समाया हुआ था। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं: 'सुंन कला अपरंपर धारी॥ आप निरालम अपर अपारी॥'[40] आदि में वह अगम, अगोचर, अनुपम प्रभु पूर्णत: निर्लेप था और अपने-आप में समाया हुआ था।

अकलपत मुद्रा गुर गिआन बीचारीअले घट घट साचा सरब जीआ॥—योगमत में पाँच मुद्राओं का भी वर्णन है और चौबीस मुद्राओं का भी वर्णन है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि ज्ञान की वह मुद्रा या साधना जिसकी शिक्षा सतगुरु से मिलती है, मन-बुद्धि की कल्पना से परे है। वह निर्विकल्प ज्ञान * अर्थात् परम ज्ञान की प्राप्ति का ऐसा अद्भुत साधन है जिससे प्रभु घट-घट में समाया दिखाई देने लगता है।

गुर बचनी अविगत समाईऐ तत निरंजन सहज लहै॥—सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से अगम, अगोचर, अकथ माया से निर्लिप्त परमतत्त्व से एकरूप हो जाते हैं। 'सहज लहै' का यह अर्थ भी किया जाता है कि सतगुरु की दया से ऐसी अनुपम अवस्था सहज रूप से प्राप्त हो जाती है। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से प्रभु के साथ मिलाप की सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है।

नानक दूजी कार न करणी सेवै सिख सो खोज लहै॥—गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि जो भी आध्यात्मिक प्राप्ति होती है, सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से होती है। इसलिए साधक को चाहिए कि अन्य हर प्रकार के साधनों में से ध्यान निकालकर, सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति में लग जाए और अपने अंदर से खोज करके प्रभु के साथ मिलाप कर ले।

हुकम बिसमाद हुकम पछाणै जीअ जुगत सच जाणै सोई॥—प्रभु विस्मादपूर्ण और अकथ है तथा उसका हुक्म भी विस्मादपूर्ण और अकथ है। प्रभु का हुक्म यानी रज़ा, हर अवस्था में प्रभु के अस्तित्व का अभिन्न अंग बनी रहती है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

अरबद नरबद धुंधूकारा॥ धरण न गगना हुकम अपारा॥
ना दिन रैन न चंद न सूरज सुंन समाध लगाइदा॥[41]

अरब-खरब वर्षों तक जब हर तरफ़ सघन धुंध (धुंधुकारा) थी, दिन-रात, चाँद-सूर्य आदि का नामो-निशान तक नहीं था और प्रभु सुन्न समाधि की

* पंज ग्रंथी सटीक, पृ. 162

अवस्था में लीन था, तब उसका हुक्म, उसकी रज़ा उसके साथ थी। संत नामदेव जी का कथन है:

गुर कै सबद एह मन राता दुबिधा सहज समाणी॥
सभो हुकम हुकम है आपे निरभउ समत बीचारी॥[42]

आप कहते हैं: सुरत को सतगुरु के शब्द में लीन करने से सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिससे यह सूझ हो जाती है कि परमात्मा का हुक्म यानी उसकी इच्छा उसका ही रूप है।

गुरु साहिब ने हुक्म (शब्द) की पहचान को 'जीअ जुगत' कहा है। योगियों ने शरीर की साधना की युक्तियों पर अधिक बल दिया है। गुरु साहिब शब्दरूपी आत्मिक युक्ति की तरफ़ ध्यान देने का उपदेश देते हैं, क्योंकि प्रभु ने अपने साथ मिलाप के लिए स्वयं यह युक्ति निर्धारित की है। जो साधक इस आत्मिक युक्ति के अनुसार भक्ति करता है, उसे प्रभुरूपी सत्य की पहचान का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

आप मेट निरालम होवै अंतर साच जोगी कहीऐ सोई॥—साधक को चाहिए कि आपाभाव का नाश करके मन को संसार से निर्लेप कर ले। जो साधक इस युक्ति द्वारा सत्य या प्रभु को अंतर में धारण कर लेता है, वही सच्चे अर्थों में योगी कहलाने का अधिकारी है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रंसग में फ़रमाते हैं:

हउ मै करी तां तू नाही तू होवह हउ नाहे॥
बूझहो गिआनी बूझणा एह अकथ कथा मन माहे॥
बिन गुर तत न पाईऐ अलख वसै सभ माहे॥
सतगुर मिलै त जाणीऐ जां सबद वसै मन माहे॥
आप गइआ भ्रम भउ गइआ जनम मरन दुख जाहे॥[43]

आप 'हउ', 'हउ मै' तथा 'आप' पद समान अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि जब तक हौंमैं या आपाभाव है, प्रभु की सूझ नहीं होती। जब प्रभु की सूझ हो जाती है तो आपाभाव का नाश हो जाता है।

जब सतगुरु की शरण द्वारा सुरत अंदर शब्द में लीन हो जाती है तो प्रभुरूपी परमतत्त्व का ज्ञान हो जाता है। इससे आपाभाव, अज्ञानता, संशय, भय और आवागमन के दुःख से छुटकारा मिल जाता है।

अविगतो निरमाइल उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ॥
सतगुर परचै परम पद पाईऐ साचै सबद समाए लीआ॥
एके कउ सच एका जाणै हउमै दूजा दूर कीआ॥
सो जोगी गुर सबद पछाणै अंतर कमल प्रगास थीआ॥
जीवत मरै ता सभ किछ सूझै अंतर जाणै सरब दइआ॥
नानक ता कउ मिलै वडाई आप पछाणै सरब जीआ॥ २४॥

शब्दार्थ: अविगतो=अव्यक्त, गुप्त; **निरमाइल**=माया रहित; **परचै**=पहचान करके; **प्रगास थीआ**=प्रकाश हो गया।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में वर्णन किया था कि प्रभु के आदि का विचार विस्मादपूर्ण है। उसी भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: उस गुप्त, अव्यक्त में से – जिसकी अवस्था समझ और बयान से बाहर है – निर्मल, निराकार उत्पन्न हुआ और फिर उस निर्गुण निराकार ने सगुण रूप धारण कर लिया।

गुरु साहिब कहते हैं: सच्चे साधक को सतगुरु के उपदेश की पहचान द्वारा परमपद की प्राप्ति हो जाती है और शब्द जीवात्मा को अपने में समेट लेता है। ऐसा साधक केवल प्रभु को ही सत्य स्वीकार करता है। वह हौंमैं और द्वैत का नाश कर लेता है। सच्चा योगी वही है, जो गुरु के शब्द की पहचान या कमाई करता है। उसके हृदय में प्रभु का प्रकाश प्रकट हो जाता है। जो साधक जीते-जी मर जाता है, उसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उसके अंदर सब जीवों के प्रति दया का भाव उत्पन्न हो जाता है। उस प्रभु के दरबार में उसी जीव को सच्ची बड़ाई प्राप्त होती है, जो स्वयं की पहचान द्वारा सब जीवों में एक आत्मा या एक प्रभु को देखना आरंभ कर देता है।

❖ ***अविगतो निरमाइल उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ॥***—गुरु साहिब ने अनेक शब्दों में यह भाव दृढ़ कराया है कि पहले प्रभु सुन्न-समाधि की अवस्था में था। वह स्वयं ही निर्गुण निराकार था और फिर स्वयं ही सगुण रूप में प्रकट हो गया। गुरु अर्जुन देव जी ने 'सुखमनी' की 21 वीं असटपदी में इस संपूर्ण प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। आप असटपदी के आरंभ में अंकित श्लोक में कहते हैं:

सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आप॥
आपन कीआ नानका आपे ही फिर जाप॥[44]

प्रभु पहले सुन्न समाधि की अवस्था में था, फिर उसने निर्गुण, निराकार की अवस्था को धारण कर लिया, फिर स्वयं ही साकार, सगुण रूप में प्रकट हो गया।

सतगुर परचै परम पद पाईऐ साचै सबद समाए लीआ॥—इस प्रसंग में 'सतगुर परचै' को 'साचै सबद समाए लीआ' के साथ जोड़ा गया है। सतगुरु की पहचान का अर्थ शब्द की पहचान है। शिष्य सतगुरु से प्रभु भक्ति की युक्ति प्राप्त कर लेता है, परंतु उसे सतगुरु के वास्तविक स्वरूप की पहचान नहीं होती। न देह शिष्य है, न ही देह सतगुरु है। सुरत शिष्य है और शब्द की ध्वनि सतगुरु है। जब शिष्य की सुरत अंदर शब्द के साथ जुड़ जाती है, तो उसे पता चलता है कि शब्द गुरु है और गुरु शब्द है। इस अवस्था को गुरु के शब्दरूप की पहचान भी कहा जाता है। उस अवस्था में सुरत शब्द में समा जाती है और शब्द उसे अपने साथ वापस प्रभु में ले जाता है।

एके कउ सच एका जाणै हउमै दूजा दूर कीआ॥—वर्तमान अवस्था में पूर्ण अद्वैत कोरा सिद्धांत, संकल्प या आदर्श है। जब सुरत अंदर शब्द में लीन हो जाती है तो पूर्ण अद्वैत एक वास्तविकता बन जाता है। फिर सूझ होती है कि जो कुछ है, वह एक है। जब प्रकाश होता है तो अँधेरे का नाश हो जाता है। जब पूर्ण अद्वैत का व्यक्तिगत अनुभव हो जाता है तो स्वाभाविक ही हौंमैं और द्वैत का नाश हो जाता है। वाणी में ऐसे प्रसंग भी हैं,

जिनमें कहा गया है कि हौंमैं और द्वैत का नाश करने पर सत्य की सूझ होती है और ऐसे प्रसंग भी हैं, जिनमें यह कहा गया है कि सत्य की पहचान से हौंमैं और द्वैत का नाश हो जाता है। 23 वीं पउड़ी की व्याख्या में गुरु नानक साहिब की वाणी का एक ऐसा प्रसंग पीछे देख आए हैं।

सो जोगी गुर सबद पछाणै अंतर कमल प्रगास थीआ॥—सच्चा योगी वही है, जिसकी सुरत अंदर गुरु के शब्द (शब्दगुरु) में लीन हो जाती है। इससे उसका हृदय कमल प्रकाश से भर जाता है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

सबद मरै तिस निज घर वासा॥ आवै न जावै चूकै आसा॥
गुर कै सबद कमल परगासा॥[45]

जब सुरत शब्द में समाकर शब्द का रूप हो जाती है, तो हृदय कमल प्रकाश से भर जाता है और जीव आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। इस अवस्था को हृदय कमल का सीधा हो जाना भी कहा गया है। वर्तमान अवस्था में चंचल और अस्थिर मन अंधाधुंध, ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर की ओर दौड़ रहा है। यही हृदय कमल का उलटा हो जाना है। जब सुरत अंदर शब्द में लीन हो जाती है, तो मन की वृत्ति बाहर से अंदर और नीचे से ऊपर की तरफ़ हो जाती है। इसे हृदय-कमल का सीधा हो जाना या खिल जाना कहा गया है। गुरु साहिब कहते हैं:

उलटिओ कमल ब्रहम बीचार॥ अंम्रित धार गगन दस दुआर॥
त्रिभुवण बेधिआ आप मुरार॥[46]

उलटा हुआ हृदय कमल प्रभु की भक्ति द्वारा सीधा हो गया। सुरत ने दसवें द्वार में पहुँचकर नाम या शब्द की अमृत धारा में स्नान करना शुरू कर दिया। इस तरह त्रिलोकी को पार करके परमेश्वर की हुज़ूरी में पहुँच गई।

जीवत मरै ता सभ किछ सूझै अंतर जाणै सरब दइआ॥—ऊपर हृदय कमल के सीधा हो जाने या खिल जाने का भाव प्रकट किया गया है। गुरु साहिब पीछे प्रकट किए गए भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं कि

हृदय कमल के सीधा हो जाने या खिल जाने का सौभाग्य जीते-जी मरने की अवस्था में पहुँचकर होता है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सतगुर मिलै त दुबिधा भागै॥ कमल बिगास मन हर प्रभ लागै॥
जीवत मरै महा रस आगै॥[47]

'जीवत मरै' कथन में एक विरोधाभास है। जो जीवित है, वह मृत नहीं और जो मृत है, वह जीवित नहीं। संत-महात्माओं का जीते-जी मरने से अभिप्राय पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था है, जिसमें ध्यान पूरी तरह से आँखों के ऊपर एकाग्र और स्थिर हो जाता है। उस अवस्था में चेतना के आँखों से ऊपर सिमट जाने के कारण शरीर का आँखों से नीचे का हिस्सा पूरी तरह सुन्न हो जाता है। शरीर की हालत मुर्दे के समान हो जाती है, परंतु आत्मा अंदर पूरी तरह चेतन होती है। इस अवस्था में जीवन और मृत्यु की क्रिया इकट्ठी चलती है। जब तक ध्यान अंदर शब्द में लीन रहता है, जीव शरीर के आँखों से निचले भाग और संसार की तरफ़ से अचेत या मुर्दा, परंतु आंतरिक जगत् की ओर से सचेत यानी जीवित होता है। जब वह अपना ध्यान पुन: आँखों से नीचे उतार लेता है, तो शरीर और संसार की ओर से जीवित हो जाता है और आंतरिक संसार की ओर से मुर्दा हो जाता है। इसे ही परमार्थिक भाषा में जीते-जी मरने की अवस्था कहा गया है।

साधक को जो भी आध्यात्मिक प्राप्ति होती है, जीते-जी मरने के अभ्यास से समाधि की अवस्था में पहुँचकर होती है। गुरु नानक साहिब योगियों को समझाते हैं:

नानक जीवतिआ मर रहीऐ ऐसा जोग कमाईऐ॥
वाजे बाझहो सिंङी वाजै तउ निरभउ पद पाईऐ॥[48]

सच्चा योग यह है कि जीते-जी मरकर सुरत को अनहद शब्द की ध्वनि में लीन करके निर्भय पद की प्राप्ति कर ली जाए। आप फ़रमाते हैं:

मुइआ जित घर जाईऐ तित जीवदिआ मर मार॥
अनहद सबद सुहावणे पाईऐ गुर वीचार॥[49]

साधक मृत्यु के पश्चात् जिस घर (निज घर) में जाने की इच्छा रखता है, उसे जीते-जी अपनी सुरत उस घर में पहुँचा देनी चाहिए। उस घर में उसे अनहद शब्द के सुहावने राग सुनाई देंगे।

गुरु रामदास जी का कथन है: जीवत मरै मरै फुन जीवै तां मोखंतर पाए॥[50] जो साधक जीते-जी मरने का अभ्यास पक्का कर लेता है, वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

गुर कै सबद मरह फिर जीवह तिन कउ मुकत दुआर॥
अंतर सांत सदा सुख होवै हर राखिआ उर धार॥[51]

कबीर साहिब की वाणी है:

जीवत मरै मरै फुन जीवै ऐसे सुंन समाइआ॥
अंजन माहे निरंजन रहीऐ बहुड़ न भवजल पाइआ॥[52]

जो साधक जीते-जी मर जाता है, उसका ध्यान सुन्न मंडल में स्थिर हो जाता है। इससे वह माया में रहता हुआ भी उसके प्रभाव से निर्लिप्त रहता है। हौंमैं का नाश बातों से या सोच-विचार द्वारा नहीं होता। यह कार्य जीते-जी मरकर सुरत को शब्द में लीन करने से पूर्ण होता है।

नानक ता कउ मिलै वडाई आप पछाणै सरब जीआ॥—गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि वास्तविक बड़ाई उसे ही मिलती है जो अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान द्वारा प्रभु की पहचान कर लेता है। उसे प्रत्येक जीव में उस एक प्रभु का नूर दिखाई देने लगता है। इससे उसकी प्रत्येक जीव के साथ आत्मिक साझेदारी हो जाती है, उसे सभी अपने लगने लगते हैं, कोई भी पराया नहीं लगता। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

बिसर गई सभ तात पराई॥ जब ते साधसंगत मोहे पाई॥
ना को बैरी नही बिगाना सगल संग हम कउ बन आई॥
जो प्रभ कीनो सो भल मानिओ एह सुमत साधू ते पाई॥
सभ मह रव रहिआ प्रभ एकै पेख पेख नानक बिगसाई॥[53]

साचौ उपजै साच समावै साचे सूचे एक मइआ॥
झूठे आवह ठवर न पावह दूजै आवा गउण भइआ॥
आवा गउण मिटै गुर सबदी आपे परखै बखस लइआ॥
एका बेदन दूजै बिआपी नाम रसाइण वीसरिआ॥
सो बूझै जिस आप बुझाए गुर कै सबद सो मुकत भइआ॥
नानक तारे तारणहारा हउमै दूजा परहरिआ॥ २५॥

शब्दार्थ: साचौ=सच्चे प्रभु से; **एक मइआ**=एक हो जाता है; **ठवर**=ठिकाना; **दूजै**=द्वैत का भाव; **रसाइण**=दवा।

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ियों में प्रकट किए गए भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: सब जीव प्रभुरूपी सत्य से उत्पन्न हुए हैं और अंत में उसी में समा जाते हैं। जो जीव उस सच्चे प्रभु की आराधना या भक्ति द्वारा निर्मल हो जाते हैं, वे उस प्रभु की दया से उसमें ही समा जाते हैं। जो अज्ञानी जीव माया की झूठी शक्लों और पदार्थों के मोह में खोये रहते हैं, उन्हें कहीं ठिकाना नहीं मिलता। वे आवागमन के चक्कर में पड़े रहते हैं। आवागमन गुरु द्वारा बताये शब्द के अभ्यास द्वारा मिटता है। वह प्रभु जिन्हें बख़्श लेता है, उन्हें स्वयं ही परख के योग्य बना लेता है। सारा संसार द्वैत के रोग से पीड़ित है। सब लोग एक प्रभु के प्रेम के बजाय अनेक के मोह में ग्रस्त हैं। लोगों को यह सूझ नहीं रही कि इस रोग का वास्तविक इलाज प्रभु का नाम है। जिन्हें वह प्रभु स्वयं सूझ देता है, वे सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द (नाम) के अभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। वह प्रभु जिन्हें पार करना चाहता है, उनकी हौंमैं और द्वैत मिटाकर, उनका भवसागर से उद्धार कर देता है।

❖ ***साचौ उपजै साच समावै साचे सूचे एक मइआ॥***
झूठे आवह ठवर न पावह दूजै आवा गउण भइआ॥
आवा गउण मिटै गुर सबदी आपे परखै बखस लइआ॥
एका बेदन दूजै बिआपी नाम रसाइण वीसरिआ॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि संसार में दो प्रकार के लोग हैं – सच्चे भाव सचियार तथा झूठे भाव कूड़ियार। दोनों ही उस एक सच में से आते हैं तथा

उस में ही समाना चाहते हैं। सच्चे उस एक सच्चे के साथ प्रेम करते हैं और उसकी भक्ति द्वारा उसके साथ मिलकर सच्चे बन जाते हैं। **दूजै**—जो लोग एक सच्चे के स्थान पर अनेक दूसरों या झूठों के मोह में फँसे हुए हैं, वे झूठे सदैव आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं। सारा संसार द्वैत या झूठे पदार्थों के मोह के रोग से पीड़ित है। इस रोग की दवा प्रभु का नाम है, परंतु लोगों का उस तरफ़ ध्यान ही नहीं है।

सो बूझै जिस आप बुझाए गुर कै सबद सो मुकत भइआ॥
नानक तारे तारणहारा हउमै दूजा परहरिआ॥

प्रभु जिन्हें अपनी पहचान करवाना चाहता है उन्हें सतगुरु से मिला देता है। वे भाग्यशाली जीव सतगुरु के शब्द से लिव जोड़कर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। केवल वह प्रभु ही दया द्वारा हौंमैं के रोग का नाश करके जीव का भवसागर से उद्धार कर सकता है। गुरु अमरदास जी ने इस विचार का खुलासा इस प्रकार किया है:

खोटे खरे तुध आप उपाए॥ तुध आपे परखे लोक सबाए॥
खरे परख खजानै पाइहे खोटे भरम भुलावणिआ॥
किउ कर वेखा किउ सालाही॥ गुर परसादी सबद सलाही॥
तेरे भाणे विच अंम्रित वसै तूं भाणै अंम्रित पीआवणिआ॥[54]

अच्छे-बुरे (खोटे-खरे), झूठे और सच्चे सभी को उस एक कर्ता ने उत्पन्न किया है। उनकी परख करनेवाला भी वही है और उन्हें परख के क़ाबिल बनानेवाला भी वही है। उसने अच्छे और बुरे दोनों के अंदर अपने शब्द का अमृत समान रूप से रखा हुआ है। जिन्हें वह अपनी रज़ा से अपने साथ मिलाना चाहता है, उन्हें सतगुरु की शरण बख़्श देता है। वे ध्यान को शब्द के साथ जोड़कर, प्रभु में समाकर सच्चे बन जाते हैं।

मनमुख भूलै जम की काण॥ पर घर जोहै हाणे हाण॥
मनमुख भरम भवै बेबाण॥ वेमारग मूसै मंत्र मसाण॥
सबद न चीनै लवै कुबाण॥ नानक साच रते सुख जाण॥ २६॥

शब्दार्थ: जोहै=ताकता है; **हाणे हाण**=नुकसान ही नुकसान; **बेबाण**=बियाबान, जंगल; **वेमारग**=कुमार्ग पर; **मूसै**=लुट जाता है; **मंत्र मसाण**=श्मशान में मंत्रों का जाप करता है; **न चीनै**=पहचान नहीं करता; **लवै कुबाण**=कटुवचन बोलता है।

सरलार्थ: गुरु साहिब समझाते हैं कि मनमुख अज्ञानता के कारण यमों के वश में पड़े रहते हैं। वह पराए घरों की ओर ताकता है और सदा नुकसान में रहता है। प्रभु का निज घर अंतर में है। मनमुख ध्यान को अंतर में उसके साथ जोड़ने के बजाय उसकी खोज में बाहर भटकते हैं इसलिए वे सदा हानि उठाते हैं। मनमुख प्रभु की तलाश में श्मशानों में भटकते रहते हैं। वे श्मशान भूमि में मंत्र पढ़ते रहते हैं और कुमार्ग पर चलकर सबकुछ लुटा बैठते हैं। वे शब्द की पहचान करने के बजाय कटुवचन बोलते रहते हैं। सच्चा सुख केवल नाम के रंग में रँग जाने से ही प्राप्त होता है।

❖ गुरु साहिब बार-बार इस बात पर बल दे रहे हैं कि मनमुखता त्यागकर सतगुरु के उपदेशानुसार लिव अंदर प्रभु के शब्द के साथ जोड़नी चाहिए। आप समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा दोनों शरीर के अंदर हैं। जो लोग शब्द या नाम के अंतर्मुख सच्चे मार्ग को छोड़कर बाहर श्मशान में मंत्र पढ़ते रहते हैं या भक्ति के अन्य अनेक प्रकार के साधन अपनाते हैं, वे ग़लत मार्ग पर चलकर ख़्वार होते हैं। वे शब्द की पहचान करने के बजाय दुर्वचन बोलते हैं। वे सदैव दु:खों का शिकार रहते हैं। उनका आवागमन का दु:ख कभी दूर नहीं हो सकता। प्रभु की कृपा से जिसका सतगुरु के साथ मिलाप हो जाता है, वह शब्द के अभ्यास से सच्चे सुख का अधिकारी बन जाता है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

मनमुख कउ दुख दरद विआपस मनमुख दुख न जाई॥
सुख दुख दाता गुरमुख जाता मेल लए सरणाई॥
मनमुख ते अभ भगति न होवस हउमै पचह दिवाने॥
इह मनूआ खिन ऊभ पइआली जब लग सबद न जाने॥[55]

मनमुख कौन है? जो गुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर शब्द से जोड़ने के बजाय मनचाहे साधनों द्वारा बाहर ही बाहर प्रभु की खोज करता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

नाम न चेतह सबद न वीचारह इह मनमुख का आचार॥
हर नाम न पाइआ जनम बिरथा गवाइआ नानक जम मार करे खुआर॥[56]

गुरमुख साचे का भउ पावै॥ गुरमुख बाणी अघड़ घड़ावै॥
गुरमुख निरमल हर गुण गावै॥ गुरमुख पवित्र परम पद पावै॥
गुरमुख रोम रोम हर धिआवै॥ नानक गुरमुख साच समावै॥ २७॥

शब्दार्थ: अघड़ घड़ावै=असाध्य मन को साध लेता है।

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ी में मनमुख की अवस्था का वर्णन कर आए हैं। अब आप गुरुमुखों की महिमा करते हुए कहते हैं: जो गुरुमुख गुरु के उपदेश पर चलता है उसके मन में सच्चे प्रभु का भय उत्पन्न होता है। ऐसा गुरुमुख गुरु के शब्द द्वारा अपने असाध्य मन को साध लेता है। गुरु के उपदेश पर चलनेवाला साधक निर्मल हरि के गुण गाता है। उसे निर्मल परमपद की प्राप्ति हो जाती है। गुरु की कृपा द्वारा उसका रोम-रोम हरि के ध्यान में मग्न रहता है। इस तरह से वह प्रभुरूपी सत्य में समाकर उसका ही रूप हो जाता है।

❖ ***गुरमुख साचे का भउ पावै॥***—गुरुमुख के अंदर प्रभु का भय उत्पन्न हो जाता है। वह ऐसे कर्मों से बचता है, जो प्रभु को पसंद नहीं हैं। वह प्रभु को पसंद आनेवाली रहनी अपनाता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

बिन भै कथनी सरब बिकार॥ कहो नानक दर का बीचार॥[57]

जब तक हृदय में प्रभु का भय उत्पन्न नहीं होता, उसके प्रेम और भक्ति की सभी बातें व्यर्थ हैं। गुरु रामदास जी की वाणी है:

हर गुण हिरदै टिकह तिस कै जिस अंतर भउ भावनी होई॥
बिन भै किनै न प्रेम पाइआ बिन भै पार न उतरिआ कोई॥[58]

जब तक हृदय में प्रभु का भय न हो, उसमें प्रभु का प्रेम और भक्ति भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। प्रभु के भय के बिना कोई भी भवसागर से पार नहीं हो सकता। गुरु अमरदास जी ने यह भाव इस प्रकार प्रकट किया है: 'भै बिन भगति न होई कब ही भै भाए भगति सवारी॥'[59] जब तक हृदय में प्रभु का भय उत्पन्न नहीं होता, उसका प्रेम भी उत्पन्न नहीं हो सकता और उसकी भक्ति में सफलता भी नहीं मिल सकती। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

कामण गुणवंती हर पाए॥ भै भाए सीगार बणाए॥
सतगुर सेव सदा सोहागण सच उपदेस समावणिआ॥[60]

जो जीवात्मारूपी प्रेमिका भय और प्रेम का श्रृंगार करती है, वही प्रभु प्रियतम के साथ मिलाप में सफल होती है।

गुरमुख बाणी अघड़ घड़ावै॥—इस पंक्ति के एक अर्थ यह किए जाते हैं कि गुरुमुख गुरु की वाणी या उपदेश द्वारा असाध्य मन को साध लेता है। जो लकड़ी तराशी नहीं गई, वह देखने में भद्दी लगती है। जब तराशी जाती है, तो ख़ूबसूरत कुर्सी या मेज़ आदि का रूप धारण कर लेती है। सोने को तराशा जाता है, तो सुंदर गहने का रूप ले लेता है। जीव सतगुरु की शरण में आने से पहले मनमुखता का शिकार होता है। उसका मन बहुत विचलित रहता है। सतगुरु के उपदेश पर चलने से शिष्य की अवस्था बिलकुल बदल जाती है। उसकी दुर्मति का नाश हो जाता है। वह ऐंद्रिय भोगों, विषय-विकारों और माया के मोह से मुक्त होकर प्रभु के प्रेम और नाम के रंग में रँग जाता है।

इस पंक्ति के दूसरे अर्थ यह किए जाते हैं कि गुरुमुख के अंदर प्रभु की असाध्य वाणी प्रकट हो जाती है। गुरु साहिबान ने अनहद शब्द या अनहद वाणी को प्रभु के समान स्वत: प्रकाशमान स्वीकार किया है। वह वाणी किसी भाषा की छंदों में बँधी रचना नहीं है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

अनहत बाणी गुर सबद जाणी हर नाम हर रस भोगो॥
कहै नानक प्रभ आप मिलिआ करण कारण जोगो॥[61]

आपने 'गुरु', 'शब्द', 'हर', 'नाम', 'हर रस' और 'अनहत वाणी' को हरि का ही रूप माना है।

गुरमुख निरमल हर गुण गावै॥ गुरमुख पवित्र परम पद पावै॥—गुरुमुख सदैव माया रहित निर्मल निराकार की भक्ति में मग्न रहता है। परमपद का अर्थ है, सबसे ऊँची आध्यात्मिक अवस्था जो प्रभु का निवास स्थान या सचखण्ड है। गुरु साहिब समझाते हैं कि जो गुरुमुख सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति करता है, उसे प्रभु यानी परमपद प्राप्त हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

परम पद पाइआ आप मिटाइआ हर पूरन किरपा धारी॥
सफल जनम होआ भउ भागा हर भेटिआ एक मुरारी॥
जिस का सा तिन ही मेल लीआ जोती जोत समाइआ॥
नानक नाम निरंजन जपीऐ मिल सतगुर सुख पाइआ॥[62]

जो साधक संत-सतगुरु की शरण प्राप्त करके हरि के निर्मल नाम का सुमिरन करता है, उसकी ज्योति परम ज्योति में समा जाती है और उसे सहज सुख वाले परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

गुरमुख रोम रोम हर धिआवै॥ नानक गुरमुख साच समावै॥—गुरु के शिष्य को जो भी प्रयत्न करना पड़ता है, ध्यान को अंदर एकाग्र और स्थिर करने के लिए करना पड़ता है। जब ध्यान अंदर स्थिर हो जाता है, तो शब्द यानी नामरूपी वाणी बिना प्रयत्न के निरंतर सुनाई देती है। जब गुरुमुख की सुरत पूरी तरह शब्द में लीन हो जाती है, तो यह अपने-आप प्रभु में समा जाती है। गुरु साहिब की वाणी है:

मन बैराग रतउ बैरागी सबद मन बेधिआ मेरी माई॥
अंतर जोत निरंतर बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥[63]

जब मन प्रभु के प्रेम द्वारा संसार से उपराम हो गया तो यह पूरी तरह से शब्द में समा गया। फिर शब्द की ज्योति निरंतर दिखाई देने लगी और उसमें से निकल रही वाणी की ध्वनि निरंतर सुनाई देने लगी। इस प्रकार सुरत प्रभु में लीन हो गई।

इस अवस्था को 'रोम रोम हर धिआवै' का नाम दिया गया है। जब सुरत पूरी तरह शब्द में लीन हो जाती है तो शब्द की धारा उसे अपने स्रोत प्रभु में लीन कर देती है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

बाणी राम नाम सुणी सिध कारज सभ सुहाए राम॥
रोमे रोम रोम रोमे मै गुरमुख राम धिआए राम॥[64]

जब सतगुरु की कृपा से अंदर राम नामरूपी वाणी सुनाई देने लगी, तो रोम-रोम हरि के ध्यान में मग्न हो गया और सभी कार्य सिद्ध हो गए भाव प्रभु के साथ मिलाप हो गया।

गुरमुख परचै बेद बीचारी॥ गुरमुख परचै तरीऐ तारी॥
गुरमुख परचै सो सबद गिआनी॥ गुरमुख परचै अंतर बिध जानी॥
गुरमुख पाईऐ अलख अपार॥ नानक गुरमुख मुकत दुआर॥ २८॥

शब्दार्थ: परचै=पहचान, विश्वास।

सरलार्थ: जो गुरु में विश्वास रखता है, वह ज्ञान का विचार करनेवाला भाव ज्ञानी हो जाता है। जो गुरु में विश्वास रखता है, वह भक्ति द्वारा भवसागर को पार कर लेता है। जो गुरु में विश्वास करता है, उसे शब्द का ज्ञान, भाव अनुभव प्राप्त हो जाता है। जो गुरु में विश्वास रखता है, उसे अंतर्मुख होने की युक्ति का ज्ञान हो जाता है और आंतरिक जगत् की सूझ हो जाती है। गुरु द्वारा अगम-अपार प्रभु की प्राप्ति हो जाती है और मुक्ति का दरवाज़ा मिल जाता है।

❖ ***गुरमुख परचै बेद बीचारी॥ गुरमुख परचै तरीऐ तारी॥***—सतगुरु पर विश्वास का आरंभ सतगुरु की बाहरी संगति से होता है, परंतु यह विश्वास सुरत को अंदर शब्द में लीन करने पर दृढ़ होता है। ग्रंथों और शास्त्रों में

अंकित प्रभु के ज्ञान की सूझ भी शब्दरूपी सतगुरु के मिलाप द्वारा होती है। भवसागर से उद्धार और मुक्ति की प्राप्ति भी सुरत को शब्द में लीन करने से होती है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

गुर पूरै सच समाइआ॥ गुर आद पुरख हर पाइआ॥
सभ नाद बेद गुरबाणी॥ मन राता सारिगपाणी॥[65]

सतगुरु के वचनों में सब धर्म ग्रंथों का सार समाया हुआ है। आदि पुरुष यानी प्रभुरूपी सत्य में लीन होने का सौभाग्य सतगुरु द्वारा ही प्राप्त होता है। गुरु साहिब 'जप जी' में कहते हैं:

गुरमुख नादं गुरमुख वेदं गुरमुख रहिआ समाई॥
गुर ईसर गुर गोरख बरमा गुर पारबती माई॥[66]

शब्द की सूझ भी सतगुरु द्वारा होती है, धर्म ग्रंथों का ज्ञान भी गुरु के उपदेश में समाया होता है और सभी देवी-देवता भी गुरु में ही समाये होते हैं। भाव यह है कि गुरु प्रभु का रूप होता है। वह प्रभु की तरह ही पूर्ण ज्ञान की मूरत होता है। इसलिए स्वाभाविक ही उसका उपदेश पूर्ण ज्ञान से भरपूर होता है।

गुरमुख परचै सो सबद गिआनी॥ गुरमुख परचै अंतर बिध जानी॥—धर्म ग्रंथों में प्रतिदिन शब्द (नाम) की महिमा पढ़ते हैं, परंतु उसका निजी आंतरिक अनुभव सतगुरु के उपदेश पर चलने से होता है। ध्यान को संसार और शरीर की ओर से मोड़कर अंदर स्थिर करने की बड़ाई तो सभी बयान करते हैं, परंतु इसे व्यावहारिक रूप से अंदर एकाग्र और स्थिर करने की युक्ति सतगुरु की शरण द्वारा ही प्राप्त होती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है: 'सतगुर परचै हर नाम समाना॥ जिस करम होवै सो सतगुर पाए अनदिन लागै सहज धिआना॥'[67] जो सतगुरु पर भरोसा रखकर नाम में समा जाता है, उसका शब्द स्वरूप सतगुरु से मिलाप हो जाता है और वह सदा उसके ध्यान में मग्न रहता है। भाई गुरदास जी लिखते हैं: 'सबद सुरत परचा करै सतगुर परचै मन परचाए॥'[68] जब सुरत शब्दरूपी सतगुरु में समा जाती है, तभी सतगुरु पर पूर्ण विश्वास हो जाता है और मन वश में आ जाता है।

गुरमुख पाईऐ अलख अपार॥ नानक गुरमुख मुकत दुआर॥—वर्तमान अवस्था में प्रभु अगम-अगोचर है। वह मन-इंद्रियों, बुद्धि और कल्पना की पकड़ से बाहर है। सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर शब्द में लीन करने से उस अलख-अपार की पहचान हो जाती है, अगम-अगोचर प्रभु से मिलाप हो जाता है और आवागमन के चक्कर से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है: 'अगम अगोचर अनाथ अजोनी गुरमत एको जानिआ॥'[69] गुरु अमरदास जी की वाणी है: 'अगम अगोचर क़ीमत नही पाई॥ गुर परसादी मंन वसाई॥'[70] संत नामदेव जी कहते हैं:

नामदेउ नाराइन पाइआ॥ गुर भेटत अलख लखाइआ॥[71]

कहने को तो सब कह देते हैं कि प्रभु सर्वव्यापक है और अपने ही अंदर है, परंतु वास्तव में वह अगम-अगोचर, अलख-अपार है। केवल सतगुरु की दया से ही अंदर उसकी पहचान हो जाती है।

गुरमुख अकथ कथै बीचार॥ गुरमुख निबहै सपरवार॥
गुरमुख जपीऐ अंतर पिआर॥ गुरमुख पाईऐ सबद अचार॥
सबद भेद जाणै जाणाई॥ नानक हउमै जाल समाई॥ २९॥

शब्दार्थ: निबहै=पार हो जाता है; **अचार**=आचरण, रहनी।

सरलार्थ: पिछली पउड़ी वाले भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: गुरु की कृपा द्वारा गुरु के उपदेश पर चलनेवाले साधक यानी गुरुमुख, उस अकथ प्रभु से मिलाप करके उसकी महिमा करते हैं। वे स्वयं भी भवसागर से पार हो जाते हैं और उनके साथी भी सतगुरु के उपदेश पर चलकर भवसागर को पार कर जाते हैं। सतगुरु की दया से हृदय में प्रभु के नाम का प्रेम उत्पन्न होता है और शब्द के अभ्यासवाली रहनी प्राप्त होती है। शब्द का भेद सतगुरु से ही प्राप्त हो सकता है और इस के द्वारा हौंमैं का नाश करके ही प्रभु में अभेद हो सकते हैं।

❖ ***गुरमुख अकथ कथै बीचार॥***—जब तक जीव का सतगुरु से मिलाप नहीं होता, परमात्मा उसके लिए अलख, अगम और अकथ होता है। सतगुरु की

दया से जीव को उसकी सूझ हो जाती है और वह उसका गुणगान करना शुरू कर देता है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं: 'सो गुर करउ जि साच द्रिड़ावै॥ अकथ कथावै सबद मिलावै॥'[72] आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं: 'अकथ कथउ गुरमत वीचार॥ मिल गुर संगत पावउ पार॥'[73] सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को प्रभु के शब्द के साथ जोड़ना ही अकथ प्रभु की स्तुति करना है। ***गुरमुख निबहै सपरवार॥***—योगियों ने 17वीं पउड़ी में प्रश्न किया था कि तुम अपनी संगत का भवसागर से उद्धार कैसे करोगे? गुरु साहिब ने 18वीं पउड़ी में स्पष्ट किया था कि हम नामरूपी सच्चे धन के व्यापारी हैं और गुरु की संगत भी नाम के अभ्यास द्वारा भवसागर से पार हो जाती है। यहाँ समझा रहे हैं कि गुरु के उपदेश पर चलनेवाले और उनकी तरह गुरु की शरण लेनेवाले उनके सभी सगे-संबंधी भी भवसागर से पार हो जाते हैं। गुरु साहिब गउड़ी राग के एक शब्द में फ़रमाते हैं:

निरभउ जोगी निरंजन धिआवै॥ अनदिन जागै सच लिव लावै॥
सो जोगी मेरै मन भावै॥
काल जाल ब्रहम अगनी जारे॥ जरा मरण गत गरब निवारे॥
आप तरै पितरी निसतारे॥[74]

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

धंन धंन धंन जन आइआ॥ जिस प्रसाद सभ जगत तराइआ॥
जन आवन का इहै सुआउ॥ जन कै संग चित आवै नाउ॥
आप मुकत मुकत करै संसार॥ नानक तिस जन कउ सदा नमसकार॥[75]

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि प्रभु के भक्त अनंत जीवों को प्रभु के साथ जोड़कर उनका उद्धार कर देते हैं।

गुरमुख जपीऐ अंतर पिआर॥ गुरमुख पाईऐ सबद अचार॥—प्रेम भरे हृदय से प्रभु का सुमिरन करने की युक्ति भी गुरुमुखों की दया से प्राप्त होती है और सुरत को शब्द के साथ जोड़ने के साधन का ज्ञान भी गुरुमुखों से प्राप्त होता है।

गुरु अमरदास जी का कथन है: 'बिन सबदै आचार न किन ही पाइआ॥ गुरमुख ओअंकार सच समाइआ॥'[76] शब्द के बिना सच्चा आचरण प्राप्त नहीं हो सकता। जो सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार शब्द का अभ्यास करता है, वह प्रभुरूपी सत्य में समाकर उसका रूप हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सबद मिले से सूचाचारी साची दरगह माने॥
अनदिन नाम रतन लिव लागे जुग जुग साच समाने॥
सगले करम धरम सुच संजम जप तप तीरथ सबद वसे॥
नानक सतगुर मिलै मिलाइआ दूख पराछत काल नसे॥[77]

सच्चा और निर्मल आचरण शब्द का अभ्यास है। इससे ही प्रभु के घर में पहुँचने की बड़ाई प्राप्त होती है। जिनकी लिव नाम के साथ लगी रहती है, वे सदा के लिए प्रभुरूपी सत्य में समा जाते हैं। हर प्रकार के कर्म-धर्म, जप-तप, तीर्थ-व्रत आदि का फल शब्द के अभ्यास में शामिल है। सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ने से आवागमन के दुःखों का नाश हो जाता है, काल का भय समाप्त हो जाता है और प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

सबद भेद जाणै जाणाई॥ नानक हउमै जाल समाई॥—शब्द का भेद प्रभु की दया से प्राप्त होता है। जो साधक शब्द द्वारा हौंमैं का नाश कर लेता है, वह सदा के लिए प्रभु में समा जाता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

सबद मिलै सो मिल रहै जिस नउ आपे लए मिलाए॥
दूजै भाए को ना मिलै फिर फिर आवै जाए॥[78]

शब्द के साथ केवल वही मिल सकते हैं, जिन पर प्रभु स्वयं कृपा करता है। आप कहते हैं:

धुर आपे जिन्हा नो बखसिओन भाई सबदे लइअन मिलाए॥
धूड़ तिन्हा की अघुलीऐ भाई सतसंगत मेल मिलाए॥[79]

जो प्रभु की कृपा से शब्द के साथ जुड़ जाते हैं, उनकी हौंमैं का नाश हो जाता है और उन्हें प्रभु के साथ मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

हउमै निवरै गुर सबद वीचारै॥ चंचल मत तिआगै पंच संघारै॥[80]

सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द के साथ लिव जोड़ने से मन की चंचलता, पाँच विकारों और हौंमैं का नाश हो जाता है तथा भवसागर से उद्धार हो जाता है। आप फ़रमाते हैं:

हउमै ममता जल बलउ लोभ जलउ अभिमान॥
नानक सबद वीचारीऐ पाईऐ गुणी निधान॥[81]

जीवात्मा मोह-ममता और पाँच विकारों में बुरी तरह जल रही है। शब्द के अभ्यास द्वारा इन से छुटकारा मिल जाता है और अनंत गुणों के भंडार, प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

गुरमुख धरती साचै साजी॥ तिस मह ओपत खपत सो बाजी॥
गुर कै सबद रपै रंग लाए॥ साच रतउ पत सिउ घर जाए॥
साच सबद बिन पत नही पावै॥ नानक बिन नावै किउ साच समावै॥ ३०॥

शब्दार्थः ओपत=उत्पन्न होना; **खपत**=नष्ट हो जाना; **रपै**=रँगे हुए; **रतउ**=रँगे हुए; **साच**=सत्य में, प्रभु में।

सरलार्थः गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु ने गुरुमुखों के लिए धरती बनायी है। प्रभु ने धरती सृजित करके इसमें पैदा होने और नष्ट होने यानी जन्म-मरण का खेल बनाया हुआ है। जो जीव शब्द के अभ्यास द्वारा मन को प्रभु-प्रेम के रंग में रँग लेता है, वह प्रभुरूपी सत्य में लीन होकर निज घर पहुँच जाता है। सच्चे शब्द के बिना कभी भी निज घर पहुँचने की बड़ाई प्राप्त नहीं हो सकती। नाम के अभ्यास के बिना प्रभुरूपी सत्य में समाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

❖ ***गुरमुख धरती साचै साजी॥ तिस मह ओपत खपत सो बाजी॥***—गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु ने यह धरती जिसमें आवागमन के खेल का प्रसार है, गुरुमुखों के लिए सृजित की है। इस धरती को गुरुमुखों के लिए सृजित करने का वास्तविक भाव यह है कि गुरुमुख शब्द के अभ्यास द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं तथा उनके लिए इस धरती की उत्पत्ति लाभदायक सिद्ध हो जाती है। अन्य सभी जीव अपने कर्मों के अनुसार आवागमन के चक्कर में फँसे रहते हैं। गुरु नानक साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

संत हेत प्रभ त्रिभवण धारे॥ आतम चीनै सो तत बीचारे॥[82]

हरि ने संतों के लिए तीनों लोकों को टिकाया हुआ है ताकि वे अपना कार्य पूर्ण कर सकें। कैसे संतों के लिए? जो स्वयं आत्मा की पहचान द्वारा, परमात्मा की पहचान कर लेते हैं और दूसरे जीवों को भी प्रभु की भक्ति के रंग में रँगकर भवसागर से पार ले जाते हैं। ऐसे संत जीवन के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो जाते हैं। उनके लिए यह रचना मुबारक है। इसके विपरीत, जो लोग मनुष्य जन्म और रचना से लाभ उठाकर निज घर नहीं लौट सके, उनका न मनुष्य जन्म सफल हुआ और न ही रचना में आना।

धरती सब जीवों के लिए है, चाहे वे गुरुमुख हैं या मनमुख। मनमुखों के लिए यह धरती कर्मभूमि है, जिसमें उनकी परख करनी द्वारा होती है और फल का भुगतान करवाया जाता है। गुरु रामदास जी मनमुखों के विषय में कहते हैं:

माइआ माइआ के जो अधिकाई विच माइआ पचै पचीजै॥
अगिआन अंधेर महा पंथ बिखड़ा अहंकार भार लद लीजै॥[83]

जो लोग माया के मोह में फँस जाते हैं, वे अज्ञानता के अँधेरे और कठिन मार्ग में खो जाते हैं। वे अहंकारवश अपने सिर पर कर्मों की गठरियाँ बाँध लेते हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है:

माइआ दासी भगता की कार कमावै॥
चरणी लागै ता महल पावै॥ सद ही निरमल सहज समावै॥[84]

माया प्रभु के भक्तों की दासी है। जो भाग्यशाली जीव ऐसे भक्तों की शरण में आ जाते हैं, वे माया के प्रभाव से निर्मल होकर सहज अवस्था के अधिकारी बन जाते हैं।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि रचना वही है, फ़र्क हमारे दृष्टिकोण से पड़ता है। जो रचना के पुजारी हैं, रचना उनकी हाक़िम बनकर उन्हें आवागमन के जाल से बाँधकर रखती है। जो रचयिता के पुजारी बन जाते हैं, माया उनकी दासी बनकर रचयिता से मिलाप करने में उनकी सहायता करती है।

गुर कै सबद रपै रंग लाए॥ साच रतउ पत सिउ घर जाए॥—जो साधक गुरु के उपदेशानुसार मन को गुरु के शब्द के रंग में रँग लेते हैं, वे प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाते हैं और उन्हें प्रभु के घर पहुँचने की बड़ाई प्राप्त हो जाती है। ***साच सबद बिन पत नही पावै॥ नानक बिन नावै किउ साच समावै॥***—गुरु साहिब एक ही भाव को दो तरह से बयान करके यह सत्य दृढ़ करवा रहे हैं कि नाम के बिना कभी किसी को प्रभु में समाने की बड़ाई प्राप्त नहीं हो सकती।

गुरमुख असट सिधी सभ बुधी॥ गुरमुख भवजल तरीऐ सच सुधी॥
गुरमुख सर अपसर बिध जाणै॥ गुरमुख परविरत नरविरत पछाणै॥
गुरमुख तारे पार उतारे॥ नानक गुरमुख सबद निसतारे॥ ३१॥

शब्दार्थ: सुधी=उत्तम बुद्धि; **सर अपसर**=सही-ग़लत; **परविरत**=प्रवृत्ति; **नरविरत**=निवृत्ति, मुक्ति; **निसतारे**=मुक्ति बख़्श देता है।

सरलार्थ: गुरुमुख के उपदेश का पालन करने में ही आठ सिद्धियों तथा विवेक की प्राप्ति है। गुरुमुख भवजल से उद्धार करता है और सच्ची निर्मलता प्राप्त हो जाती है। गुरुमुख द्वारा सही-ग़लत, अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य की सूझ हो जाती है। गुरुमुख द्वारा प्रवृत्ति और निवृत्ति का रहस्य समझ में आ जाता है। गुरुमुख भवसागर से पार कर देता है। गुरुमुख शब्द द्वारा मुक्ति बख़्श देता है।

❖ ***गुरमुख असट सिधी सभ बुधी॥ गुरमुख भवजल तरीऐ सच सुधी॥***—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सतगुरु के उपदेश पर चलने से सभी सिद्धियाँ उसके अधीन हो जाती हैं, निर्मल विवेक की प्राप्ति हो जाती है, मन और आत्मा पूरी तरह निर्मल हो जाते हैं और भवसागर से उद्धार हो जाता है। ***गुरमुख सर अपसर बिध जाणै॥ गुरमुख परविरत नरविरत पछाणै॥***—गुरुमुख सही और ग़लत, असत्य और सत्य, कहने योग्य और न कहने योग्य, करने योग्य और न करने योग्य का भेद भलीभाँति समझता है। अभिप्राय यह है कि गुरुमुख अंधे, अज्ञानी या मनमुख की तरह नहीं रहता। उसके प्रत्येक कथन और कर्म को उत्तम आत्मिक ज्ञान और श्रेष्ठ विवेक का आधार प्राप्त होता है। प्रवृत्ति का अर्थ है: मायामय संसार में रहने की युक्ति और निवृत्ति का अर्थ है: मायामय जगत् से मुक्त होकर प्रभु से मिलाप करने की विधि। गुरु रामदास जी ने सूही राग में रचित चार लावों द्वारा जीव के प्रवृत्ति से निवृत्ति तक के सारे सफ़र का सुंदर उल्लेख किया है। आप कहते हैं:

हर पहिलड़ी लाव परविरती करम द्रिड़ाइआ बल राम जीउ॥
बाणी ब्रहमा वेद धरम द्रिड़हो पाप तजाइआ बल राम जीउ॥[85]

गुरु साहिब प्रवृत्ति या गृहस्थ जीवन को धर्म कह रहे हैं। उस धर्म का आधार प्रभु के बारे में ज्ञान प्राप्त करना और पाप कर्मों से बचना है। जब तक मन में प्रभु का प्रेम जाग्रत नहीं होता और जीव प्रभु से दूर ले जानेवाले कर्मों का त्याग नहीं करता, प्रवृत्ति यानी गृहस्थ जीवन पर धर्म या परमार्थ का रंग नहीं चढ़ सकता।

वर्तमान अवस्था में जीव माया के मोह और प्रभु के प्रेम, पुण्य और पाप, करने योग्य और न करने योग्य के भेद से अनभिज्ञ है और वह अंधे, अज्ञानी की तरह संसार में रह रहा है। सतगुरु की शरण प्राप्त होने से अचेत जीव सचेत हो जाता है। वह प्रत्येक कर्म यह सोचकर करता है कि यह उसे प्रभु के नज़दीक ले जाएगा या उससे दूर ले जाएगा, उसका कर्म रचना से बँधे रहने का कारण बन जाएगा या प्रभु से मिलाप का साधन सिद्ध होगा।

सतगुरु की शरण द्वारा जीव को संसार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियाँ अच्छी तरह से निभाने की युक्ति का भी ज्ञान हो जाता है और संसार से मुक्त होकर प्रभु से मिलाप करने के साधन और मार्ग के बारे में भी ज्ञान हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

बंधन तोर भए निरवैर॥ अनदिन पूजह गुर के पैर॥
इह लोक सुखीए परलोक सुहेले॥ नानक हर प्रभ आपह मेले॥[86]

जो शिष्य गुरु के उपदेश पर चलते हैं, वे लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं। प्रभु की कृपा से वे प्रभु में ही समा जाते हैं।

गुरमुख तारे पार उतारे॥ नानक गुरमुख सबद निसतारे॥—गुरुमुख अनेक लोगों को प्रभु के शब्द यानी नाम के साथ जोड़कर उनका भवसागर से उद्धार कर देता है। गुरु साहिब का कथन है: 'गुरमुख केती सबद उधारी संतहो॥'[87] गुरु साहिब 'सिध गोस्ट' की 40वीं पउड़ी में कहते हैं: 'गुरमुख कोट तेतीस उधारे॥' आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं: 'गुर मह आप रखिआ करतारे॥ गुरमुख कोट असंख उधारे॥'[88] गुरुमुख में प्रभु की शब्दरूपी शक्ति कार्यशील होती है, जिसके द्वारा वह अनगिनत जीवों का उद्धार कर देता है।

नामे राते हउमै जाए॥ नाम रते सच रहे समाए॥
नाम रते जोग जुगत बीचार॥ नाम रते पावह मोख दुआर॥
नाम रते त्रिभवण सोझी होए॥ नानक नाम रते सदा सुख होए॥ ३२॥

सरलार्थ: गुरु साहिब इस पउड़ी में नाम पद को शब्द के अर्थों में प्रयोग करते हुए समझाते हैं कि आत्मा जब नाम के रंग में रँग जाती है तो जीव की हौंमैं दूर हो जाती है। जीवात्मा नाम के अभ्यास द्वारा प्रभुरूपी सत्य में समाई रहती है। नाम के रंग में रँगने से सच्चे योग की युक्ति प्राप्त हो जाती है और जीवात्मा मुक्ति के द्वार पर पहुँच जाती है। नाम के रंग में रँगे हुए जीव को तीनों लोकों की सूझ हो जाती है। जो नाम के रंग में रँग जाता है, वह सदैव सुखी रहता है।

❖ 26वीं पउड़ी में मनमुख की अवस्था बयान करने के बाद 27 से 31 तक पाँच पउड़ियों में गुरुमुख की महिमा बयान की गई है। इन पाँच पउड़ियों का सार यह है कि शिष्य जो भी आत्मिक उन्नति करता है, गुरु के उपदेश पर चलकर करता है और गुरु के उपदेश का आधार हर तरह की बाहरी करनी में से ध्यान निकालकर लिव को अंदर नाम के साथ जोड़ना है।

इस पउड़ी में समझाते हैं कि नाम वह पूर्ण युक्ति है, जिसके द्वारा हौंमैं का नाश हो जाता है, मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, जीव को तीनों लोकों की सूझ हो जाती है और वह प्रभु के साथ मिलकर सहज सुख का अधिकारी बन जाता है। गुरु साहिब अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

हउमै निवरै गुर सबद वीचारै॥ चंचल मत तिआगै पंज संघारै॥
अंतर साच सहज घर आवह॥ राजन जाण परम गत पावह॥[89]

जो सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द (नाम) से लिव जोड़ लेता है, वह हौंमैं के रोग से मुक्त हो जाता है। उसका चंचल मन स्थिर हो जाता है और वह पाँच विकारों को नष्ट कर देता है। उसे प्रभु के सहज सुख के घर में निवास प्राप्त हो जाता है। वह प्रभुरूपी शहंशाहों के शहंशाह की पहचान करके परमपद की प्राप्ति कर लेता है।

नाम रते सिध गोस्ट होए॥ नाम रते सदा तप होए॥
नाम रते सच करणी सार ॥ नाम रते गुण गिआन बीचार॥
बिन नावै बोलै सभ वेकार॥ नानक नाम रते तिन कउ जैकार॥ ३३॥

सरलार्थ: नाम की महिमा करते हुए कहते हैं: नाम के रंग में रँगने से गोष्ठी पूर्ण हो जाती है। अभिप्राय यह है कि नाम के रंग में रँग चुका साधक, प्रभु में समाकर पूर्ण ज्ञानी बन जाता है। नाम में लीन हो जाने से जीव निरंतर प्रभु की भक्ति में लीन रहता है। नाम के रंग में रँगे रहना ही सच्ची करनी का सार है। नाम के रंग में रँग जाना ही सारे गुणों का सच्चा विचार है। नाम के अलावा किसी अन्य वस्तु के विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। जो नाम के रंग में रँगे हुए हैं, उन्हें नमस्कार है।

❖ **नाम रते सिध गोस्ट होए॥**—इस पंक्ति के अलग-अलग ढंग से अर्थ किए गए हैं। एक अर्थ यह है कि गोष्ठी की सिद्धि नाम द्वारा होती है। दूसरा अर्थ यह कि प्रभु के साथ गोष्ठी करने का सौभाग्य नाम द्वारा प्राप्त होता है। गुरु साहिब वास्तविक बल इस बात पर देते हैं कि सच्चे योग, पूर्ण ज्ञान या प्रभु के साथ मिलाप का साधन प्रभु का नाम है।

गुरु साहिब शेष पउड़ी में समझाते हैं कि नाम का अभ्यास ही सच्चा तप है, यही सबसे उत्तम आध्यात्मिक करनी है और इससे ही सभी पारमार्थिक गुण उत्पन्न होते हैं। आप कहते हैं कि नाम प्रभु का रूप है। वही सब गुणों का भंडार है। जो नाम के रंग में रँग जाता है, उसके अंदर सब पारमार्थिक गुण पैदा हो जाते हैं। नाम द्वारा सत्य, संतोष, क्षमा, विवेक, नम्रता आदि गुण ही पैदा नहीं होते बल्कि जीव को दिव्य दृष्टि भी मिल जाती है और वह परम तत्त्व का ज्ञाता भी बन जाता है। वास्तविक बड़ाई उनकी है, जो प्रभु के नाम के साथ जुड़े हुए हैं। अन्य सभी प्रकार के वाद-विवाद व्यर्थ हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपर नाम॥
हर हर रसना जो जपै तिस पूरन काम॥[90]

गुरु अमरदास जी चेतावनी देते हैं:

नाम तिआग करे अन काज॥ बिनस जाए झूठे सभ पाज॥
नाम संग मन प्रीत न लावै॥ कोट करम करतो नरक जावै॥
हर का नाम जिन मन न आराधा॥ चोर की निआई जम पुर बाधा॥[91]

गुरु गोबिन्द सिंह जी सावधान करते हैं:

जपो तास नामं। सरै सरब कामं॥[92]

सभ करम फोकट जान। सभ धरम निहफल मान।
बिन एक नाम अधार। सभ करम भरम बिचार॥[93]

गुरु साहिबान समझाते हैं कि नाम के अभ्यास में हर प्रकार की साधना का फल समाया हुआ है, परंतु नाम के अलावा किसी अन्य साधन द्वारा प्रभु के साथ मिलाप कर पाना असंभव है।

32 वीं और 33 वीं पउड़ी का नाम की महिमा की दृष्टि से 'सिध गोस्ट' में विशेष स्थान है। गुरु अर्जुन देव जी के नीचे दिए गए शब्द में इन पउड़ियों का भाव इस प्रकार प्रकट किया गया है:

नाम संग कीनो बिउहार॥ नामो ही इस मन का अधार॥
नामो ही चित कीनी ओट॥ नाम जपत मिटह पाप कोट॥
रास दीई हर एको नाम॥ मन का इसट गुर संग धिआन॥
नाम हमारे जीअ की रास॥ नामो संगी जत कत जात॥
नामो ही मन लागा मीठा॥ जल थल सभ मह नामो डीठा॥
नामे दरगह मुख उजले॥ नामे सगले कुल उधरे॥
नाम हमारे कारज सीध॥ नाम संग इह मनूआ गीध॥
नामे ही हम निरभउ भए॥ नामे आवन जावन रहे॥
गुर पूरै मेले गुणतास॥ कहो नानक सुख सहज निवास॥[94]

पूरे गुर ते नाम पाइआ जाए॥ जोग जुगत सच रहै समाए॥
बारह मह जोगी भरमाए संनिआसी छिअ चार॥
गुर कै सबद जो मर जीवै सो पाए मोख दुआर॥
बिन सबदै सभ दूजै लागे देखहो रिदै बीचार॥
नानक वडे से वडभागी जिनी सच रखिआ उर धार॥ ३४॥

शब्दार्थ: बारह=योगियों के बारह संप्रदाय; **छिअ चार**=6+4=10, संन्यासियों के 10 संप्रदाय; **उर धार**=अंदर धारण किया है।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने पीछे नाम की भरपूर महिमा की है। अब कहते हैं: नाम पूर्ण गुरु से प्राप्त होता है। जिन्हें पूर्ण गुरु से नाम प्राप्त हो जाता है, वे योग की इस सच्ची युक्ति द्वारा प्रभु में समा जाते हैं। बारह संप्रदायों में विभाजित योगी और दस संप्रदायों में विभाजित संन्यासी भ्रम

में भटक रहे हैं। जो सतगुरु के शब्द द्वारा जीते-जी मर जाता है, केवल वही मुक्ति का द्वार प्राप्त कर सकता है। मन में अच्छी तरह से विचार करके देख लो कि शब्द की साधना के बिना सब लोग द्वैत में खोये रहते हैं। भाग्यशाली केवल वे हैं जिन्होंने गुरु के शब्द द्वारा प्रभुरूपी सत्य को मन में धारण कर लिया है।

❖ ***पूरे गुर ते नाम पाइआ जाए॥ जोग जुगत सच रहै समाए॥***—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि योग में सिद्धि नाम में समा जाने पर आधारित है और नाम की दात पूरे गुरु से प्राप्त होती है।

गुरु साहिब ने 24 वीं पउड़ी में कहा है: 'सो जोगी गुर सबद पछाणै॥' गुरु अमरदास जी की वाणी है:

दिब द्रिसट जागै भरम चुकाए॥ गुर परसाद परम पद पाए॥
सो जोगी इह जुगत पछाणै गुर कै सबद बीचारी जीउ॥[95]

सच्चा योगी वही है, जो गुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार शब्द का अभ्यास करता है। उसकी दिव्य दृष्टि जाग्रत हो जाती है और उसे परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

बारह मह जोगी भरमाए संनिआसी छिअ चार॥
गुर कै सबद जो मर जीवै सो पाए मोख दुआर॥
बिन सबदै सभ दूजै लागे देखहो रिदै बीचार॥
नानक वडे से वडभागी जिनी सच रखिआ उर धार॥

गुरु साहिब दृढ़तापूर्वक समझाते हैं कि योग में सिद्धि प्राप्त करने का वास्तविक महत्त्व लिव को अंदर शब्द (नाम) के साथ जोड़ने से है, कोई विशेष भेष धारण करने से नहीं। योगियों के बारह और संन्यासियों के दस संप्रदाय इस भ्रम का शिकार हैं कि वे अपने-अपने संप्रदाय के भेष और कर्मकांड द्वारा योग में सिद्धि प्राप्त करने में सफल हो जाएँगे। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि इस भ्रम का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि मुक्ति,

प्रभु प्राप्ति या योग में पूर्णता किसी भेष या कर्मकांड द्वारा नहीं होती बल्कि जीते-जी मरने की अवस्था में लिव अंदर प्रभु के शब्द में लीन करने से होती है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि जो कोई निष्पक्ष होकर सोच-विचार और जाँच-पड़ताल करेगा, वह इस नतीजे पर पहुँचेगा कि जो साधक शब्द की अंतर्मुख साधना को छोड़कर किसी अन्य साधन का सहारा लेता है, वह सदैव माया के मोह में फँसा रहेगा। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि वास्तविक बड़ाई कोई विशेष भेष धारण करने या भक्ति के बाहरी साधनों में व्यस्त रहने में नहीं। प्रभु के साथ मिलाप की सच्ची और श्रेष्ठ बड़ाई केवल उन विरले भाग्यशाली जीवों को ही प्राप्त होती है, जो सदैव अंदर शब्द के साथ जुड़े रहते हैं।

गुरमुख रतन लहै लिव लाए॥ गुरमुख परखै रतन सुभाए॥
गुरमुख साची कार कमाए॥ गुरमुख साचे मन पतीआए॥
गुरमुख अलख लखाए तिस भावै॥ नानक गुरमुख चोट न खावै॥ ३५॥

शब्दार्थः सुभाए=स्वाभाविक ही; **पतीआए**=मान जाता है।

सरलार्थः गुरु साहिब नाम के अभ्यास के लाभ वर्णन करते हुए कहते हैं: गुरु के उपदेश पर चलनेवाला गुरुमुख नाम के साथ लिव जोड़कर प्रभुरूपी रत्न प्राप्त कर लेता है। वह सहज ही उस अमूल्य रत्न की पहचान कर लेता है और हर प्रकार के बहिर्मुखी कर्मकांड का त्याग करके नाम की आराधना में अर्थात् सच्ची साधना में लगा रहता है। उसका विश्वास सच्चे प्रभु पर दृढ़ हो जाता है। जब प्रभु को भाता है तो गुरु अलख प्रभु की पहचान करवा देता है। गुरुमुखों की दया से यमदूतों की मार नहीं सहनी पड़ती।

❖ इस पउड़ी में पिछली पउड़ियों वाले भावों को ही दूसरे ढंग से दृढ़ कराया गया है। आप बार-बार यह भाव दृढ़ कराते हैं कि सच्ची भक्ति की दात गुरु द्वारा मिलती है, मन भी गुरु के उपदेश पर चलने से वश में आता है, प्रभुरूपी रत्न यानी अलख प्रभु की पहचान भी सतगुरु के उपदेश पर

चलने से होती है और यमों यानी आवागमन के दुःखों से छुटकारा भी गुरु की शरण द्वारा ही मिलता है।

गुरमुख नाम दान इसनान॥ गुरमुख लागै सहज धिआन॥
गुरमुख पावै दरगह मान॥ गुरमुख भउ भंजन परधान॥
गुरमुख करणी कार कराए॥ नानक गुरमुख मेल मिलाए॥ ३६॥

सरलार्थः सतगुरु से नाम का दान प्राप्त होता है जो आत्मा के स्नान का वास्तविक साधन है। सतगुरु द्वारा जीव सहज अवस्था में प्रभु के ध्यान में मग्न रहता है। सतगुरु द्वारा प्रभु के दरबार में महिमा प्राप्त होती है। सतगुरु द्वारा जीव को भय का नाश करनेवाले सबसे ऊँचे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सतगुरु जीव को सच्ची करनी भाव नाम के अभ्यास में लगाकर उसका प्रभु के साथ मिलाप करा देते हैं।

❖ ***गुरमुख नाम दान इसनान॥***—गुरु साहिब की वाणी में नाम को सतगुरु द्वारा बख़्शा जानेवाला सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है और नाम के साथ लिव जोड़ने को ही जीवात्मा का सच्चा स्नान स्वीकार किया गया है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

गुर बखसिया नाम निधान सभो दुख लथा॥
भोगहो भुंचहो भाईहो पलै नाम अगथा॥
नाम दान इसनान दिड़ सदा करहो गुर कथा॥
सहज भइआ प्रभ पाइआ जम का भउ लथा॥[96]

गुरमुख लागै सहज धिआन॥—मनमुख का ध्यान दसों दिशाओं में फैला रहता है। उसका चंचल मन अंदर स्थिर नहीं होता। इसके विपरीत गुरुमुख का मन सहज अवस्था में प्रभु के ध्यान में मग्न रहता है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

मन खिन खिन भरम भरम बहु धावै तिल घर नही वासा पाईऐ॥
गुर अंकस सबद दारू सिर धारिओ घर मंदर आण वसाईऐ॥

गोबिंद जीउ सतसंगत मेल हर धिआईऐ॥
हउमै रोग गइआ सुख पाइआ हर सहज समाध लगाईऐ॥[97]

जिस प्रकार मदमस्त हाथी बेक़ाबू होकर इधर-उधर भागता है, उसी प्रकार मन भी सांसारिक शक्लों और पदार्थों को सुख का साधन समझने के भ्रम का शिकार होकर सदैव बाहर भटकता है और क्षण भर के लिए भी अंदर निज घर में टिककर नहीं बैठता। जिस प्रकार महावत हाथी के सिर पर अंकुश रखकर उसे वश में कर लेता है, उसी प्रकार सतगुरु द्वारा बख़्शे शब्द के अंकुश द्वारा मन वश में आ जाता है और अंदर टिककर बैठ जाता है। इस प्रकार हौंमैं या अज्ञानता से छुटकारा मिल जाता है, सहज समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है और प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

गुरमुख पावै दरगह मान॥—मनमुख संसार की झूठी मान-बड़ाई की प्राप्ति के लिए जन्म व्यर्थ गँवा लेता है, जबकि गुरुमुख को गुरु के उपदेश द्वारा प्रभु के घर में पहुँचने का सच्चा सम्मान प्राप्त हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

गुण गावै नित नित नित नवे॥ लख चउरासीह जोन न भवे॥
ईहां ऊहां चरण पूजारे॥ मुख ऊजल साचे दरबारे॥[98]

प्रभु के भक्त सदा प्रभु की भक्ति में मग्न रहते हैं। वे आवागमन के चक्कर से आज़ाद हो जाते हैं। उनकी लोक-परलोक में महिमा होती है और वे उज्ज्वल मुख होकर प्रभु के दरबार में पहुँच जाते हैं।

गुरमुख भउ भंजन परधान॥—गुरु की दया से गुरुमुख आवागमन, यमदूतों और नरकों के दु:खों का नाश कर देता है और उसे प्रभु के दरबार में पहुँचने का सम्मान प्राप्त हो जाता है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

खिमा गही ब्रत सील संतोखं॥
रोग न बिआपै ना जम दोखं॥ मुकत भए प्रभ रूप न रेखं॥
जोगी कउ कैसा डर होए॥ रूख बिरख ग्रिह बाहर सोए॥

निरभउ जोगी निरंजन धिआवै॥ अनदिन जागै सच लिव लावै॥
सो जोगी मेरै मन भावै॥[99]

सच्चा योगी वही है जो क्षमा, संतोष और निर्मल आचरण के नियम का पालन करता है। ऐसा योगी सब रोगों से मुक्त हो जाता है और उसे यमदूतों के दु:ख नहीं सहने पड़ते। उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वह उस निरंकार प्रभु का रूप हो जाता है। योगी निर्भय हो जाता है, क्योंकि उसे घर में, अंदर-बाहर, पेड़-पौधों और जंगलों में भी वह प्रभु व्याप्त दिखाई देता है। गुरु साहिब कहते हैं: जो योगी निर्भय होकर निरंजन का ध्यान करता है, जो प्रतिदिन सचेत और सावधान होकर प्रभु के साथ लिव जोड़कर रखता है, मुझे वह योगी बहुत प्रिय है।
गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

निरभउ भए सगल भउ मिटिआ चरन कमल आधारै॥
गुर कै बचन जपिओ नाउ नानक प्रगट भइओ संसारै॥[100]

जिन्होंने सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु के नाम का सुमिरन किया, उनके सभी भय दूर हो गए। उन्हें निर्भय प्रभु के चरणों का आधार प्राप्त हो गया, जिससे वे भी उसकी तरह ही निर्भय हो गए।

गुरमुख करणी कार कराए॥ नानक गुरमुख मेल मिलाए॥—गुरु जीव को अपनी शरण बख़्शकर और नाम के अभ्यास की सच्ची साधना में लगाकर उसका प्रभु के साथ मिलाप करा देता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुर मिलिऐ सभ मत बुध होए॥ मन निरमल वसै सच सोए॥
साच वसिऐ साची सभ कार॥ ऊतम करणी सबद बीचार॥[101]

सबसे श्रेष्ठ करनी शब्द (नाम) का अभ्यास है, जिसकी युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है। शब्द के अभ्यास से मन निर्मल हो जाता है और हृदय में प्रभुरूपी सत्य समा जाता है।

गुरमुख सासत्र सिम्रित बेद॥ गुरमुख पावै घट घट भेद॥
गुरमुख वैर विरोध गवावै॥ गुरमुख सगली गणत मिटावै॥
गुरमुख राम नाम रंग राता॥ नानक गुरमुख खसम पछाता॥ ३७॥

सरलार्थः गुरु के उपदेश पर अमल करने में ही शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों का ज्ञान निहित है। ऐसा गुरुमुख यह भेद जान लेता है कि प्रभु घट-घट में व्यापक है। गुरुमुखों के उपदेश पर चलने से आपसी वैर-विरोध मिट जाता है और सतगुरु की शरण में जाने से सारा लेखा-जोखा मिट जाता है। गुरुमुखों की सहायता से जीव नाम के रंग में रँग जाता है और उसे प्रभु की पहचान हो जाती है।

❖ ***गुरमुख सासत्र सिम्रित बेद॥***—इस पंक्ति के ये अर्थ भी किए जाते हैं कि गुरु के उपदेश द्वारा सब धर्म ग्रंथों के उपदेश का ज्ञान हो जाता है और ये अर्थ भी किए जाते हैं कि गुरुमुख धर्म ग्रंथों में अंकित उपदेश का ज्ञाता होता है। गुरु साहिब ने 28वीं पउड़ी में समझाया है: 'गुरमुख परचै बेद बीचारी॥' भाई गुरदास जी की वाणी है:

बेद गिरंथ गुर हट है जिस लग भवजल पार उतारा॥
सतिगुर बाझ न बुझीऐ जिचर धरे न प्रभ अवतारा॥[102]

सतगुरु में सब धर्म ग्रंथों का ज्ञान समाया होता है। जब तक सतगुरु प्रत्यक्ष प्रकट होकर ज्ञान न दे, तब तक किसी भी जीव का भवसागर से उद्धार नहीं हो सकता।

गुरमुख पावै घट घट भेद॥—गुरुमुख को प्रत्येक हृदय का भेद प्राप्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में गुरु की सहायता से जीव को प्रत्येक हृदय में निवास कर रहे प्रभु का भेद प्राप्त हो जाता है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

जिउ पसरी सूरज किरण जोत॥
तिउ घट घट रमईआ ओत पोत॥ एको हर रविआ स्रब थाए॥
गुर सबदी मिलीऐ मेरी माए॥ घट घट अंतर एको हर सोए॥
गुर मिलिऐ इक प्रगट होए॥[103]

जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश प्रत्येक स्थान पर व्यापक है, उसी प्रकार प्रभु भी सर्वव्यापक है। वह प्रत्येक हृदय में है, परंतु गुप्त है। सतगुरु के साथ मिलाप से वह राम प्रत्येक हृदय में समाया हुआ दिखाई देने लगता है।

गुरमुख वैर विरोध गवावै॥—जब प्रत्येक हृदय में एक प्रभु व्याप्त दिखाई देने लगता है, तो अपने-बेगाने तथा दोस्त-दुश्मन का भेद समाप्त हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

बिसर गई सभ तात पराई॥ जब ते साधसंगत मोहे पाई॥
ना को बैरी नही बिगाना सगल संग हम कउ बन आई॥
जो प्रभ कीनो सो भल मानिओ एह सुमत साधू ते पाई॥
सभ मह रव रहिआ प्रभ एकै पेख पेख नानक बिगसाई॥[104]

जब सतगुरु की संगति द्वारा प्रत्येक हृदय में एक प्रभु समाया हुआ दिखाई देता है, तो हर प्रकार के वैर-विरोध और ईर्ष्या का नाश हो जाता है। जब सब के अंदर एक प्रभु का नूर दिखाई देता है तो हृदय आनंद से भर जाता है।

गुरमुख सगली गणत मिटावै॥—सतगुरु की शरण द्वारा सब चिंताएँ, संशय और भय दूर हो जाते हैं। कर्मों का लेखा-जोखा ख़त्म हो जाता है। प्रभु के दर्शनों से उसका पूर्ण विश्वास हृदय में समा जाता है और जीव को प्रभु द्वारा किया प्रत्येक कार्य सही प्रतीत होने लगता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गणत गणीऐ सहसा दुख जीऐ॥ गुर की सरण पवै सुख थीऐ॥[105]

जब तक जीव भय, चिंता और कर्मों के लेखे-जोखे का शिकार है, उसे सच्चा सुख मिल ही नहीं सकता। सतगुरु की शरण द्वारा सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं और सच्चे सुख की प्राप्ति हो जाती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

नाम धिआई सदा सखाई सहज सुभाई गोविंदा॥
गणत मिटाई चूकी धाई कदे न विआपै मन चिंदा॥[106]

गुरमुख राम नाम रंग राता॥ नानक गुरमुख खसम पछाता॥—गुरुमुख प्रभु के नाम के रंग में रँग जाता है। गुरु साहिब पीछे संकेत कर आए हैं कि गुरुमुख का रोम-रोम हरि के गुण गाता है। प्रभु के नाम के रंग में रँग चुका जीव उसमें समाकर उसका रूप हो जाता है।

गुरु साहिब 32-33 पउड़ी में विस्तारपूर्वक समझा आए हैं कि प्रभु के नाम के रंग में रँगे भक्त हौंमैं का नाश करके प्रभु में समा जाते हैं। उन्हें योग की सच्ची युक्ति का ज्ञान हो जाता है और वे प्रभु की तरह ज्ञानरूप और आनंदरूप हो जाते हैं। आप 72वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं:

नामे राते अनदिन माते नामै ते सुख होई॥
नामै ही ते सभ परगट होवै नामे सोझी पाई॥

संसारी जीव माया के मोह के रंग में रँगे होते हैं। प्रभु के भक्त उसके नाम में मग्न रहते हैं। वे सच में समाकर उसका रूप बन जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

नाम रंग भगत भए लाल॥ जस करते संत सदा निहाल॥
नाम रंग जन रहे अघाए॥ नानक तिन जन लागै पाए॥[107]

बिन गुर भरमै आवै जाए॥ बिन गुर घाल न पवई थाए॥
बिन गुर मनूआ अत डोलाए॥ बिन गुर त्रिपत नही बिख खाए॥
बिन गुर बिसीअर डसै मर वाट॥ नानक गुर बिन घाटे घाट॥ ३८॥

शब्दार्थ: **थाए**=ठिकाने; **बिसीअर**=साँप।

सरलार्थ: गुरुमुखता के लाभ बताकर गुरु साहिब मनमुखता की हानियाँ बताते हैं: गुरु विहीन व्यक्ति सदा अज्ञानता में भटकता रहता है और आवागमन के चक्कर से बँधा रहता है। गुरु के बिना वह जो भी कार्य करता है या मेहनत करता है, वह किसी लेखे नहीं लगती। गुरु के बिना मन सदा चंचल रहता है। मनमुख मायामय भोगों का जो भी विष खाता है वह मन को अशांत रखता है। गुरु के बिना मन-माया का साँप डंक मारता है और जीव मार्ग में ही दम तोड़ जाता है। गुरु के बिना हानि ही हानि है।

❖ ***बिन गुर भरमै आवै जाए॥***—वर्तमान अवस्था में जीव मायामय रचना को सत्य समझने के भ्रम का शिकार है, जिस कारण इसका प्रभुरूपी सत्य की तरफ़ ध्यान ही नहीं जाता। परिणाम यह होता है कि जीव मनमाने ढंग से किए कर्मों के कारण सदैव चौरासी के चक्कर में पड़ा रहता है। इसके साथ ही जीव इस भ्रम का भी शिकार है कि यह मनचाहे साधनों द्वारा प्रभु के साथ मिलाप कर लेगा। इन दोनों प्रकार के भ्रमों से मुक्ति का साधन सत्य के ज्ञाता पूर्ण सतगुरु की शरण है। गुरु साहिब की वाणी है:

भ्रम भ्रम डोलै लख चउरासी॥ बिन गुर बूझे जम की फासी॥
इह मनूआ खिन खिन ऊभ पइआल॥ गुरमुख छूटै नाम सम्हाल॥[108]

सांसारिक शक्लों और पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम का शिकार जीव सदैव चौरासी के चक्कर में फँसा रहता है और यमदूतों की मार खाता है। उसका चंचल मन कभी आकाश में चढ़ जाता है, कभी पाताल में उतर जाता है, अर्थात् उसका मन सदा दस दिशाओं में भटकता रहता है, उसे निज घर में स्थिर होकर बैठना नसीब नहीं होता। जब सतगुरु की शरण में आकर उसे नाम के साथ लिव जोड़ने की युक्ति प्राप्त हो जाती है, तो इसकी अज्ञानता और भटकन दूर हो जाती है। फिर इसे आवागमन से छुटकारा मिल जाता है। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

रोग भरम भेद मन दूजा॥ गुर बिन भरम जपह जप दूजा॥
आद पुरख गुर दरस न देखह॥ विण गुर सबदै जनम कि लेखह॥[109]

जीव भ्रम के रोग का शिकार है। वह प्रभु को प्रेम करने के बजाय, संसार की अनेक झूठी शक्लों और पदार्थों के मोह में ग्रस्त है। उसे शब्द के अभ्यास के सच्चे साधन और मार्ग का ज्ञान नहीं है, जिस कारण वह अनेक प्रकार के कर्मकांड और भक्ति के बाहरी साधनों में खचित रहता है। जब तक उसे पूर्ण सतगुरु की शरण, अगुवाई और सहायता प्राप्त नहीं होती, तब तक उसका इस भ्रम जाल से कभी किसी हालत में छुटकारा नहीं हो सकता।

बिन गुर घाल न पवई थाए॥—सतगुरु द्वारा समझाए शब्द के अभ्यास को छोड़कर, साधक जितने चाहे दूसरे साधन अपना ले, वे उसे कभी भी मंज़िल तक नहीं पहुँचा सकते। यदि रास्ता पूर्व की तरफ़ हो और हम पश्चिम की तरफ़ चलते जाएँ, तो जितना अधिक चलते जाएँगे उतना मंज़िल से दूर होते जाएँगे। समुद्र पर पैदल नहीं चल सकते, समुद्री जहाज़ द्वारा ही समुद्र को पार किया जा सकता है। आकाश में हवाई जहाज़ द्वारा ही उड़ सकते हैं। जितनी चाहे कोशिश कर लें, कष्ट सह लें और जितनी चाहे क़ुरबानी दे दें, ग़लत साधन और मार्ग में की गई सारी कोशिश व्यर्थ चली जाती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

मनमुख चंचल मत है अंतर बहुत चतुराई॥
कीता करतिआ बिरथा गइआ इक तिल थाए न पाई॥[110]

मनमुख अपनी चंचल बुद्धि से अनेक चतुराइयाँ करता है और अपना पूरा बल लगाता है, परंतु उसकी सारी कोशिशें व्यर्थ चली जाती हैं। गुरु रामदास जी की वाणी है:

मनमुखा नो हर दूर है मेरी जिंदुड़ीए
सभ बिरथी घाल गवाईऐ राम॥
जन नानक गुरमुख धिआइआ मेरी जिंदुड़ीए
हर हाजर नदरी आईऐ राम॥[111]

मनमुख मनचाहे साधनों द्वारा प्रभु की खोज करते हैं। वे जितना अधिक प्रयत्न करते हैं, प्रभु उतना अधिक दूर हो जाता है और उनकी सारी कोशिशें व्यर्थ चली जाती हैं। जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंतर्मुख कर लेते हैं, उन्हें वह कर्ता अंदर ही प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है।

बिन गुर मनूआ अत डोलाए॥—चंचल मन मुँहज़ोर हाथी की तरह है। यह जब भी वश में आता है, सतगुरु द्वारा बख़्शे शब्द के अंकुश द्वारा आता है। शिकारी एक साज़ बजाकर हिरण को वश में कर लेते हैं। उसी प्रकार जब तक मनरूपी हिरण सतगुरु द्वारा बख़्शे शब्द के साथ नहीं जुड़ता,

इसकी चंचलता दूर नहीं होती और यह निज घर में टिककर नहीं बैठता। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

इस मन कउ होर संजम को नाही विण सतिगुर की सरणाए॥
सतगुर मिलिऐ उलटी भई कहणा किछू न जाए॥[112]

सतगुरु की शरण के बिना किसी दूसरे साधन द्वारा मन वश में नहीं आ सकता। सतगुरु की शरण द्वारा इसकी वृत्ति पूर्णतः बदल जाती है। यह ऊपर से नीचे और अंदर से बाहर दौड़ने के बजाय, बाहर से अंदर और नीचे से ऊपर की ओर पलट जाता है। आप कहते हैं:

विण मन मारे कोए न सिझई वेखहो को लिव लाए॥
भेखधारी तीरथी भव थके ना एह मन मारिआ जाए॥
गुरमुख एह मन जीवत मरै सच रहै लिव लाए॥
नानक इस मन की मल इउ उतरै हउमै सबद जलाए॥[113]

जितने चाहे बाहरी साधन अपना लिए जाएँ, किंतु मुँहज़ोर मन को वश में नहीं किया जा सकता। यदि सतगुरु के उपदेशानुसार इसे शब्द के साथ जोड़ दिया जाए तो जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इससे चंचल मन स्थिर हो जाता है। इसकी सभी मलिनताएँ दूर हो जाती हैं और आत्मा निर्मल होकर प्रभु में लीन होने के योग्य हो जाती है।

बिनु गुर त्रिपत नही बिख खाए॥—जब तक सतगुरु से शब्द (नाम) का अमृत नहीं मिलता, मन की आशा-तृष्णा की अग्नि शांत नहीं होती और यह सदा विषय-विकारों तथा सांसारिक भोगों का विष खाता रहता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

मनमुख अंधा अंध कमावै बिख खटे संसारे॥
माइआ मोह सदा दुख पाए बिन गुर अत पिआरे॥[114]

बिन गुर बिसीअर डसै मर वाट॥—गुरु साहिब समझाते हैं कि जो साधक सतगुरु की सहायता के बिना प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलने की

भूल करता है, माया का विषैला नाग उसे रास्ते में ही डसकर मार देता है। कहने का भाव है कि सतगुरु के उपदेश और अगुवाई के बिना जीव किसी समय भी मन और माया के धोखे का शिकार हो सकता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

माइआ भुइअंगम सरप है जग घेरिआ बिख माए॥
बिख का मारण हर नाम है गुर गरुड़ सबद मुख पाए॥
जिन कउ पूरब लिखिआ तिन सतगुर मिलिआ आए॥
मिल सतगुर निरमल होइआ बिख हउमै गइआ बिलाए॥[115]

माया के विषैले साँप ने सारे संसार को अपनी लपेट में लिया हुआ है। सतगुरु इस साँप को वश में करनेवाला सँपेरा है। वह शब्द की संजीवनी द्वारा माया और हौंमैं के विष का नाश कर देता है। इस प्रकार निर्मल हो चुका जीव प्रभु से मिलाप के योग्य बन जाता है।

नानक गुर बिन घाटे घाट॥—गुरु साहिब सावधान करते हैं कि निर्मल परमार्थ की कमाई के इच्छुक को यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए कि सतगुरु की शरण, उसके उपदेश और उसके शब्द के बिना परमार्थ में किसी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता। सतगुरु की शरण और सहायता के बिना जीव जो भी प्रयत्न करता है वे उसे प्रभु से दूर ले जाते हैं। उसके कर्मों का बोझ बढ़ जाता है और मन की मैल भी बढ़ जाती है। सतगुरु की शरण के बिना नुकसान ही नुकसान है।

जिस गुर मिलै तिस पार उतारै॥ अवगण मेटै गुण निसतारै॥
मुकत महा सुख गुर सबद बीचार॥ गुरमुख कदे न आवै हार॥
तन हटड़ी इह मन वणजारा॥ नानक सहजे सच वापारा॥ ३९॥

शब्दार्थ: **गुण निसतारै**=गुणों द्वारा उद्धार कर देता है; **बीचार**=कमाई; **हटड़ी**=दुकान।

सरलार्थ: गुरु की शरण प्राप्त हो जाने के लाभ का वर्णन करते हुए गुरु साहिब कहते हैं: जो गुरु की शरण में पहुँच जाता है, गुरु उसके अवगुणों को नष्ट करके उसके अंदर परमार्थिक गुण भरकर उसका उद्धार कर देता है।

गुरु के शब्द की आराधना द्वारा मुक्ति और परम सुख की प्राप्ति हो जाती है। गुरु के सेवक को कभी भी हार का मुख नहीं देखना पड़ता। उसे अपने प्रयत्न और उद्देश्य में सफलता अवश्य प्राप्त होती है। गुरु का सेवक तन को दुकान (हटड़ी) बनाकर, मन द्वारा (शब्द के अभ्यास का) व्यापार करता है। वह सहज ही सत्य के व्यापार भाव शब्दरूपी सत्य की कमाई में लगा रहता है।

❖ गुरु साहिब ने पिछली पउड़ी में निगुरे की अवस्था का वर्णन किया था। इस पउड़ी में सतगुरु की शरण के लाभ बयान किए गए हैं। सतगुरु जीव का कायाकल्प कर देता है। वह उसे दोषों और पापों से मुक्त करके प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिला देता है। सतगुरु उसे शब्द के अभ्यास में लगा देता है, जिससे वह मुक्ति और परम सुख का अधिकारी बन जाता है।

जिसे पूरा गुरु मिल जाता है, उसका प्रभु के साथ अवश्य मिलाप होता है। गुरु प्रभु का रूप है। पूरा गुरु जिसे अपनी शरण में लेना स्वीकार कर लेता है, उसे प्रभु के साथ मिलाने की ज़िम्मेदारी निभाता है। सतगुरु जिस कार्य को करने की ज़िम्मेदारी उठाते हैं, उसमें असफलता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इस सफलता में कौन-सी वस्तु सहायक सिद्ध होती है? पूरे सतगुरु का शिष्य तनरूपी दुकान में मन द्वारा प्रभु की भक्ति यानी नाम के अभ्यास का व्यापार करता है, जिसके लाभ के रूप में उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

इह तन हाट सराफ को भाई वखर नाम अपार॥
इह वखर वापारी सो द्रिड़ै भाई गुर सबद करे वीचार॥
धन वापारी नानका भाई मेल करे वापार॥[116]

सतगुरु के उपदेशानुसार शरीररूपी 'हाट' (दुकान) में नाम का व्यापार करनेवाला व्यापारी धन्य है। इस व्यापार द्वारा उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

गुरमुख बांधिओ सेत बिधातै॥ लंका लूटी दैत संतापै॥
रामचंद मारिओ अह रावण॥ भेद बभीखण गुरमुख परचाइण॥
गुरमुख साइर पाहण तारे॥ गुरमुख कोट तेतीस उधारे॥४०॥

शब्दार्थः गुरमुख=रामरूपी गुरुमुख; **सेत**=पुल; **दैत संतापै**=दैत्यों को सज़ा दी; **साइर**=समुद्र में।

सरलार्थः इस पउड़ी में गुरु साहिब राम और रावण की कथा के कुछ अंशों को आधार बनाकर अपने विचार इस तरह प्रकट करते हैं: भगवान् राम ने समुद्र को पार करने के लिए उस पर पुल बनवाया था। उसी तरह विधाता ने गुरुमुखों को भवसागर से पार ले जाने का पुल बनाया है। राम की सेना ने लंका पर आक्रमण करके, दैत्यों को सज़ा दी। उसी तरह गुरुमुख जन शुभ गुणों की सेना और नाम के अभ्यास द्वारा शरीररूपी लंका में से विषय-विकारों के दैत्यों का नाश करके, इसे उनके संताप से मुक्त करा देते हैं। जिस प्रकार भगवान् राम ने रावण का संहार किया था, उसी प्रकार गुरुमुखों द्वारा (बख़्शी नाम की युक्ति से) अहं या हौंमैंरूपी रावण का नाश हो जाता है। भगवान् राम ने विभीषण से रावण को मारने का भेद लेकर, उसका वध कर दिया। उसी तरह गुरुमुखों से मिले ज्ञान भाव नाम द्वारा हौंमैं का नाश हो जाता है। कहा जाता है कि भगवान् राम ने राम-राम लिखकर पत्थर भी पानी पर तैरा दिए। उसी तरह गुरुमुखों द्वारा पत्थरों के समान निकृष्ट जीव भी नाम से लिव जोड़कर भवसागर से पार हो जाते हैं। गुरुमुख अपने बख़्शे नाम द्वारा अनगिनत जीवों का उद्धार कर देते हैं।

❖ ***गुरमुख बांधिओ सेत बिधातै॥ लंका लूटी दैत संतापै॥***—रामचन्द्र जी द्वारा समुद्र पर पुल बाँधे जाने की कथा तो सब जानते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि सृष्टि के सृजनहार विधाता ने सतगुरु को भवसागर से पार ले जानेवाला पुल बनाया है। भाव यह है कि रचयिता ने रचना के आरंभ में स्वयं इस नियम का सृजन किया था कि जो कोई, जब भी, जहाँ कहीं भी संसार सागर से पार जा सकेगा, केवल सतगुरुरूपी पुल द्वारा जा सकेगा।

जिस प्रकार भगवान् राम की सेना ने लंका पर हमला करके दैत्यों को सज़ा दी थी, उसी प्रकार सतगुरु के उपदेश पर चलनेवाला साधक शरीररूपी लंका पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विषय-विकारों, आशा-तृष्णा, कर्मों और संस्कारों के दैत्यों का नाश हो जाता है। गुरु साहिब का मारू राग का शब्द है:

अगन पाणी सागर अत गहरा गुर सतगुर पार उतारा हे॥
.....
सतगुर बोहिथ आद जुगादी राम नाम निसतारा हे॥[117]

संसार अग्नि और पानी का अथाह समुद्र है। प्रभु ने अनादि काल से सतगुरु को इससे पार ले जानेवाला जहाज़ बनाया हुआ है। गुरु साहिब ने 44 वीं पउड़ी में इस विचार पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

रामचंद मारिओ अह रावण॥ भेद बभीखण गुरमुख परचाइण॥—विभीषण रावण का भाई था। वह जानता था कि रावण के शरीर पर किस जगह चोट करने से उसकी मृत्यु होगी। जिस प्रकार रामचन्द्र जी ने विभीषण से यह भेद लेकर शक्तिशाली रावण का नाश कर दिया, उसी प्रकार सतगुरु से भेद लेकर हौंमैंरूपी महाबली रावण का संहार किया जा सकता है।

गुरमुख साइर पाहण तारे॥—गुरु साहिब यह भाव दृढ़ करवा रहे हैं कि जीव पत्थर के समान है, परंतु उसकी तुच्छता, निर्बलता, अज्ञानता और उसके पापों के पर्वत, प्रभु और सतगुरु की दया के सामने कोई अर्थ नहीं रखते। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: 'पसू परेत मुगध कउ तारे पाहन पार उतारै॥'[118] गुरु साहिब जीव का हौसला बढ़ा रहे हैं कि सतगुरु पापों के भार से पत्थरों के समान निकृष्ट से निकृष्ट जीव का उद्धार करने में समर्थ हैं। जीव को अन्य सभी सहारे त्यागकर सतगुरु की शरण प्राप्त करनी चाहिए। प्रभु ने जीवों के भवसागर से पार जाने के लिए सतगुरुरूपी पुल बनाया है और यही उनके उद्धार का एकमात्र सच्चा साधन है।

गुरमुख कोट तेतीस उधारे—गुरु साहिब फ़रमाते हैं: गुरुमुखों की शरण में आए अनगिनत जीवों का भवसागर से उद्धार हो गया। गुरु अर्जुन देव जी

का कथन है: 'गुरमुख कोट उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥'[119] गुरु रामदास जी की वाणी है:

गुरमुख प्रहिलाद जप हर गत पाई॥
गुरमुख जनक हर नाम लिव लाई॥
गुरमुख बसिसट हर उपदेस सुणाई॥
बिन गुर हर नाम न किनै पाइआ मेरे भाई॥
गुरमुख हर भगति हर आप लहाई॥[120]

गुरु साहिब भक्त प्रह्लाद, राजा जनक तथा वशिष्ठ मुनि का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ये सब सतगुरु से नाम का रहस्य प्राप्त करके उत्तम पदवी प्राप्त करने में सफल हुए। आप कहते हैं: सतगुरु के बिना हरि का नाम प्राप्त नहीं हो सकता। जो साधक प्रभु के साथ मिलाप करने में सफल होता है, वह गुरुमुखों द्वारा बख़्शे गए नाम के अभ्यास द्वारा ही होता है।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि गुरुमत किसी विशेष समय और स्थान तक सीमित नहीं है। गुरु के बिना कोई भी जीव प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता।

गुरमुख चूकै आवण जाण॥ गुरमुख दरगह पावै माण॥
गुरमुख खोटे खरे पछाण॥ गुरमुख लागै सहज धिआन॥
गुरमुख दरगह सिफत समाए॥ नानक गुरमुख बंध न पाए॥४१॥

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ी के विचार की शृंखला जारी रखते हुए कहते हैं: गुरुमुखों की सहायता से जन्म-मरण का चक्कर समाप्त हो जाता है। मालिक की दरगाह में पहुँचने का सम्मान प्राप्त हो जाता है। गुरुमुखों द्वारा अच्छे-बुरे, सही-ग़लत की पहचान हो जाती है और ध्यान सहज अवस्था में पहुँचकर प्रभु में लीन रहता है। गुरुमुखों की सहायता से जीव की प्रभु के दरबार में महिमा होती है और उसके मार्ग की सभी रुकावटें दूर हो जाती हैं।

गुरमुख नाम निरंजन पाए॥ गुरमुख हउमै सबद जलाए॥
गुरमुख साचे के गुण गाए॥ गुरमुख साचै रहै समाए॥
गुरमुख साच नाम पत ऊतम होए॥
नानक गुरमुख सगल भवण की सोझी होए॥४२॥

सरलार्थ: गुरुमुखों द्वारा माया से रहित निर्मल नाम की प्राप्ति हो जाती है। उनके उपदेशानुसार शब्द का अभ्यास करने से हौंमैं का नाश हो जाता है। गुरुमुखों की कृपा से जीव उस सच्चे प्रभु के गुण गाता है और वह सदा प्रभु में ही लीन रहता है। गुरुमुखों द्वारा बख़्शे नाम की साधना द्वारा परम पद की प्राप्ति हो जाती है। सतगुरु की दया-मेहर से सभी लोकों की सूझ हो जाती है।

❖ सतगुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार शब्द साधना द्वारा हौंमैं का नाश हो जाता है और जीव नाशवान् शक्लों और पदार्थों के मोह से मुक्त हो जाता है। वह नाम द्वारा प्रभु के गुण गाता हुआ, उसकी भक्ति करता हुआ उसमें समाकर उसी का रूप हो जाता है। उसे अकालपुरुष के दरबार में पहुँचने का सच्चा मान प्राप्त हो जाता है। संपूर्ण सृष्टि उसे एक खुली किताब की तरह नज़र आती है। ऐसा गुरुमुख सभी लोकों का ज्ञाता हो जाता है।

इस पउड़ी में 'नाम निरंजन', 'साच नाम' और 'सबद' पद समान अर्थों में प्रयोग किए गए हैं। नाम निराकार और मायारहित प्रभु का निज रूप है। प्रभु की तरह उसका नाम भी अमर और अविनाशी है। सतगुरु में प्रभु की शक्ति काम रही है और प्रभु का नाम प्रभु के पूर्ण सामर्थ्य से भरपूर है। जो सतगुरु द्वारा प्रभु के माया रहित सच्चे नाम के साथ जुड़ जाता है, वह उस सच्चे में समाकर उसका ही रूप हो जाता है।

27 से 42 तक की पउड़ियों में गुरु साहिब का संपूर्ण प्रवचन गुरुमुख और शब्द पर आधारित है। गुरु साहिब योगियों को बार-बार यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि संपूर्ण परमार्थ सतगुरु और शब्द के अभ्यास के आधार पर खड़ा है।

कवण मूल कवण मत वेला॥ तेरा कवण गुरू जिस का तू चेला॥
कवण कथा ले रहहो निराले॥ बोलै नानक सुणहो तुम बाले॥
एस कथा का दे बीचार॥ भवजल सबद लंघावणहार॥४३॥

सरलार्थ: गुरु साहिब से शब्द और गुरुमुख की प्रशंसा सुनकर योगी प्रश्न करते हैं: आपकी शिक्षा की वास्तविकता क्या है और इसके आरंभ होने का समय कौन-सा है? दूसरे शब्दों में जिस मार्ग पर आप चल रहे हो और जिसका आप उपदेश देते हो उसका आरंभ कहाँ से हुआ? आपका गुरु कौन है? आप किस उपदेश के सहारे रचना से न्यारे (निर्लेप) रहते हो? हे बाले! आप इस उपदेश के बारे में विस्तारपूर्वक समझाएँ कि भवजल से पार ले जानेवाला शब्द कौन-सा है?*

इन पंक्तियों के सरलार्थ इस प्रकार भी किए जाते हैं: जीवन का मूल क्या है? शिक्षा लेने का समय कौन-सा है? तेरा गुरु कौन है जिसका तू शिष्य है? तुम कौन-सी बात से निर्लेप रहते हो? योगियों ने कहा: हे बालक! तू यह बता कि शब्द द्वारा संसार सागर से उद्धार करने में तू किस प्रकार समर्थ हुआ है?

पवन अरंभ सतगुर मत वेला॥ सबद गुरू सुरत धुन चेला॥
अकथ कथा ले रहउ निराला॥ नानक जुग जुग गुर गोपाला॥
एक सबद जित कथा वीचारी॥ गुरमुख हउमै अगन निवारी॥४४॥

शब्दार्थ: निवारी=दूर कर दी।

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जिस मार्ग पर मैं स्वयं चलता हूँ तथा जिसका मैं उपदेश देता हूँ, उसका आरंभ वायु के आरंभ भाव सृष्टि के आरंभ से हुआ। उस साधन और मार्ग को गुरु की मत या गुरुमत का नाम दिया गया है। इसका आधार सतगुरु है। इस शिक्षा का आधार गुरु और शिष्य है। शब्द की ध्वनि गुरु है और सुरत शिष्य है। मैं शब्द की अकथ कथा के सहारे माया से निर्लेप रहता हूँ। सृष्टि की रचना और प्रतिपालन

* *पंज ग्रंथी सटीक*, पृ. 170

करनेवाला वह गोपाल, युगों-युगों से गुरु रूप में शब्द की शिक्षा देता आ रहा है। केवल शब्द ही वह सच्ची अकथ कथा है जिसकी आराधना हमने की है। गुरु के उपदेश पर चलकर ही हमने हौंमैं की अग्नि शांत की है।

❖ ***पवन अरंभ सतगुर मत वेला॥***—इस पंक्ति के अर्थ यह किए जाते हैं कि प्राण जीवन का मूल हैं और मनुष्य जन्म सतगुरु से शिक्षा लेने का समय है। इसके दूसरे अर्थ यह किए जाते हैं कि इस शिक्षा का आधार गुरुमत है और इसकी शुरुआत, पवन के आरंभ भाव सृष्टि की उत्पत्ति से ही हो गई। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: 'मारग प्रभ का हर कीआ संतन संग जाता॥'[121] अर्थात् प्रभु की प्राप्ति का मार्ग स्वयं प्रभु द्वारा सृजित किया गया है, संत-सतगुरु उसी मार्ग की सूझ कराते हैं।

गुरु साहिब ने 40वीं पउड़ी में संकेत किया था: 'गुरमुख बांधिओ सेत बिधातै॥' गुरु साहिब समझा रहे हैं: गुरुमत, प्रभु द्वारा सृजित अपने साथ मिलाप का एकमात्र साधन है, जो आदि-जुगादि से चला आ रहा है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

सचै सबद सची पत होई॥ बिन नावै मुकत न पावै कोई॥
बिन सतगुर को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बणाई हे॥[122]

गुरु साहिब समझाते हैं कि अकालपुरुष ने सृष्टि के आरंभ से स्वयं इस नियम या विधान का सृजन किया है कि सतगुरु के बिना शब्द या नाम की प्राप्ति नहीं होती तथा शब्द या नाम के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। अनादि काल से प्रभु प्राप्ति का एक ही साधन तथा मार्ग रहा है और रहेगा।

सबद गुरू सुरत धुन चेला—गुरु साहिब समझाते हैं कि न शिष्य का शरीर, शिष्य है और न ही गुरु का शरीर, गुरु है। वास्तविक गुरु, गुरु के अंदर प्रकट शब्द है तथा वास्तविक शिष्य, शिष्य की सुरत है। शरीर दोनों अवस्थाओं में साधन है। गुरु साहिब ने 'धुन' शब्द का प्रयोग किया है, जो 'शब्द' और 'सुरत' दोनों के लिए है। 'जेता सबद सुरत धुन तेती जेता रूप काइआ

तेरी॥'[123] शब्द भी ध्वनि रूप है, सुरत भी ध्वनि रूप है तथा शब्द और सुरत के मिलाप द्वारा बनी संपूर्ण रचना प्रभु की काया के समान है। गुरु रामदास जी कहते हैं: हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥[124] आप उस शब्द की तरफ़ संकेत कर रहे हैं जो प्रभु और आत्मा के अस्तित्व का सार है। आत्मा उस शब्द का अंश है। वह शब्द ही आत्मा को अपने में समेटकर परमात्मा के साथ मिलाने का कार्य करता है। प्रभु प्राप्ति का यह साधन अटल है। गुरु साहिब 59वीं पउड़ी में कहते हैं: 'सबद गुरु भव सागर तरीऐ इत उत एको जाणै॥'

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

संतन मो कउ हर मारग पाइआ॥
साध क्रिपाल हर संग गिझाइआ॥
हर हमरा हम हर के दासे नानक सबद गुरू सच दीना जीउ॥[125]

गुरु अमरदास जी भी संकेत करते हैं:

जिन सबद गुरू सुण मंनिआ तिन मन धिआइआ हर सोए॥
अनदिन भगती रतिआ मन तन निरमल होए॥[126]

गुरु नानक साहिब की वाणी है:

मेरा गुर दइआल सदा रंग लीणा॥
अहिनिस रहै एक लिव लागी साचे देख पतीणा॥
रहै गगन पुर द्रिसट समैसर अनहत सबद रंगीणा॥[127]

गुरु साहिब स्पष्ट करते हैं कि सतगुरु की महिमा यह है कि उसकी सुरत अनहद शब्द यानी प्रभु में लीन है। गुरु साहिब सुरत के अनहद शब्द में लीन होने, उसके अंदर प्रेम का रंग भरने या प्रभु में लीन होने में कोई अंतर नहीं समझते।

अकथ कथा ले रहउ निराला॥—गुरु साहिब ने अकथ-कथा का भाव 62वीं पउड़ी में इस प्रकार प्रकट किया है: 'अकथ कथा ले सम कर रहै॥ तउ नानक आतम राम कउ लहै॥' गुरु साहिब का भाव है कि जो साधक

प्रभु के अकथ नाम के साथ जुड़ जाता है, वह स्वाभाविक रूप से ही संसार और शरीर की तरफ़ से निर्लेप हो जाता है। जिसके हृदय में प्रभु का प्रेम समा जाता है, वह मायामय संसार के आकर्षण से मुक्त हो जाता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

अकथो कथीऐ सबद सुहावै॥ गुरमती मन सचो भावै॥
सचो सच रवह दिन राती इह मन सच रंगावणिआ॥[128]

जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को शब्द में लीन कर लेता है, उसका अकथ प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है और उसका मन प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है, जिससे वह मोह से मुक्त हो जाता है।

नानक जुग जुग गुर गोपाला॥—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सृष्टि का पालनहार प्रभु स्वयं प्रत्येक युग में जीवों के उद्धार के लिए गुरु का रूप धारण करके प्रकट होता रहा है। गुरु गोबिन्द सिंह जी का कथन है: 'आद अंत एकै अवतारा। सोई गुरू समझियहो हमारा॥'[129] आप फ़रमाते हैं कि जब से सृष्टि का सृजन हुआ है, तब से वह प्रभु गुरु के रूप में संसार में आता रहा है और सृष्टि के अंत तक यही नियम चलता रहेगा। आप कहते हैं कि मेरा सतगुरु भी उस प्रभु का ही रूप है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

हर जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी॥
जुग जुग पीड़ी चलै सतगुर की जिनी गुरमुख नाम धिआइआ॥
हर पुरख न कब ही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ॥
नानक संत संत हर एको जप हर हर नाम सोहंदी॥
हर राम राम मेरे बाबुला पिर मिल धन वेल वधंदी॥[130]

आप उपदेश करते हैं कि वह हरि प्रत्येक युग में गुरु के रूप में प्रकट होता रहता है, ताकि जीव सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास कर सकें। सतगुरु और प्रभु एक ही हैं। न कभी हरि का नाश होता है और न ही सतगुरु का। जो साधक सतगुरु द्वारा हरि के नाम का सुमिरन करते हैं, उन्हें उसके साथ मिलाप की बड़ाई प्राप्त हो जाती है।

एक सबद जित कथा वीचारी॥ गुरमुख हउमै अगन निवारी॥—जो साधक सुरत को अंदर शब्द के साथ जोड़ लेता है, वह हौंमैं की अग्नि को शांत करने में सफल हो जाता है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं: 'सो गुर करउ जि साच द्रिड़ावै॥ अकथ कथावै सबद मिलावै॥'[131] सतगुरु सुरत को शब्द के साथ जोड़कर अकथ, अविनाशी प्रभु के साथ मिला देते हैं।

मैण के दंत किउ खाईऐ सार॥ जित गरब जाए सो कवण आहार॥
हिवै का घर मंदर अगन पिराहन॥ कवन गुफा जित रहै अवाहन॥
इत उत किस कउ जाण समावै॥ कवन धिआन मन मनहे समावै॥ ४५॥

शब्दार्थ: मैण=मोम; **सार**=लोहा; **हिवै**=बर्फ़ ; **पिराहन**=पहनावा; **अवाहन**=निश्चल।

सरलार्थ: गुरु साहिब का उत्तर सुनकर सिद्ध कुछ अन्य कठिन प्रश्न करते हैं: मोम के दाँतों से लोहा कैसे खाया जाए? वह कौन-सा भोजन है, जिसे खाने से अहंकार का नाश हो जाता है? अग्नि का चोला पहनकर कोई बर्फ़ के घर में कैसे रह सकता है? वह कौन-सी गुफा है जिसमें जीव निश्चल होकर बैठ सकता है? यहाँ और वहाँ (लोक और परलोक) दोनों में से किसे सर्वव्यापक जानकर जीव उसमें समा सके? वह कौन-सा ध्यान है, जिस द्वारा मन, मन में समा जाता है?

हउ हउ मै मै विचहो खोवै॥ दूजा मेटै एको होवै॥
जग करड़ा मनमुख गावार॥ सबद कमाईऐ खाईऐ सार॥
अंतर बाहर एको जाणै॥ नानक अगन मरै सतिगुर कै भाणै॥ ४६॥

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जीव को चाहिए कि मैं-मेरी और हर प्रकार की द्वैत से निकलकर प्रभु के मिलाप की पूर्ण एकता में पहुँच जाए। मूर्ख मनमुख के लिए जगत् लोहे के समान सख़्त है, परंतु शब्द के अभ्यास द्वारा यह लोहा खाया जा सकता है। अपनी इच्छा को सतगुरु की रज़ा में लीन करने से तृष्णारूपी अग्नि शांत होती है और प्रभु प्रत्येक स्थान पर व्याप्त दिखाई देने लगता है।

❖ गुरु साहिब ने 'हउ-हउ', 'मैं-मैं', 'दूजा', 'मनमुख', 'गावार' और 'अगन' शब्दों द्वारा यह भाव दृढ़ करवाया है कि हौंमैं, मैं-मेरी, द्वैत भाव, मनमुखता, अज्ञानता और तृष्णा की अग्नि सब मायामय संसार के सख़्त लोहे के समान हैं। इन रोगों का एकमात्र इलाज सतगुरु के शब्द का अभ्यास और मन की चाहत को सतगुरु की इच्छा के अधीन करना है। इससे जीव सहज रूप से ही माया का लोहा खा जाता है। वह द्वैत में से निकलकर पूर्ण एकता में पहुँच जाता है और उसे प्रभु सर्वव्यापक दिखाई देने लगता है। यह समस्त बड़ाई सतगुरु के भाणे से प्राप्त होती है। 'सतिगुर कै भाणै' का अर्थ सतगुरु की रज़ा है और सतगुरु के भाणे में आने का अर्थ सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द यानी नाम का अभ्यास करना भी है। गुरबानी में ये दोनों भाव प्रकट हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है:

गुर दुआरै नाउ पाईऐ बिन सतगुर पलै न पाए॥
सतगुर कै भाणै मन वसै ता अहिनिस रहै लिव लाए॥[132]

आप कहते हैं कि सतगुरु की मौज हो तो नाम हृदय में बस जाता है और लिव सदैव नाम के साथ जुड़ी रहती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

मन रे गुर की कार कमाए॥
गुर कै भाणै जे चलह ता अनदिन राचह हर नाए॥[133]

जब साधक सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति करता है तो उसकी लिव सदैव नाम के साथ जुड़ी रहती है।

सच भै राता गरब निवारै॥ एको जाता सबद वीचारै॥
सबद वसै सच अंतर हीआ॥ तन मन सीतल रंग रंगीआ॥
काम क्रोध बिख अगन निवारे॥ नानक नदरी नदर पिआरे॥ ४७॥

शब्दार्थ: सच...राता=प्रभुरूपी सत्य के भय में रँगा हुआ; **हीआ**=हृदय; **नदर**=कृपा दृष्टि में।

सरलार्थः गुरु साहिब उक्त भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: जो जीव प्रभु के भय में रहता है, वह अहंकार से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। शब्द के अभ्यास द्वारा उसे वह एक कर्ता सर्वत्र व्याप्त दिखाई देने लगता है। उसके हृदय में सच्चा प्रभु बस जाता है, इससे तन और मन दोनों शीतल हो जाते हैं। हृदय प्रभु के प्रेम में रँग जाता है। इस तरह विषय-विकारों की विषाक्त अग्नि से छुटकारा प्राप्त हो जाता है और जीव प्रभु की दया से निहाल हो जाता है।

❖ इस पउड़ी में 46वीं पउड़ी के भावों को ही अलग ढंग से बयान किया गया है। इसमें 'गरब', 'काम', 'क्रोध' आदि विकारों को विष और अग्नि कहा गया है। जब मन में शब्द का निवास हो जाता है, तो विकारों की अग्नि बुझ जाती है, जिससे तन-मन शीतल हो जाते हैं और हृदय माया के मोह की ज़हर के स्थान पर प्रभु के प्रेम के अमृत से भर जाता है। यह सारा कार्य दयालु दाता की दया से पूर्ण होता है।

कवन मुख चंद हिवै घर छाइआ॥ कवन मुख सूरज तपै तपाइआ॥
कवन मुख काल जोहत नित रहै॥ कवन बुध गुरमुख पत रहै॥
कवन जोध जो काल संघारै॥ बोलै बाणी नानक बीचारै॥४८॥

शब्दार्थः कवन=कैसे; **हिवै**=बर्फ़; **रहै**=बचा जा सकता है; **जोहत**=ताक में रहता है; **जोध**=योद्धा, शूरवीर।

सरलार्थः सिद्ध प्रश्न करते हैं: चाँद जोकि बर्फ़ और अँधेरे का घर है, सूर्य की तपिश और प्रकाश कैसे प्राप्त करता है? जो काल जीव को हमेशा ताक में रखता है उससे कैसे बचा जा सकता है? वह कौन-सी समझ या युक्ति है, जिस द्वारा गुरुमुख की शोभा क़ायम रह सकती है? वह कौन-सा योद्धा है जो काल को मार लेता है? गुरु नानक साहिब सिद्धों के प्रश्नों पर विचार करके उत्तर देते हैं।

❖ इस पउड़ी में पूछे गए प्रश्नों का वास्तविक भाव यह है कि मन बर्फ़ का घर भाव अचेत है। इसके अंदर अज्ञानता का अंधकार फैला हुआ है।

वह कौन सा सूरज है जिसकी तपिश से मन की जड़ता समाप्त हो और यह प्रकाशित हो जाए। इसके साथ ही सिद्ध यह भी जानना चाहते हैं कि जीव काल के जाल से भाव आवागमन के चक्कर से कैसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है? वह बलशाली काल या मन पर विजय प्राप्त करने में कैसे सफल हो सकता है? उसे सतगुरु से कौन-सा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिससे वह सम्मान सहित मालिक के घर में स्वीकार हो जाए? गुरु साहिब इन प्रश्नों का उत्तर अगली पउड़ी में देते हैं।

सबद भाखत ससि जोत अपारा॥ ससि घर सूर वसै मिटै अंधिआरा॥
सुख दुख सम कर नाम अधारा॥ आपे पार उतारणहारा॥
गुर परचै मन साच समाए॥ प्रणवत नानक काल न खाए॥४९॥

शब्दार्थः भाखत=सुमिरन अभ्यास से; **प्रणवत**=विनती करता है।

सरलार्थः गुरु साहिब सिद्धों के प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहते हैं: शब्द के अभ्यास द्वारा आंतरिक चंद्रमा प्रकाशित हो जाता है। जब अंतर में सूर्य चंद्रमा को प्रकाश से भर देता है भाव जब शब्द का प्रकाश प्रकट हो जाता है, तो चंद्रमा भाव मन का अंधकार दूर हो जाता है। जिस साधक को नाम का आधार मिल जाता है, वह दुःख-सुख को समान भाव से देखने में समर्थ हो जाता है। ऐसे साधक को प्रभु स्वयं ही भवसागर से पार कर देते हैं। गुरु के मिलाप द्वारा जिसकी आत्मा परमात्मा में समा जाती है, वह फिर काल का ग्रास नहीं बनता भाव वह जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

❖ ***सबद भाखत ससि जोत अपारा॥***—वर्तमान अवस्था में मन में अज्ञानता का अंधकार भरा हुआ है। शब्द का अभ्यास करने से हृदय अनुपम प्रकाश से भर जाता है।

ससि घर सूर वसै मिटै अंधिआरा॥—शब्द के अभ्यास द्वारा अंतर में सूर्य भाव शब्द का प्रकाश प्रकट हो जाता है और मनरूपी चंद्रमा का अंधकार दूर हो जाता है। इसकी ठंडक या जड़ता दूर हो जाती है और यह शब्द की चेतना के सहारे कार्य करना शुरू कर देता है।

सुख दुख सम कर नाम अधारा॥ आपे पार उतारणहारा॥—साधक को चाहिए कि दु:ख और सुख को समान भाव से देखता हुआ, लिव अंदर नाम के साथ जोड़कर रखे। दु:ख-सुख जीवन का अभिन्न अंग हैं। यदि वह सुखों की लहर में बहकर या दु:खों के थपेड़ों की वजह से नाम की ओर से ध्यान को मोड़ लेगा, तो कभी भी नाम का अभ्यास नहीं कर पाएगा। जो जीव दु:ख और सुख में मन को स्थिर करके नाम के अभ्यास में लगा रहता है, वह एक दिन दु:ख-सुख की द्वैत से ऊपर उठ जाता है। इसलिए दु:ख और सुख को नाम की ओर से ध्यान मोड़ लेने का कारण नहीं बनाना चाहिए, इनके बावजूद नाम के साथ जुड़े रहना चाहिए। जो साधक जीवन के हर प्रकार के उतार-चढ़ाव के बावजूद नाम की आराधना में लगा रहता है, वह दयालु दाता स्वयं ही उसका उद्धार कर देता है।

गुर परचै मन साच समाए॥ प्रणवत नानक काल न खाए॥—जो साधक गुरु की शरण द्वारा नामरूपी सत्य में समा जाता है, वह आवागमन के चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

नाम तत सभ ही सिर जापै॥ बिन नावै दुख काल संतापै॥
ततो तत मिलै मन मानै॥ दूजा जाए इकत घर आनै॥
बोलै पवना गगन गरजै॥ नानक निहचल मिलण सहजै॥५०॥

शब्दार्थ: ततो...मिलै=आत्मा परमात्मा में समा जाती है।

सरलार्थ: गुरु साहिब नाम की महिमा करते हुए कहते हैं: नाम ही सर्वश्रेष्ठ या शिरोमणि सार पदार्थ है, नाम ही सबका सार और आधार है। नाम के बिना दु:ख और काल सताते हैं। जब आत्मारूपी तत्त्व नामरूपी परमतत्त्व में लीन हो जाता है, तो मन वश में आ जाता है। इससे द्वैत का नाश हो जाता है। आत्मा और परमात्मा दोनों का एक ही घर में निवास हो जाता है। इस प्रकार वायु बोलती है, आकाश गर्जता है तथा आत्मा का स्वत: ही निश्चल परमात्मा के साथ मिलाप हो जाता है।

❖ ***नाम तत सभ ही सिर जापै॥***—इस पंक्ति से दोहरा भाव लिया जा सकता है कि नाम परमतत्त्व है और नाम ही मुक्ति की प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है।

किसी दूसरे साधन द्वारा काल के संताप से मुक्ति प्राप्त कर पाना असंभव है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

गुर परसादी बूझ ले तउ होए निबेरा॥
घर घर नाम निरंजना सो ठाकुर मेरा॥[134]

नाम प्रत्येक हृदय में समाया हुआ है और नाम ही वह ठाकुर अर्थात् कुल मालिक है, जिसकी पूजा या आराधना करनी चाहिए। आप अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

सभ कोइ मीठा मंग देखै खसम भावै सो करे॥
किछ पुंन दान अनेक करणी नाम तुल न समसरे॥[135]

प्रभु प्राप्ति के लिए कोई अन्य साधन नाम की बराबरी नहीं कर सकता। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपर नाम॥
हर हर रसना जो जपै तिस पूरन काम॥[136]

बेद सासत्र जन धिआवह तरण कउ संसार॥
करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपर नाम अचार॥[137]

बिन नावै दुख काल संतापै॥—जब तक नाम के साथ लिव नहीं जुड़ती, आवागमन के दु:खों से मुक्ति नहीं मिल सकती। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

पूरै सतगुर बूझ बुझाई॥ विण नावै मुकत किनै न पाई॥[138]

ततो तत मिलै मन मानै॥ दूजा जाए इकत घर आनै॥—जब आत्मा अपने स्रोत शब्द में लीन हो जाती है तो मन मान जाता है, भाव वश में आ जाता है और हौंमैं यानी द्वैत से मुक्ति मिल जाती है। फिर आत्मा, परमात्मा में समा जाती है और इसे पूर्ण एकता की अनुपम अवस्था प्राप्त हो जाती है।

बोलै पवना गगन गरजै॥ नानक निहचल मिलण सहजै॥—नाम के अभ्यास से आंतरिक गगन मंडल में शब्द की तेज़ वायु चलने और बादलों की गर्जना जैसी ध्वनि सुनाई देती है। निहचल मिलण का अर्थ निश्चल या अटल मिलाप भी किया जाता है और अविनाशी प्रभु के साथ मिलाप भी किया जाता है।

गगन से अभिप्राय वह ऊँचा आध्यात्मिक मंडल है, जिस में शब्द की ज़ोरदार गर्जना सुनाई देती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

दर वाजह अनहत वाजे राम॥ घट घट हर गोबिंद गाजे राम॥[139]

प्रभु के दरबार में अनहद शब्द के साज़ बजते हुए सुनाई देते हैं, मानो वह गोविंद गर्जना कर रहा हो। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है: 'सरब थान को राजा॥ तह अनहद सबद अगाजा॥'[140] कुल मालिक के दरबार में अनहद शब्द की ध्वनि की गर्जना सुनाई दे रही है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

पंचे सबद वजे मत गुरमत वडभागी अनहद वजिआ॥
आनद मूल राम सभ देखिआ गुर सबदी गोविद गजिआ॥[141]

जब सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर स्थिर किया, तो अनहद शब्द की पाँच प्रकार की ध्वनियाँ और आनंद स्वरूप प्रभु गर्जना करता हुआ सुनाई देने लगा।

अंतर सुंनं बाहर सुंनं त्रिभवण सुंन मसुंनं॥
चउथे सुंनै जो नर जाणै ता कउ पाप न पुंनं॥
घट घट सुंन का जाणै भेउ॥ आद पुरख निरंजन देउ॥
जो जन नाम निरंजन राता॥ नानक सोई पुरख बिधाता॥५१॥

शब्दार्थ: सुंन मसुंन=महासुन्न; **भेउ**=भेद, रहस्य; **पुरख बिधाता**=प्रभु।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: अंतर के पसारे का आधार भी सुन्न है, बाहर के पसारे का आधार भी सुन्न है और सारी त्रिलोकी का आधार सुन्न है। जो साधक चौथी सुन्न भाव सचखण्ड में पहुँच जाता है, वह पुण्य और पाप के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। उसे प्रत्येक हृदय में व्याप्त सुन्न का भेद समझ में आ जाता है। दूसरे शब्दों में, उसे प्रत्येक हृदय में समाये हुए उस आदि पुरुष और माया से रहित प्रभुरूपी सच्चे देव की सूझ हो जाती है। जो साधक प्रभु के माया रहित नाम में समा जाता है, वह भी उस कर्ता पुरुष का रूप हो जाता है।

❖ गुरु साहिब योगियों को समझाते हैं: यह ठीक है कि बाहरी जगत् और आंतरिक जगत् सहित तीनों लोकों में सुन्न का ही प्रसार है। इन सुन्नों के विषय में वाद-विवाद में उलझे रहने की आवश्यकता नहीं, बल्कि इन सुन्नों को पार करके सचखण्डरूपी चौथी सुन्न में पहुँचने की है। जो साधक चौथे पद यानी चौथी सुन्न में पहुँच जाता है, वह पाप-पुण्य की द्वैत से ऊपर उठ जाता है। वह प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाता है।

सुंनो सुंन कहै सभ कोई॥ अनहत सुंन कहा ते होई॥
अनहत सुंन रते से कैसे॥ जिस ते उपजे तिस ही जैसे॥
ओए जनमे न मरह न आवह जाहे॥ नानक गुरमुख मन समझाहे॥५२॥

शब्दार्थ: अनहत=जिसे नष्ट न किया जा सके, अविनाशी।

सरलार्थ: योगी प्रश्न करते हैं: सुन्न-सुन्न की चर्चा सभी करते हैं, परंतु यह कोई नहीं बताता कि अनहत सुन्न कैसे अस्तित्व में आई और जो अनहत सुन्न में समा जाते हैं, वे कैसे हैं, उनकी अवस्था कैसी हो जाती है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जो जिसमें से उत्पन्न हुए हैं, वे उसमें समाकर उसका रूप हो जाते हैं। वे जन्म-मरण भाव आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते। वे गुरुमुखों द्वारा मन को समझा लेते हैं, मन को वश में कर लेते हैं।

❖ **सुंनो सुंन कहै सभ कोई॥ अनहत सुंन कहा ते होई॥**—योगी कहते हैं कि अलग-अलग संप्रदायों में सुन्न के विषय में अलग-अलग विचार प्रकट किए गए हैं। आप हमें यह समझाओ कि अनहत सुन्न कहाँ से आई? **अनहत सुंन रते से कैसे॥**—जो साधक ध्यान को अनहत सुन्न में लीन कर लेते हैं, उनकी अवस्था कैसी हो जाती है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

जिस ते उपजे तिस ही जैसे॥
ओए जनमे न मरह न आवह जाहे॥
नानक गुरमुख मन समझाहे॥

आप समझाते हैं कि सभी जीव उस अनहत सुन्न, सचखण्ड यानी प्रभु में से आए हैं। जो उस अनहत सुन्न में पुन: लीन हो जाते हैं, वे उसका ही रूप बन जाते हैं। प्रभु जन्म-मरण से ऊपर है। उसमें समा चुके साधक भी आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं। वे सतगुरु की सहायता से मन को वश में कर लेते हैं, जिससे उनकी आत्मा प्रभु में समा जाती है।

गुरु साहिब प्रेरणा दे रहे हैं कि अनहत सुन्न में विराजमान प्रभु के विषय में वाद-विवाद में पड़ने के बजाय, उसके नाम द्वारा उसके साथ मिलाप करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि जो उसमें समा जाता है, वह उसी का रूप हो जाता है और जन्म-मरण के चक्कर से ऊपर उठ जाता है।

नउ सर सुभर दसवै पूरे॥ तह अनहत सुंन वजावह तूरे॥
साचै राचे देख हजूरे॥ घट घट साच रहिआ भरपूरे॥
गुपती बाणी परगट होए॥ नानक परख लए सच सोए॥५३॥

शब्दार्थ: **सुभर**=लबालब, भरपूर।

सरलार्थ: गुरु साहिब समझाते हैं: तुम शरीर के नौ द्वारों को बंद करके ध्यान को दसवें द्वार पर स्थिर करो। यहाँ पर तुम्हें अनहद शब्द की ध्वनि सुनाई देगी। इस तरह से तुम सच्चे प्रभु की हुज़ूरी में पहुँचकर, उसमें लीन हो जाओगे। फिर तुम्हें वह सच्चा प्रत्येक घट में व्याप्त दिखाई देगा। इस तरह से तुम्हारे अंदर गुप्त अवस्था में विद्यमान नामरूपी अनहद वाणी प्रकट हो जाएगी और तुम्हें प्रभुरूपी सत्य की सूझ हो जाएगी।

❖ **नउ सर सुभर दसवै पूरे॥ तह अनहत सुंन वजावह तूरे॥**—सुन्न के विषय में पिछली पउड़ियाँ सिद्धांतमयी हैं, यह पउड़ी साधनमयी है। पिछली पउड़ियों में सुन्न के स्वरूप का उल्लेख किया गया है, इस पउड़ी में अनहत सुन्न या चौथे लोक तक पहुँचानेवाली साधना पर प्रकाश डाला गया है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि जो साधक शरीर के नौ द्वार बंद करके ध्यान को दसवें दरवाज़े में स्थिर कर लेता है, उसे अनहद शब्द के तूर बजते हुए सुनाई देते हैं।

गुरु साहिब ने शरीर के आँखों से निचले भाग—जिसमें दो आँखें, दो कान, दो नाक के छिद्र, मुँह और मल-मूत्र के दो स्थान हैं—को नौ द्वार कहा है। आँखों से ऊपरवाले भाग को दसवाँ दरवाज़ा कहा जाता है। आपकी वाणी है:

देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसह परधाना॥
ऊपर एकंकार निरालम सुंन समाध लगाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे॥ सिर सिर करणैहारै साजे॥
दसवै पुरख अतीत निराला आपे अलख लखाइआ॥[142]

आप कहते हैं: शरीररूपी उत्तम स्थान में पाँच प्रमुख मंडल हैं, जिनके ऊपर वह एक एकंकार सुन्न समाधि में लीन है। शरीररूपी नगरी के नौ द्वार सांसारिक कार्य व्यवहार के लिए है, जबकि उस अकाल पुरुष का ज्ञान दसवें द्वार में होता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

नउ दरवाजे काइआ कोट है दसवै गुपत रखीजै॥
बजर कपाट न खुलनी गुर सबद खुलीजै॥
अनहद वाजे धुन वजदे गुर सबद सुणीजै॥
तित घट अंतर चानणा कर भगति मिलीजै॥[143]

कायारूपी क़िले के नौ दरवाज़े प्रकट हैं, परंतु दसवाँ दरवाज़ा गुप्त है। वज्र कपाट सतगुरु द्वारा बख़्शे शब्द का अभ्यास करने से खुलता है। जब ध्यान नौ दरवाज़ों से सिमटकर, दसवें दरवाज़े में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, तो शब्द-गुरु के साथ मिलाप हो जाता है। उस अवस्था में अनहद शब्द की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देने लगती हैं। इस प्रकार अंतर में प्रकाश भर जाता है और जीवात्मा प्रभु की भक्ति द्वारा उसमें समा जाती है।

दसवें द्वार में अनहद शब्द की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, जिसमें तूर की ध्वनि भी शामिल है। गुरु साहिब इस ध्वनि के विषय में कहते हैं: 'गुरमत राम जपै जन पूरा॥ तित घट अनहत बाजे तूरा॥'[144] गुरु अमरदास जी 'अनंद' में कहते हैं:

सुणते पुनीत कहते पवित सतगुर रहिआ भरपूरे॥
बिनवंत नानक गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे॥[145]

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

नउ निध पाई वजी वाधाई वाजे अनहद तूरे॥
कहो नानक मै वर घर पाइआ मेरे लाथे जी सगल विसूरे॥[146]

जब शरीररूपी घर के अंदर से ही प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप हो गया, तो वियोग के सब दुःख दूर हो गए और अंदर अनहद शब्द के आनंददायक तूर सुनाई देने लगे।

गुपती बाणी परगट होए॥—अंदर अनहद शब्द के तूर सुनाई देने को ही गुप्त वाणी का प्रकट हो जाना कहा गया है।

संत-महात्माओं ने दो प्रकार की वाणी बताई है: बाहरी और आंतरिक। लिखने, पढ़ने, बोलने और सुनने में आनेवाली बाहरी वाणी इंद्रियों का विषय है। इस वाणी का समय-स्थान के साथ संबंध है। इसमें भाषा और वर्णन की अनेकता और भिन्नता है। बाहरी वाणी चार प्रकार की है: परा, पश्यंती, मध्यमा और बैखरी। यह चार प्रकार की वाणी क्रमवार नाभि, हृदय, कंठ और मुँह से उच्चारण की जाती है। आंतरिक वाणी आत्मा के अनुभव का विषय है। यह वाणी ध्यान को अंदर आँखों के ऊपर स्थिर तथा एकाग्र करने पर सुरत द्वारा सुनी जाती है। यह वाणी परम सूक्ष्म और परम चेतन है। वह आदि-अंत से परे है, इसलिए उसे आदि वाणी, अविनाशी वाणी या सच्ची वाणी कहा जाता है। उस वाणी में पूर्ण अद्वैत है। वह सर्वव्यापक है। बाहरी वाणी दो वस्तुओं के स्पर्श से उत्पन्न होती है। आंतरिक वाणी अपने-आप से है। उसका कोई आदि, मध्य और अंत नहीं। इसलिए उसे अनहत या अनहद वाणी भी कहा जाता है।

गुरु साहिब ने शब्द, नाम और अंदर प्रकट होनेवाली वाणी को प्रभुरूप माना है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

वाह वाह बाणी निरंकार है तिस जेवड अवर न कोए॥
वाह वाह अगम अथाह है वाहो वाहो सचा सोए॥[147]

निरंकार वाणीरूप है। उसकी वाणी उसकी तरह ही अगम, अथाह और आदि अंत से परे है। वह निरंकार सबसे बड़ा और ऊँचा है और उसकी वाणी भी सबसे बड़ी और ऊँची है। आप फ़रमाते हैं:

सच बाणी सच सबद है भाई गुर किरपा ते होए॥
नानक नाम हर मन वसै भाई तिस बिघन न लागै कोए॥[148]

नानक परख लए सच सोए॥—गुरु साहिब कहते हैं कि जो साधक ध्यान को अंदर शब्द में लीन कर देता है, उसे प्रभुरूपी सत्य की सूझ हो जाती है। आपका भाव है कि वर्तमान अवस्था में हम सुन्न और अनहद सुन्न के बारे में व्यर्थ के वाद-विवाद में पड़े हुए हैं। जब शब्द की साधना द्वारा अंदर प्रभु से मिलाप हो जाएगा, तब सचखण्ड यानी प्रभुरूपी अनहद सुन्न का साक्षात् अनुभव प्राप्त हो जाएगा।

सहज भाए मिलीऐ सुख होवै॥ गुरमुख जागै नीद न सोवै॥
सुंन सबद अपरंपर धारै॥ कहते मुकत सबद निसतारै॥
गुर की दीखिआ से सच राते॥
नानक आप गवाए मिलण नही भ्राते॥५४॥

शब्दार्थ: सहज भाए=सहज रूप से; **अपरंपर**=अनुपम; **निसतारै**=निस्तारा, उद्धार हो जाता है; **दीखिआ**=उपदेश; **भ्राते**=भ्रम।

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ी के भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: (जब प्रभु की दया से सहज रूप में) अंदर शब्द के साथ मिलाप हो जाता है तो परम आनंद की प्राप्ति होती है। जो साधक सतगुरु के उपदेशानुसार अंतर में जाग्रत हो जाता है, उसका अज्ञानता की नींद से

छुटकारा हो जाता है। उसके अंदर सुन्न मंडल का अनुपम शब्द प्रकट हो जाता है। शब्द के अभ्यास से उसका भवजल से उद्धार हो जाता है और वह आपाभाव का नाश कर देता है। उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है, फिर वह किसी भी भ्रम या संशय का शिकार नहीं होता। जो गुरु के उपदेश पर चलता है, वह शब्दरूपी सत्य में समा जाता है।

❖ ***सहज भाए मिलीऐ सुख होवै॥ गुरमुख जागै नीद न सोवै॥***—शब्द (नाम) हरेक के अंदर है, परंतु जीव उसकी तरफ़ से अचेत है। जब यह गुरु के उपदेश पर चलता है तो सहज ही अज्ञानता की नींद से ज्ञान की चेतन अवस्था में पहुँचकर सच्चे सुख का अधिकारी बन जाता है।

सुंन सबद अपरंपर धारै॥ कहते मुकत सबद निसतारै॥—जो साधक सुन्न मंडल के अदभुत् शब्द के साथ जुड़ जाता है, वह शब्द में समाकर भवसागर से पार हो जाता है।

गुर की दीखिआ से सच राते॥ नानक आप गवाए मिलण नही भ्राते॥—शब्द के साथ जुड़ने का सौभाग्य सतगुरु के उपदेश पर चलने से प्राप्त होता है। गुरु के उपदेश पर अमल करने से हौंमैं का नाश हो जाता है, हर प्रकार के संशय, भ्रम दूर हो जाते हैं और प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है। गुरु नानक साहिब, गुरु द्वारा बख़्शिश की गई दीक्षा की महिमा करते हुए फ़रमाते हैं:

तिन्हा मिलिआ गुर आए जिन कउ लीखिआ॥
अंम्रित हर का नाउ देवै दीखिआ॥
चालह सतिगुर भाए भवह न भीखिआ॥[149]

जिनके भाग्य में लिखा होता है, उन्हें सतगुरु से हरि के अमृत भरे नाम की दीक्षा प्राप्त होती है। जो शिष्य गुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करते हैं, उन्हें आवागमन के चक्कर में भटकते हुए दूसरों के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ते। आप दूसरे प्रसंग में फ़रमाते हैं: 'सिख सभा दीखिआ का भाउ॥ गुरमुख सुणणा साचा नाउ॥'[150] सतगुरु की संगति और उपदेश के प्रति प्रेम की यह निशानी है कि गुरु का शिष्य, सतगुरु के उपदेशानुसार लिव को अंदर नाम के साथ जोड़े।

कुबुध चवावै सो कित ठाए॥ किउ तत न बूझै चोटा खाए॥
जम दर बाधे कोए न राखै॥ बिन सबदै नाही पत साखै॥
किउ कर बूझै पावै पार॥ नानक मनमुख न बुझै गवार॥५५॥

शब्दार्थ: चवावै=दूर कर दे।

सरलार्थ: योगी प्रश्न करते हैं: वह कौन-सा स्थान है, जहाँ पहुँचकर कुबुद्धि से छुटकारा हो जाता है? क्या कारण है कि जीव परम तत्त्व (प्रभु) को नहीं बूझता और (काल की) चोटें खाता है? क्या कारण है कि यम के द्वार से बँधे हुए जीव का छुटकारा नहीं होता? क्या कारण है कि शब्द के अभ्यास के बिना सच्ची शोभा प्राप्त नहीं होती? जीव सत्य को जानकर भवजल से किस तरह पार हो सकता है? मूर्ख अज्ञानी को सत्य की सूझ क्यों नहीं होती?

कुबुध मिटै गुर सबद बीचार॥ सतगुर भेटै मोख दुआर॥
तत न चीनै मनमुख जल जाए॥ दुरमत विछुड़ चोटा खाए॥
मानै हुकम सभे गुण गिआन॥ नानक दरगह पावै मान॥५६॥

शब्दार्थ: मोख=मुक्ति; **चीनै**=पहचानता है।

सरलार्थ: गुरु साहिब उत्तर देते हैं: सतगुरु के उपदेश पर चलते हुए शब्द के अभ्यास द्वारा दुर्मति दूर हो जाती है। सतगुरु के मिलाप द्वारा मुक्ति का दरवाज़ा खुल जाता है। मनमुख परम तत्त्व की पहचान नहीं करता, वह सदा तृष्णा की अग्नि में जलता रहता है। वह मनमुखता के कारण प्रभु के वियोग के दुःखों और यम की चोट खाता है। यदि वह मनमुखता त्यागकर प्रभु के हुक्म या रज़ा में आ जाए तो उसके अंदर सब गुण उत्पन्न हो जाते हैं और प्रभु के दरबार में पहुँचने का सम्मान प्राप्त हो जाता है।

❖ ***कुबुध मिटै गुर सबद बीचार॥ सतगुर भेटै मोख दुआर॥***
तत न चीनै मनमुख जल जाए॥ दुरमत विछुड़ चोटा खाए॥

यहाँ पर **कुबुध** और **दुरमत** पद मनमुखता के लिए प्रयोग किए गए हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि जब तक जीव मनमुखता त्यागकर सतगुरु के उपदेश

पर नहीं चलता, इसका कोई भी पारमार्थिक कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अज्ञानता के अंधकार का नाश भी सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द की आराधना द्वारा होता है और मुक्ति की प्राप्ति भी सतगुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन करने से होती है। जब तक जीव मनमुखता का शिकार रहता है उसे प्रभुरूपी परम तत्त्व की सूझ नहीं हो सकती। परिणाम यह होता है कि उसका प्रभु से वियोग दूर नहीं होता और वह सदा आवागमन के दु:खदायक चक्कर से बँधा रहता है। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

नाम न चेतह सबद न वीचारह इह मनमुख का आचार॥
हर नाम न पाइआ जनम बिरथा गवाइआ नानक जम मार करे खुआर॥[151]

जो जीव नाम के अभ्यास को छोड़कर किसी अन्य साधन द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने का प्रयत्न करते हैं, वे मनमुख मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवा लेते हैं तथा यमों की मार खाते हैं।

मानै हुकम सभे गुण गिआन॥ नानक दरगह पावै मान॥—गुरु साहिब कहते हैं कि जो सेवक मनमुखता त्यागकर प्रभु के हुक्म में आ जाता है, उसके अंदर सब पारमार्थिक गुण पैदा हो जाते हैं और उसे परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसे प्रभु के घर में पहुँचने की बड़ाई प्राप्त हो जाती है। सतगुरु के हुक्म का पालन करने का अभिप्राय ही सतगुरु के उपदेशानुसार लिव को अंदर शब्द के साथ जोड़ना है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

हुकम मंने सो जन परवाण॥ गुर कै सबद नाम नीसाण॥[152]

जो सेवक सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार नाम का अभ्यास करता है, वह प्रभु के दरबार में स्वीकार हो जाता है।

साच वखर धन पलै होए॥ आप तरै तारे भी सोए॥
सहज रता बूझै पत होए॥ ता की कीमत करै न कोए॥
जह देखा तह रहिआ समाए॥ नानक पार परै सच भाए॥५७॥

शब्दार्थ: वखर=सौदा, पदार्थ; **रता**=रँगा हुआ; **भाए**=प्रेम।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: जो सच्चा सौदा, नामरूपी धन पल्ले बाँध लेता है, वह स्वयं भी भवजल से पार हो जाता है और दूसरों का भी भवजल से उद्धार कराता है। उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है। उसे परम तत्त्व की सूझ हो जाती है और वह ऊँची अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसका वर्णन कर पाना असंभव है। उसे प्रत्येक स्थान पर वह प्रभु व्याप्त दिखाई देता है। इस प्रकार वह नामरूपी सत्य के प्रेम द्वारा भवजल से पार हो जाता है।

❖ ***साच वखर धन पलै होए॥***—वखरु का अर्थ है सौदा या पदार्थ। संसार में दो प्रकार के सौदे हैं और दो प्रकार के व्यापारी हैं। एक माया का सौदा है, दूसरा नाम यानी प्रभु की भक्ति का सौदा है। मनमुख माया का सौदा ख़रीदते हैं। गुरुमुख, प्रभु के नाम का धन इकट्ठा करते हैं। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में उपदेश देते हैं:

कूड़ छोड साचे कउ धावहो॥ जो इछहो सोई फल पावहो॥
साच वखर के वापारी विरले लै लाहा सउदा कीना हे॥
हर हर नाम वखर लै चलहो॥ दरसन पावहो सहज महलहो॥[153]

आप उपदेश देते हैं: मेरे प्यारे! माया का झूठा सौदा छोड़कर प्रभु के नाम का सच्चा सौदा ख़रीदो। यदि यह सौदा गाँठ बाँध लोगे तो मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाएगी और प्रभु के महल में निवास मिल जाएगा। कबीर साहिब की वाणी है:

किनही बनजिआ कांसी तांबा किनही लउग सुपारी॥
संतह बनजिआ नाम गोबिद का ऐसी खेप हमारी॥
हर के नाम के बिआपारी॥
हीरा हाथ चड़िआ निरमोलक छूट गई संसारी॥[154]

सांसारिक लोग माया के पदार्थों के व्यापारी हैं। प्रभु के भक्त प्रभु के नाम का धन इकट्ठा करते हैं। जिसे हीरा मिल जाता है, वह **कौड़ियों के**

पीछे नहीं भागता। जिन्हें नाम का अमूल्य और अविनाशी धन मिल जाता है, वे मायामय शक्लों या पदार्थों के अधूरे और नाशवान् धन की ओर ध्यान नहीं देते।

आप तरै तारे भी सोए॥—पीछे बहुत से प्रसंगों में विचार कर आए हैं कि जो नाम के साथ लिव जोड़कर भवसागर से पार हो जाते हैं, वे अनेक अन्य जीवों के भी उद्धार का साधन बन जाते हैं। गुरु साहिब ने 'जप जी' में अपनी विचारधारा का समापन इस प्रकार किया है:

जिनी नाम धिआइआ गए मसकत घाल॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नाल॥[155]

नाम का अभ्यास करनेवाले स्वयं भी भवसागर से पार हो गए और अन्य अनेक जीवों के उद्धार में भी सहायक सिद्ध हुए। गुरु अमरदास जी का कथन है:

नाम रते कुलां का करह उधार॥ साची बाणी नाम पिआर॥[156]

सहज रता बूझै पत होए॥ ता की कीमत करै न कोए॥—जो नाम के साथ लिव जोड़ लेता है, वह सदैव सहज अवस्था के आनंद में मग्न रहता है। उसे प्रभु की पहचान की अनुपम बड़ाई प्राप्त हो जाती है। ऐसे भाग्यशाली जीव धन्य हैं। उनकी महिमा अपरंपार है। गुरु साहिब की वाणी है:

अंतर साच सहज घर आवह॥ राजन जाण परम गत पावह॥[157]

जो साधक ध्यान को अंतर्मुख करके प्रभु के सहज घर में निवास कर लेता है, उसे प्रभु के साथ मिलाप का परम पद प्राप्त हो जाता है।

जह देखा तह रहिआ समाए॥ नानक पार परै सच भाए॥—वर्तमान अवस्था में प्रभु का सर्वव्यापक होना, कल्पना मात्र है। लेकिन जब सुरत नाम में लीन हो जाती है, तब प्रभु का सर्वव्यापक होना साक्षात् अनुभव बन जाता है। वर्तमान अवस्था में भवसागर से पार होना, एक स्वप्न मात्र है। नाम के साथ लिव जोड़ने पर यह स्वप्न साकार हो जाता है और जीवात्मा व्यावहारिक रूप से भवसागर से पार हो जाती है।

सो सबद का कहा वास कथीअले जित तरीऐ भवजल संसारो॥
त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिस कहो कवन अधारो॥
बोलै खेलै असथिर होवै किउ कर अलख लखाए॥
सुण सुआमी सच नानक प्रणवै अपणे मन समझाए॥
गुरमुख सबदे सच लिव लागै कर नदरी मेल मिलाए॥
आपे दाना आपे बीना पूरै भाग समाए॥५८॥

शब्दार्थ: जित=जिससे; **त्रै सत**=3+7=10; **अंगुल**=अंगुलियाँ; **वाई**=प्राण; **असथिर**=स्थिर, अडोल; **प्रणवै**=विनती करता है; **दाना**=ज्ञान रूप; **बीना**=अंतर्यामी।

सरलार्थ: गुरु साहिब से शब्द की महिमा सुनकर योगी प्रश्न करते हैं: जिस शब्द द्वारा जीव भवजल से पार होते हैं, उस शब्द का निवास कहाँ है? जिन जीवन दायक प्राणों का प्रतीक दस अंगुलियाँ हैं, उन प्राणों का आधार क्या है? जो (चंचल मन) बोलता और खेलता है, वह स्थिर और निश्चल कैसे हो सकता है और अलख प्रभु की पहचान कैसे हो सकती है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: हे स्वामी! सुनो, नानक सत्य कहता है कि सबसे पहले मन को वश में करना आवश्यक है। जिस गुरुमुख की गुरु द्वारा, शब्द के ज़रिये प्रभु के साथ लिव लग जाती है, प्रभु दया करके उसे अपने साथ मिला लेता है। प्रभु ज्ञानरूप और अंतर्यामी है। ऊँचे भाग्य हों तो ही उसके साथ मिलाप होता है।

सो सबद कउ निरंतर वास अलखं जह देखा तह सोई॥
पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई॥
नदर करे सबद घट मह वसै विचहो भरम गवाए॥
तन मन निरमल निरमल बाणी नामो मंन वसाए॥
सबद गुरू भव सागर तरीऐ इत उत एको जाणै॥
चिहन वरन नही छाइआ माइआ नानक सबद पछाणै॥५९॥

शब्दार्थ: अकल=कला रहित, निर्गुण, निराकार; **कला धर**=कला सहित, सर्गुण; **चिहन वरन**=रंग-रूप; **नही...माया**=माया के प्रभाव से रहित।

सरलार्थ: गुरु साहिब अपने उत्तर को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: वह शब्द अलख, अगम और सर्वव्यापक है। मैं जहाँ भी देखता हूँ, शब्द व्यापक

दिखाई देता है। जीवनदायक प्राणों का आधार सुन्न है तथा सुन्न का स्त्रोत वह सर्वव्यापक कला रहित (निर्गुण) और कला सहित (सर्गुण) प्रभु स्वयं है। जिस पर प्रभु दया करता है, उसके अंदर शब्द प्रकट हो जाता है और उसके सब भ्रम दूर हो जाते हैं। जब अंदर शब्द प्रकट हो जाता है, तो तन और मन दोनों निर्मल हो जाते हैं। शब्दरूपी गुरु द्वारा भवजल से मुक्ति हो जाती है और उसे लोक-परलोक दोनों में एक प्रभु व्याप्त दिखाई देने लगता है, जो रंग-रूप, चिन्ह-चक्र और माया से ऊपर है, उस (निराकार, निरंजन) की पहचान शब्द द्वारा होती है।

❖ ***सो सबद कउ निरंतर वास अलखं जह देखा तह सोई॥***
पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई॥

शब्द का प्रवाह अखंड है। जीवनदायक प्राणों और सुन्न दोनों का आधार वह प्रभु है। वह निर्गुण, निराकार प्रभु जब चाहे सर्गुण रूप धारण करके संपूर्ण रचना का आधार बन जाता है।

नदर करे सबद घट मह वसै विचहो भरम गवाए॥
तन मन निरमल निरमल बाणी नामो मंन वसाए॥

शब्द प्रत्येक घट में है, परंतु यह प्रभु की दया से प्रकट होता है। जब कर्ता की दया-मेहर द्वारा शब्द अंदर प्रकट हो जाता है, तब हर प्रकार की शंका और भ्रम पंख लगाकर उड़ जाते हैं और हृदय निर्मल ज्ञान से भर जाता है। नामरूपी निर्मल वाणी के अंदर प्रकट हो जाने से तन और मन, विषय-विकारों, आशा-तृष्णा और कर्मों-संस्कारों की मैल से रहित होकर निर्मल हो जाते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

तन मह साचो गुरमुख भाउ॥ नाम बिना नाही निज ठाउ॥
प्रेम पराइण प्रीतम राउ॥ नदर करे ता बूझै नाउ॥[158]

प्रभु प्रेम रूप और दया रूप है। उसके नाम के अभ्यास के बिना उससे मिलाप नहीं हो सकता और उसके नाम का भेद उसकी दया से प्राप्त होता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

बिख अंम्रित करतार उपाए॥ संसार बिरख कउ दुइ फल लाए॥
.....
नानक जिस नो नदर करे॥ अंम्रित नाम आपे दे॥[159]

माया के विष का सृजन भी प्रभु ने किया है और नाम के अमृत का भी। वह जिस पर भी नाम के अमृत की बख़्शिश करता है, स्वयं दया-मेहर द्वारा करता है। आप कहते हैं:

आपे करता करे कराए॥ आपे सबद गुर मंन वसाए॥
सबदे उपजै अंम्रित बाणी गुरमुख आख सुणावणिआ॥[160]

जो कुछ होता है, उस एक कर्ता द्वारा होता है। जब उसकी दया होती है, सतगुरु द्वारा हृदय में शब्द का प्रवाह चल पड़ता है।

सबद गुरू भव सागर तरीऐ इत उत एको जाणै॥—गुरु साहिब ने 44 वीं पउड़ी में 'सबद गुरू सुरत धुन चेला॥' का संकेत किया है। गुरु साहिब 24 वीं पउड़ी में कहते हैं: 'सो जोगी गुर सबद पछाणै' 25 वीं पउड़ी में कहते हैं: 'आवा गउण मिटै गुर सबदी' गुरु साहिब ने शब्द को गुरु का शब्द कहा है, क्योंकि इस शब्द की प्राप्ति गुरु द्वारा होती है। आप इस शब्द को गुरु कहते हैं, क्योंकि आत्मा का प्रभु से मिलाप शब्द द्वारा होता है। इस संदर्भ में सबसे पहले यह प्रसंग मुख्य रखते हैं:

जेता सबद सुरत धुन तेती जेता रूप काइआ तेरी॥
तूं आपे रसना आपे बसना अवर न दूजा कहउ माई॥[161]

हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥ हर आपे वेखै विगसै आपे॥[162]

प्रभु, शब्द और आत्मा का स्त्रोत एक है। प्रभु समुद्र है, शब्द उसकी लहर है और सुरत उसकी बूँद है। जब बूँद अपने-आपको लहर के सुपुर्द कर देती है, तब लहर उसे अपने साथ समुद्र में लीन कर देती है।

इस सिद्धांत से संबंधित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि गुरु के अस्तित्व का आधार देह नहीं, उसके अंदर प्रकट प्रभु का शब्द है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गुर मह आप रखिआ करतारे॥ गुरमुख कोट असंख उधारे॥[163]

गुर मह आप समोए सबद वरताइआ॥
सचे ही पतीआए सच समाइआ॥[164]

वह कर्ता गुरु के रूप में स्वयं कार्य करता है। वह सतगुरु का रूप धारण करके शब्द (नाम) का प्रसार करता है, शब्द के भेद की बख़्शिश करता है। जो गुरु के शब्दरूपी सत्य में विश्वास रखता है, वह हरि में समाकर हरि का रूप बन जाता है। भाई गुरदास जी लिखते हैं:

पारब्रहम गुर रूप होए साध संगत गुर सबद समाइआ।[165]

वह प्रभु शब्दरूप में गुरु के अंदर समाकर प्रत्यक्ष प्रकट हो गया। आप इस भाव को तीन प्रकार से प्रकट करते हैं:

गुरमूरत गुर सबद है[166]

सबद सुरत चेला गुरू परमेसर सोई।[167]

पारब्रहम पूरन ब्रहम सबद सुरत सतगुर गुर चेला।[168]

आप समझाते हैं: 1. गुरु का वास्तविक स्वरूप उसके अंदर कार्यशील शब्द होता है। 2. शब्द, सुरत और सतगुरु तीनों पारब्रह्म का रूप हैं। वह पारब्रह्म ही गुरु के अंदर शब्द रूप में शिष्य की सुरत का गुरु बन जाता है। 3. चाहे शब्द और सुरत कहो, चाहे गुरु और शिष्य कहो, एक ही बात है। वास्तव में शब्द, सुरत और गुरु तीनों प्रभु के रूप हैं।
गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सबद गुर पीरा गहिर गंभीरा बिन सबदै जग बउरानं॥
पूरा बैरागी सहज सुभागी सच नानक मन मानं॥[169]

शब्द ही गुरु यानी पीर है। शब्द शांति रूप है। शब्द की सूझ के बिना सारा संसार अज्ञानियों की तरह भटक रहा है। जिसका शब्दरूपी सत्य में विश्वास है, वही सच्चा वैरागी और भाग्यशाली है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

हम सबद मुए सबद मार जीवाले भाई सबदे ही मुकत पाई॥
सबदे मन तन निरमल होआ हर वसिआ मन आई॥
सबद गुर दाता जित मन राता हर सिउ रहिआ समाई॥[170]

आप फ़रमाते हैं कि जीते-जी मरने की अवस्था भी शब्द की साधना द्वारा प्राप्त हुई है और मुक्ति भी शब्द के अभ्यास से ही प्राप्त हुई है। शब्द द्वारा ही तन-मन निर्मल हुए हैं और अंतर में प्रभु निवास करने लगा है। शब्द गुरु ही वह दाता है, जिससे मन प्रभु के प्रेम के रंग में रँग गया है तथा आत्मा को परमात्मा में लीन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। तात्पर्य यह है कि गुरु के अंदर शब्द प्रकट रूप में कार्यशील होता है। गुरु, शिष्य की सुरत को अंदर शब्दगुरु की गोद में डाल देता है और शब्दगुरु उसे अपने में समाकर शब्द के स्रोत प्रभु की गोद में डाल देता है।

चिहन वरन नही छाइआ माइआ नानक सबद पछाणै॥—छाया का अर्थ परछाईं भी किया जाता है और अज्ञानता भी। परमात्मा माया की छाया अर्थात् प्रभाव से मुक्त है। रंग-रूप, संशय-भ्रम या अज्ञानता का संबंध माया से है। प्रभु माया रहित है। वह निराकार है, इसलिए वह रंग-रूप आदि से परे है। उसकी पहचान शब्द द्वारा होती है।

त्रै सत अंगुल वाई अउधू सुंन सच आहारो॥
गुरमुख बोलै तत बिरोलै चीनै अलख अपारो॥
त्रै गुण मेटै सबद वसाए ता मन चूकै अहंकारो॥
अंतर बाहर एको जाणै ता हर नाम लगै पिआरो॥
सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै जा आपे अलख लखाए॥
नानक तिहु ते ऊपर साचा सतगुर सबद समाए॥ ६० ॥

शब्दार्थ: त्रै सत=3+7=10; **अंगुल**=अंगुलियाँ; **बिरोलै**=अलग कर लेता है; **सुखमना... पिंगुला**=आँखों से ऊपर तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ।

सरलार्थ: योगी ने पूछा था कि जिन दस प्राणों का दस अंगुलियाँ प्रतीक हैं, उनका आधार या भोजन क्या है? गुरु साहिब समझाते हैं: जिन दस प्राणों

का दस अंगुलियाँ प्रतीक हैं, उनका आधार सुन्न है और प्राणों और सुन्न दोनों का आधार वह प्रभु है। जो साधक सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द या नामरूपी तत्त्व को प्राप्त कर लेता है, उसे अलख, अगम प्रभु की पहचान हो जाती है। उसके अंदर शब्द बस जाता है। इस प्रकार वह तीनों गुणों रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण से ऊपर उठकर अहंकार का नाश कर लेता है। उसे अंदर-बाहर प्रत्येक स्थान पर एक प्रभु व्याप्त दिखाई देता है। उसके अंदर हरि के नाम का सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जाता है। (जब साधक की लिव अंदर शब्द में लीन हो जाती है) वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के संगम को पार कर जाता है और वह अलख और अगम प्रभु स्वयं ही अपनी पहचान करा देता है। सतगुरु के शब्द द्वारा साधक उसमें समा जाता है जो इन तीनों से ऊपर है।

❖ ***त्रै सत अंगुल वाई अउधू सुंन सच आहारो ॥***—गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रत्येक वस्तु सुन्न में से निकली है और सुन्न ही उसका वास्तविक आधार है। गुरु साहिब ने सुन्न से संबंधित एक पूरा शब्द मारू राग में उच्चारित किया है: 'सुंन कला अपरंपर धारी॥ आप निरालम अपर अपारी॥'[171] इस शब्द में आप विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि तीन लोक, चाँद, सूर्य, धरती, आकाश, पाँच तत्त्व आदि सब कुछ उस सुन्न में से ही उत्पन्न हुआ है। आप स्पष्ट करते हैं:

सुंनह खाणी सुंनह बाणी॥ सुंनहो उपजी सुंन समाणी॥
उतभुज चलत कीआ सिर करतै बिसमाद सबद देखाइदा॥[172]

अर्थात् सुन्न में से उत्पन्न हुई सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अंततः सुन्न में ही समा जाती है। प्रभु ने शब्द द्वारा सृष्टि का संपूर्ण आश्चर्यजनक खेल रचाया हुआ है। भाव यह है कि प्रभु, शब्द या सुन्न में से उत्पन्न हुई प्रत्येक वस्तु वापस जाकर सुन्न में ही समा जाती है।

गुरमुख बोलै तत बिरोलै चीनै अलख अपारो ॥—गुरु साहिब समझाते हैं कि जब साधक गुरु के उपदेश पर अमल करके नाम का अभ्यास करता है,

तो उसे सार और असार, सत्य और झूठ के अंतर की पहचान हो जाती है। वह नाशवान् मायामय संसार और अविनाशी प्रभु का भेद समझ जाता है। वह इंद्रियों के क्षणभंगुर भोगों और नाम के अविनाशी आनंद का अंतर समझ जाता है। वह नाशवान् संसार के मोह में फँसने की जगह अविनाशी प्रभु के साथ प्रेम करने लगता है। वह प्रभु प्राप्ति में गुमराह करनेवाले साधनों के बारे में सचेत होकर सच्चे साधन और मार्ग पर चलता है। गुरु के उपदेश पर चलने से उसे अलख की पहचान हो जाती है।

त्रै गुण मेटै सबद वसाए ता मन चूकै अहंकारो॥
अंतर बाहर एको जाणै ता हर नाम लगै पिआरो॥

गुरु साहिब कहते हैं कि प्राणों आदि की बाहरी चर्चा में लगे रहने की जगह, सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द के अभ्यास द्वारा अहंकार का नाश करके तीन गुणों की सीमा पार कर लेनी चाहिए। इससे हृदय में नाम के साथ सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जाता है और प्रभु सर्वव्यापक दिखाई देने लगता है। गुरु साहिब ने 20वीं पउड़ी में उपदेश दिया है: 'त्रै गुण मेटे खाईऐ सार॥' आप इस पउड़ी में विस्तारपूर्वक समझा आए हैं कि जब सतगुरु की कृपा से लिव अंदर शब्द के साथ जुड़ जाती है तो जीवात्मा तीन गुणों की मायामय रचना के दुःख से मुक्त होकर सहज सुख की अधिकारी बन जाती है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

रज तम सत कल तेरी छाइआ॥ जनम मरण हउमै दुख पाइआ॥
जिस नो क्रिपा करे हर गुरमुख गुण चउथै मुकत कराइदा॥[173]

रज, तम और सत्त्व तीनों गुण प्रभु की कला का खेल हैं। इनकी सीमा त्रिलोकी तक है। जब तक जीव इनकी सीमा में है, वह आवागमन के दुःख का शिकार रहता है। जो साधक प्रभु की कृपा से सतगुरु की शरण में पहुँच जाता है, उसे चौथे पद की मुक्त अवस्था प्राप्त हो जाती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

तिही गुणी त्रिभवण विआपिआ भाई गुरमुख बूझ बुझाए॥
राम नाम लग छूटीऐ भाई पूछहो गिआनीआ जाए॥
मन रे त्रै गुण छोड चउथै चित लाए॥
हर जीउ तेरै मन वसै भाई सदा हर के गुण गाए॥[174]

तीन गुणों की संपूर्ण त्रिलोकी माया का खेल है। गुरुमुखों की सहायता से नाम के साथ लिव जोड़कर, चौथे पद में पहुँचकर ही जन्म-मरण के इस दु:खदायी प्रसार से छुटकारा मिलता है।

सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै जा आपे अलख लखाए॥
नानक तिहु ते ऊपर साचा सतगुर सबद समाए॥

आँखों से ऊपर बायीं तरफ़ की सूक्ष्म नाड़ी को इड़ा, चंद्रमा या यमुना कहा जाता है। दायीं तरफ़ की सूक्ष्म नाड़ी को पिंगला, सूर्य या गंगा कहा जाता है। मध्य की सूक्ष्म नाड़ी को सुषुम्ना या सरस्वती कहा जाता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि जब साधक सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार ध्यान को अंदर एकाग्र और स्थिर करके, शब्द में लीन कर देता है तो वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना, तीनों को पार करके, अलख-अगम प्रभु में समा जाता है। यह कार्य प्रभु की दया-मेहर से सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार सुरत को शब्द में लीन करने से होता है।

संत नामदेव जी की वाणी है:

बैरागी रामह गावउगो॥
सबद अतीत अनाहद राता आकुल कै घर जाउगो॥
इड़ा पिंगुला अउर सुखमना पउनै बंध रहाउगो॥
चंद सूरज दुए सम कर राखउ ब्रहम जोत मिल जाउगो॥[175]

आप कहते हैं कि जो साधक इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को पार करके सुरत को अनहद शब्द में लीन कर लेता है, वह शरीर और संसार की तरफ़ से उपराम हो जाता है। उसकी आत्मा ब्रह्म-ज्योति भाव परमात्मा में समाकर उसका रूप बन जाती है। संत बेणी जी कहते हैं:

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीन बसह इक ठाई॥
बेणी संगम तह पिराग मन मजन करे तिथाई॥
संतहो तहा निरंजन राम है॥ गुर गम चीनै बिरला कोए॥
तहां निरंजन रमईआ होए॥[176]

आप कहते हैं कि वास्तविक संगम या प्रयाग अंतर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना से ऊपर दसवें द्वार में है। संतों ने उस प्रयाग को ही संगम, मानसरोवर तथा अमृतसर आदि नामों से पुकारा है। बाहरी प्रयाग में स्नान करने पर शरीर निर्मल होता है। आंतरिक प्रयाग में स्नान करने पर मन निर्मल होता है। यह अवस्था किसी बिरले भाग्यशाली गुरुमुख को प्राप्त होती है। उस निरंजन, निराकार की सूझ उस अवस्था में पहुँचकर ही होती है।

मन का जीउ पवन कथीअले पवन कहा रस खाई॥
गिआन की मुद्रा कवन अउधू सिध की कवन कमाई॥
बिन सबदै रस न आवै अउधू हउमै पिआस न जाई॥
सबद रते अंम्रित रस पाइआ साचे रहे अघाई॥
कवन बुध जित असथिर रहीऐ कित भोजन त्रिपतासै॥
नानक दुख सुख सम कर जापै सतगुर ते काल न ग्रासै॥ ६१॥

शब्दार्थ: जीउ=जीवन, सहारा; **पवन**=प्राण; **अघाई**=तृप्त हो गए, संतुष्ट हो गए; **असथिर**=स्थिर, अडोल; **जापै**=देखे, महसूस करे।

सरलार्थ: सिद्ध प्रश्न करते हैं: मन का जीवन या आधार पवन (प्राणों) को माना जाता है, आप यह बताएँ कि प्राणों का आहार और आधार क्या है? हे अवधूत! ज्ञान का साधन कौन-सा है और सिद्ध की कमाई क्या है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: हे अवधूत! शब्द के बिना मन को रस नहीं आता तथा हौंमैं और तृष्णा का नाश नहीं होता। शब्द में लीन होने से अमृत भरा रस प्राप्त हो जाता है और आत्मा हरिरूपी सत्य में समाकर पूर्णत: तृप्त हो जाती है। सिद्ध पूछते हैं: वह कौन-सी बुद्धि, विधि या युक्ति है, जिसके द्वारा मन निश्चल हो जाए और वह कौन-सा भोजन है,

जिससे मन तृप्त हो जाए? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: शिष्य को चाहिए कि सतगुरु के उपदेश पर चलता हुआ दु:ख और सुख को समान भाव से देखे। इस तरह जीव काल का ग्रास नहीं बनेगा।

❖ ***बिन सबदै रस न आवै अउधू हउमै पिआस न जाई॥***
सबद रते अंम्रित रस पाइआ साचे रहे अघाई

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि मन लज़्ज़त का आशिक है। वर्तमान अवस्था में यह इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों में से रस ढूँढ़ता है। इसके अंदर सांसारिक भोगों की अग्नि प्रचंड है। जब तक इसे ऐंद्रिय भोगों से ऊँची लज़्ज़त नहीं मिलती, तब तक यह कभी भी उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। गुरु साहिब समझाते हैं कि वह लज़्ज़त शब्द में है। जब मन को अंदर से शब्द यानी नाम की लज़्ज़त मिलती है, तो इसकी ऐंद्रिय भोग और संसार की आशा-तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है। फिर यह पूरी तरह निश्चल हो जाता है और आत्मा का प्रभुरूपी सत्य के साथ मिलाप हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गुर का सबद महा रस मीठा॥ ऐसा अंम्रित अंतर डीठा॥
जिन चाखिआ पूरा पद होए॥ नानक ध्रापिओ तन सुख होए॥[177]

नामरूपी मीठा रसदायक अमृत अंदर है। जिन्होंने उस अमृत को पी लिया, उन्हें परम सुख की प्राप्ति हो गई। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

जिस जल निध कारण तुम जग आए सो अंम्रित गुर पाही जीउ॥
छोडहो वेस भेख चतुराई दुबिधा इह फल नाही जीउ॥
मन रे थिर रहो मत कत जाही जीउ॥
बाहर ढूढत बहुत दुख पावह घर अंम्रित घट माही जीउ॥[178]

जिस अमृत की प्राप्ति के लिए जीव संसार में आया है, वह अमृत सतगुरु के पास है। बाहर से अनेक प्रकार के भेषों और अन्य साधनों द्वारा

उस अमृत की खोज करने पर दु:ख और भटकन के अलावा कुछ और प्राप्त नहीं होता। जब गुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर स्थिर कर लेते हैं, तो अंदर से ही उस अमृत की प्राप्ति हो जाती है।

कवन बुध जित असथिर रहीऐ कित भोजन त्रिपतासै॥
नानक दुख सुख सम कर जापै सतगुर ते काल न ग्रासै॥

सिद्ध प्रश्न करते हैं कि वह कौन-सा साधन है, जिसके द्वारा जीव को निश्चल पद प्राप्त हो जाता है और वह कौन सा भोजन है, जिससे मन की हर प्रकार की भूख शांत हो जाती है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जो सतगुरु की शरण में पहुँचकर, उनके उपदेश पर अमल करके दु:ख-सुख की द्वैत से परे की सहज अवस्था में पहुँच जाता है, वह आवागमन के चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाता है और काल की पहुँच से बाहर चला जाता है।

रंग न राता रस नही माता॥ बिन गुर सबदै जल बल ताता॥
बिंद न राखिआ सबद न भाखिआ॥
पवन न साधिआ सच न अराधिआ॥
अकथ कथा ले सम कर रहै॥
तउ नानक आतम राम कउ लहै॥ ६२॥

शब्दार्थ: ताता=जलना; **बिंद**=वीर्य; **अकथ कथा**=शब्द जो अवर्णनीय है; **लहै**=ढूँढ़ लेता है।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: (शब्द के बिना) मन प्रेम के रंग में नहीं रँगता और वह परम आनंद में मग्न नहीं हो सकता। सतगुरु के उपदेश पर अमल किए बिना मन में शांति उत्पन्न नहीं होती। वह हमेशा विषय-वासना की अग्नि में जलता रहता है। जिसने शब्द का अभ्यास नहीं किया, उसने काम अर्थात् विषय-वासना को वश में किया या न किया एक बराबर है। जिसने सत्य अर्थात् शब्द की आराधना नहीं की, उसका अन्य प्रत्येक संयम व्यर्थ है। शब्द के अलावा अन्य साधना का कोई परमार्थिक अर्थ नहीं है। जो साधक शब्दरूपी अकथ कथा का आधार प्राप्त करके

दु:ख-सुख को एक समान समझकर, सदैव संतुलित अवस्था में रहता है, उसका आत्मा के स्वामी, उस सर्वव्यापक परमात्मा से मिलाप हो जाता है।

❖ गुरु साहिब पिछली पउड़ी के भाव को ही दूसरे ढ़ंग से बयान करते हुए कहते हैं कि जब तक शब्द का अमृत प्राप्त नहीं होता, तब तक मन को अंदर से रस नहीं मिलता और हौंमैं की अग्नि शांत नहीं होती। जब उसे अमृत से भरा रस मिल जाता है, तो मन की हर प्रकार की भूख शांत हो जाती है।

योगी संयम पर बल देते हैं और मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम करते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि इन साधनों द्वारा मन अस्थायी रूप से दब जाता है, परंतु पूरी तरह से निर्मल और निश्चल नहीं होता। आप सावधान करते हैं कि जब तक मन को शब्द का रस नहीं मिलता, काम को वश में करने और प्राणायाम का कोई लाभ नहीं होता। इसके विपरीत जब मन को शब्द का रस मिल जाता है, तो सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है और प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

गुर परसादी रंगे राता॥ अंम्रित पीआ साचे माता॥
गुर वीचारी अगन निवारी॥ अपिउ पीओ आतम सुख धारी॥
सच अराधिआ गुरमुख तर तारी॥ नानक बूझै को वीचारी॥६३॥

शब्दार्थ: साचे माता=सत्य में मग्न हो जाता है; **अपिउ**=जिसे पीना मुश्किल है।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: जो साधक, सतगुरु की कृपा से भक्ति के रंग में रँग जाते हैं, वे नाम के अमृत द्वारा प्रभु के प्रेम में मग्न रहते हैं। गुरु के उपदेश द्वारा आशा-तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है। नाम का अमृत पीकर उनकी आत्मा का सच्चे सुख में निवास हो जाता है। वे गुरु के उपदेश पर चलकर प्रभु की आराधना करके भवसागर से पार हो जाते हैं। इस रहस्य को कोई विरला ज्ञानी या विचारक ही बूझने में सफल होता है।

❖ ***गुर परसादी रंगे राता॥ अंम्रित पीआ साचे माता॥***
गुर वीचारी अगन निवारी॥ अपिउ पीओ आतम सुख धारी॥

पिछली दो पउड़ियों के भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि मन के अंदर सुख, शांति और आनंद का निवास सतगुरु की कृपा द्वारा मिले नाम के अमृत से होता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि नाम के अमृत को पीना बहुत कठिन कार्य है, परंतु जो कोई गुरु के उपदेश पर चलता हुआ उस अमृत को प्राप्त करने में सफल हो जाता है, वह प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है और सदा उस आनंद में मग्न रहता है। उसकी आशा-तृष्णा की अग्नि शांत हो जाती है, उसे सच्चे आत्मिक सुख की प्राप्ति हो जाती है और वह भवसागर से पार हो जाता है। आप वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

अपिउ पीअउ अकथ कथ रहीऐ॥
निज घर बैस सहज घर लहीऐ॥
हर रस माते इह सुख कहीऐ॥[179]

जो इस अमृत को पीता है, वह सदा उस अकथ प्रभु के गुणगान में लगा रहता है। उसका ध्यान अंदर निज घर में स्थिर हो जाता है। उसे सहज अवस्था मिल जाती है और वह हरि के मिलाप के सच्चे सुख में मग्न रहता है।

इह मन मैगल कहा बसीअले कहा बसै इह पवना॥
कहा बसै सो सबद अउधू ता कउ चूकै मन का भवना॥
नदर करे ता सतगुर मेले ता निज घर वासा इह मन पाए॥
आपै आप खाए ता निरमल होवै धावत वरज रहाए॥
किउ मूल पछाणै आतम जाणै किउ ससि घर सूर समावै॥
गुरमुख हउमै विचहो खोवै तउ नानक सहज समावै॥६४॥

शब्दार्थ: मैगल=हाथी; **बसीअले**=रहता है, निवास करता है; **पवना**=प्राण; **धावत... रहाए**=चंचल मन को निश्चल करे; **ससि...समावै**=चंद्रमा के घर में सूर्य समा जाए।

सरलार्थ: सिद्ध पूछते हैं: हाथी जैसे मन का और पवन, भाव प्राणों का निवास कहाँ है? हे योगी! उस शब्द का निवास कहाँ है जिस से मन की भटकन दूर होती है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: प्रभु की दया द्वारा सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाए, तो मन का निज घर भाव त्रिकुटी में निवास हो जाता है। जिसकी हौंमैं का नाश हो जाता है उसका चंचल मन निर्मल और निश्चल हो जाता है।

योगी पूछते हैं: अपने मूल और आत्मिक स्वरूप की पहचान कैसे की जाए? चाँद के घर में सूर्य का निवास कैसे हो? गुरु साहिब उत्तर देते हैं: जो साधक सतगुरु के उपदेश द्वारा हौंमैं का नाश कर लेता है, उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है।

इह मन निहचल हिरदै वसीअले गुरमुख मूल पछाण रहै॥
नाभि पवन घर आसण बैसै गुरमुख खोजत तत लहै॥
सो सबद निरंतर निज घर आछै त्रिभवण जोत सो सबद लहै॥
खावै दूख भूख साचे की साचे ही त्रिपतास रहै॥
अनहद बाणी गुरमुख जाणी बिरलो को अरथावै॥
नानक आखै सच सुभाखै सच रपै रंग कबहू न जावै॥६५॥

शब्दार्थ: आछै=पहुँचकर; **अरथावै**=सूझ होती है; **सुभाखै**=उच्चारण करता है।

सरलार्थ: गुरु साहिब समझाते हैं: जब मन अंतर्मुख होकर हृदय में स्थिर हो जाता है, तो यह सतगुरु की कृपा से अपने मूल को पहचानकर अंदर टिक जाता है। जब साधक अंदर नाभि कमल में स्थिर होकर प्रभु की भक्ति में लीन हो जाता है और सतगुरु के उपदेशानुसार अंतर में खोज करता है, उसे सार पदार्थ की प्राप्ति हो जाती है। शब्द सर्वव्यापक है। जो निज घर में पहुँच जाता है, वह उस शब्द से, जो तीन लोकों की ज्योति है, जुड़ जाता है। सच्चे (शब्द या नाम) की भूख दु:ख को खा जाती है और मन सच्चे में ही तृप्त रहता है। अनहद वाणी केवल गुरु द्वारा ही जानी जा सकती है और कोई विरला भाग्यशाली ही इसका रहस्य जान सकता है। ऐसा भाग्यशाली जीव सदैव उस सत्य का जाप करता है तथा

उसकी आराधना में लगा रहता है। वह उस सत्य के रंग में रँग जाता है और (उसके हृदय से) यह रंग फिर कभी नहीं उतरता।

❖ ***इह मन निहचल हिरदै वसीअले गुरमुख मूल पछाण रहै॥***
नाभि पवन घर आसण बैसै गुरमुख खोजत तत लहै॥

वर्तमान अवस्था में मन और आत्मा की गाँठ बँधी हुई है। जब तक आत्मा, मन के पंजे से आज़ाद नहीं होती, न तो इसे अपने निर्मल आत्मिक स्वरूप की पहचान होती है और न ही यह अपने स्रोत प्रभु की पहचान कर सकती है। सतगुरु द्वारा बताए साधन से मन को निश्चल करके अपनी और प्रभु दोनों की पहचान होती है। जब साधक सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को आँखों से ऊपर दसवें घर में एकाग्र और स्थिर करके शब्द के साथ जोड़ लेता है, तो मन अपने निज घर में लीन हो जाता है। इस प्रकार शरीर और मन से निर्लेप हुई आत्मा, प्रभु में समाने योग्य बन जाती है।

सो सबद निरंतर निज घर आछै त्रिभवण जोत सो सबद लहै॥
खावै दूख भूख साचे की साचे ही त्रिपतास रहै॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि ध्यान को निज घर में स्थिर करने से शब्द सर्वव्यापक दिखाई देने लगता है। फिर यह सूझ होती है कि संपूर्ण त्रिलोकी का जीवन शब्द है। शब्द की भूख सब दु:खों को खा जाती है और मन में सच्ची शांति पैदा हो जाती है। गुरु साहिब ने शब्द का, तीन लोकों की ज्योति होने का भाव इस प्रकार भी प्रकट किया है:

गुण गाए राम रसाए रसीअह गुर गिआन अंजन सारहे॥
त्रै लोक दीपक सबद चानण पंच दूत संघारहे॥[180]

मेरे प्यारे! गुरु के ज्ञान का अंजन डाल। इससे तू प्रभु की भक्ति के रंग में रँग जाएगा। संपूर्ण त्रिलोकी में प्रकाश करनेवाले शब्द के साथ तेरा मिलाप हो जाएगा और तुझे पाँच विकारों से छुटकारा मिल जाएगा। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

साचै मेले सबद मिलाए॥ जा तिस भाणा सहज समाए॥
त्रिभवण जोत धरी परमेसर अवर न दूजा भाई हे॥[181]

गुरु साहिब एक तरफ़ यह कह रहे हैं कि प्रभु ने तीन लोकों में अपनी ज्योति रखी है और दूसरी तरफ़ यह कह रहे हैं कि जिस पर प्रभु दया करता है उसे शब्द के साथ मिला देता है। शब्द के साथ मिलना ही प्रभु के साथ मिलना है और तीन लोकों में प्रभु की ज्योति या शब्द की ज्योति होने का अभिप्राय एक ही है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

त्रिभवण मह जोत त्रिभवण मह जाणिआ॥
उलट भई घर घर मह आणिआ॥
अहिनिस भगति करे लिव लाए॥ नानक तिन कै लागै पाए॥[182]

जब मन को संसार और शरीर की तरफ़ से पलटकर अंदर अपने निज घर में स्थिर करते हैं, तब तीन लोकों में प्रभु की ज्योति दिखाई देती है। धन्य है वह साधक, जो उस ज्योति में ध्यान को स्थिर करके दिन-रात प्रभु की भक्ति में लगा रहता है। आप कहते हैं:

अनहद बाणी गुरमुख जाणी बिरलो को अरथावै॥
नानक आखै सच सुभाखै सच रपै रंग कबहू न जावै॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि जिस भाग्यशाली गुरुमुख को गुरु की दया से अनहद वाणी की सूझ हो जाती है, वह सच्चे प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है।

गुरु साहिब ने अनहद वाणी पद अनहद शब्द के लिए प्रयोग किया है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

अनहद बाणी सबद सुणाइआ॥ मनमुख भूले गुरमुख बुझाइआ॥[183]

गुरु गोबिन्द सिंह जी की वाणी है:

अनहद रूप अनाहद बानी। चरन शरन जित वसत भवानी।[184]

आप स्पष्ट करते हैं कि वह प्रभु – माया जिसके चरणों की दासी है – अनहद शब्द या अनहद वाणी का रूप है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

'अनहद बाणी पूंजी॥ संतन हथ राखी कूंजी॥'[185] गुरु साहिब समझाते हैं कि जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार ध्यान को अंदर अनहद वाणी के साथ जोड़ लेता है, उसके हृदय पर प्रभु के प्रेम का गहरा रंग चढ़ जाता है।

जा इह हिरदा देह न होती तउ मन कैठै रहता॥
नाभि कमल असथंभ न होतो ता पवन कवन घर सहता॥
रूप न होतो रेख न काई ता सबद कहा लिव लाई॥
रकत बिंद की मड़ी न होती मित कीमत नही पाई॥
वरन भेख असरूप न जापी किउ कर जापस साचा॥
नानक नाम रते बैरागी इब तब साचो साचा॥ ६६॥

शब्दार्थ: कैठै=कहाँ; **असथंभ**=सहारा; **सहता**=सहारा; **बिंद**=वीर्य; **मड़ी**=देह, शरीर; **मित**=अनुमान, अंदाज़ा; **वरन भेख**=रूप-रंग; **असरूप**=रूप।

सरलार्थ: योगी बहुत सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण प्रश्न पूछते हैं: जब यह शरीर और हृदय नहीं होता तो मन कहाँ रहता है? यदि नाभि कमल का सहारा न हो तो पवन (प्राणों) को कौन-से घर का सहारा मिलता है? जब रचना का रंग-रूप या आकार प्रकट नहीं हुआ था तो शब्द कहाँ लीन था? जब माता के अंडाशय और पिता के वीर्य (बिंद) द्वारा बना यह अमूल्य शरीर नहीं था, तो उस प्रभु का मूल्य नहीं आँका जा सकता था, अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता था। जिस प्रभु के रंग-रूप, रेख-भेष के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, उसका दर्शन कैसे हो सकता है? गुरु साहिब बहुत सूक्ष्म ढंग से समझा रहे हैं कि जो लोग नाम के साथ लिव जोड़कर जगत् से निर्लेप हो जाते हैं, उन्हें यहाँ और वहाँ भाव लोक-परलोक दोनों में वह प्रभु व्याप्त दिखाई देता है।

हिरदा देह न होती अउधू तउ मन सुंन रहै बैरागी॥
नाभि कमल असथंभ न होतो ता निज घर बसतउ पवन अनरागी॥
रूप न रेखिआ जात न होती तउ अकुलीण रहतउ सबद सो सार॥
गउन गगन जब तबहे न होतउ त्रिभवण जोत आपे निरंकार॥

वरन भेख असरूप सो एको एको सबद विडाणी॥
साच बिना सूचा को नाही नानक अकथ कहाणी॥६७॥

शब्दार्थ: **अनरागी**=राग या मोह रहित; **अकुलीण**=कुल रहित; **गउन**=धरती; **विडाणी**=आश्चर्य।

सरलार्थ: गुरु साहिब आगे कहते हैं: हे अवधूत! जब हृदय और शरीर नहीं था, तो निर्लेप अवस्था में मन, का सुन्न में निवास था। जब नाभि कमल का सहारा प्राप्त नहीं था, तो प्राण प्रभु के प्रेम में अपने निज घर में निवास कर रहे थे। जब रूप, रेख और जाति नहीं थी, तो सार शब्द उस प्रभु में समाया हुआ था। जब धरती और आकाश नहीं थे, तो तीनों भवनों की ज्योति उस निराकार प्रभु में समायी हुई थी। जब रंग-रूप, रेख-भेष इत्यादि नहीं थे, तब सबकुछ उस विस्मादपूर्ण शब्द में समाया हुआ था। जब तक कोई उस सच्चे शब्द के साथ नहीं जुड़ता, सच्ची निर्मलता प्राप्त नहीं हो सकती। प्रभु ऐसी अकथ कथा है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

❖ ***हिरदा देह न होती अउधू तउ मन सुंन रहै बैरागी॥***—गुरु साहिब योगियों के प्रश्नों के उत्तर के रूप में कहते हैं: हे अवधू जब हृदय और देह नहीं थी, तो मन अपने निज रूप अथवा सनातन रूप में सुन्न में समाया हुआ था। उस अवस्था में केवल प्रभु ही प्रभु था।

नाभि कमल असथंभ न होतो ता निज घर बसतउ पवन अनरागी॥—जब नाभि कमल का सहारा नहीं था, तो जीवनदायक प्राण प्रेमपूर्वक अपने निज घर भाव सुन्न में समाये हुए थे।

रूप न रेखिआ जात न होती तउ अकुलीण रहतउ सबद सो सार॥—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जब कुछ नहीं था तब वह निराकार प्रभु क़ायम था और उसका अस्तित्व सार शब्द है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥ हर आपे वेखै विगसै आपे॥[186]

प्रभु शब्दरूप है और शब्द प्रभु का रूप है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है: 'सहज गुफा मह आसण बाधिआ॥ जोत सरूप अनाहद वाजिआ॥'[187] प्रभु ज्योति रूप और शब्द रूप है।

गउन गगन जब तबहे न होतउ त्रिभवण जोत आपे निरंकार॥—जब धरती और आकाश नहीं थे तब संपूर्ण त्रिलोकी का जीवन या प्रकाश वह निर्गुण, निराकार क़ायम था। वह आदि-जुगादि सत्य, समय स्थान से परे और ऊपर है। जब कुछ नहीं होता, तब भी वह होता है, जब सबकुछ होता है, तब भी वास्तव में वही होता है। गुरु साहिब की वाणी है:

साचै मेले सबद मिलाए॥ जा तिस भाणा सहज समाए॥
त्रिभवण जोत धरी परमेसर अवर न दूजा भाई हे॥[188]

उस प्रभु ने संपूर्ण त्रिलोकी में अपनी ज्योति रखी हुई है। जो कुछ है, वह एक सच्चा ही है। जब उसकी रज़ा होती है, तो वह स्वयं ही जीव को शब्द के साथ मिलाकर अपने साथ मिलाने की सहज अवस्था का अधिकारी बना देता है।

वरन भेख असरूप सो एको एको सबद विडाणी॥—सभी रंग-रूप और आकार उस एक विस्मादपूर्ण शब्द में समाये हुए हैं और यह सभी उस एक में ही प्रकट हुए हैं। गुरु साहिब ने वाणी के अनेक प्रसंगों में शब्द को प्रभु का रूप कहा है। आपका कथन है:

जेता सबद सुरत धुन तेती जेता रूप काइआ तेरी॥
तूं आपे रसना आपे बसना अवर न दूजा कहउ माई॥[189]

शब्द और सुरत दोनों हरि का रूप हैं और सारा संसार प्रभु की काया के समान है। जो कुछ है, वह प्रभु है, उसके अलावा और कुछ नहीं है। प्रभु भी शब्द रूप है और आत्मा भी शब्द रूप है। शब्द में से आई आत्मा, केवल शब्द द्वारा ही वापस शब्द में समा सकती है।

साच बिना सूचा को नाही नानक अकथ कहाणी॥—जब तक आत्मा शब्दरूपी सत्य में नहीं समाती, यह कभी मन-माया, आशा-तृष्णा, कर्मों और संस्कारों की मैल से निर्मल होकर प्रभु में लीन नहीं हो सकती।

कित कित बिध जग उपजै पुरखा कित कित दुख बिनस जाई॥
हउमै विच जग उपजै पुरखा नाम विसरिऐ दुख पाई॥

गुरमुख होवै सो गिआन तत बीचारै हउमै सबद जलाए॥
तन मन निरमल निरमल बाणी साचै रहै समाए॥
नामे नाम रहै बैरागी साच रखिआ उर धारे॥
नानक बिन नावै जोग कदे न होवै देखहो रिदै बीचारे॥६८॥

शब्दार्थ: उर=हृदय में।

सरलार्थ: अब सिद्ध वे प्रश्न पूछते हैं जो संपूर्ण आध्यात्मिक विचारधारा का अति महत्त्वपूर्ण अंग हैं। हे परम पुरुष! जगत् का सृजन किस विधि से हुआ है और किस तरह से दु:खों में लिप्त होकर इसका नाश हो जाता है? दूसरे शब्दों में जीव किस तरह से जगत् में उत्पन्न होता है और किस कारण दु:ख भोगता हुआ यहाँ से चला जाता है?

गुरु साहिब प्रेमपूर्वक समझाते हैं: हे महापुरुषो! जीव हौंमैं के कारण बार-बार जगत् में जन्म लेता है और नाम को बिसारने के कारण (प्रभु के वियोग और जन्म-मरण का) दु:ख भोगता है। जो गुरु के उपदेश पर चलता है, वह गुरु के शब्द द्वारा हौंमैं का नाश करके परम तत्त्व का ज्ञान (अनुभव) प्राप्त करता है। इस प्रकार उसका तन-मन निर्मल हो जाता है, उसका निर्मल वाणी के साथ मिलाप हो जाता है और वह सदा के लिए प्रभुरूपी सत्य में समा जाता है। जो गुरुमुख नाम के अभ्यास द्वारा नाम में समा जाता है, वह संसार और शरीर की तरफ़ से निर्लेप हो जाता है। उसके अंदर प्रभु का निवास हो जाता है। तुम हृदय में गहरा विचार करके देख लो कि नाम के बिना कभी भी प्रभु के साथ मिलाप नहीं हो सकता।

❖ ***हउमै विच जग उपजै पुरखा नाम विसरिऐ दुख पाई॥***
गुरमुख होवै सो गिआन तत बीचारै हउमै सबद जलाए॥

गुरु साहिब योगी के प्रश्न का विस्तारपूर्वक उत्तर देते हैं जो गोष्ठी के अंत तक चलता है। वास्तव में संपूर्ण गोष्ठी का मुख्य उद्देश्य सिद्धों को या सच्चे परमार्थी को यह बात समझाना है कि जीव आवागमन के दु:खदायी चक्कर में क्यों फँसा रहता है और वह कौन-सी युक्ति है, जिस के द्वारा चिरकाल से प्रभु से बिछुड़ा हुआ जीव, पुन: प्रभु से मिलाप कर सकता है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि आपाभाव, मैं-मेरी के भाव, अज्ञानता या द्वैत के भाव से किए गए कर्मों के कारण जीव बार-बार संसार में जन्म लेता और मरता है तथा दु:ख भोगता है। इस दु:ख का मुख्य कारण यह है कि अज्ञानी जीव ने नाम को बिसारा हुआ है। नाम प्रभु का रूप है। जब जीव सतगुरु के उपदेशानुसार अपनी सुरत शब्द में अभेद कर देता है, तो यह द्वैत में से निकलकर पूर्ण अद्वैत में समा जाता है। जब तक जीव प्रभु से अलग है तब तक हौंमैं का होना स्वाभाविक है। जब वह प्रभु में अभेद हो जाता है, तो हौंमैं स्वत: ही नष्ट हो जाती है। गुरु साहिब की वाणी है:

हउमै बिख पाए जगत उपाइआ सबद वसै बिख जाए॥
जरा जोह न सकई सच रहै लिव लाए॥
जीवन मुकत सो आखीऐ जिस विचहो हउमै जाए॥[190]

जीव जगत् में आता है तो हौंमैं का ज़हर साथ लेकर आता है। जब वह शब्द में लीन हो जाता है, तो हौंमैं का रोग नष्ट हो जाता है और जीते-जी मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

तन मन निरमल निरमल बाणी साचै रहै समाए॥—जो गुरुमुख शब्द अर्थात् निर्मल वाणी द्वारा हौंमैं का नाश कर लेता है, उसकी आत्मा निर्मल होकर, प्रभु में समा जाती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

निरमल सबद निरमल है बाणी॥ निरमल जोत सभ माहे समाणी॥
निरमल बाणी हर सालाही जप हर निरमल मैल गवावणिआ॥[191]

वह वाणी निर्मल है। उसका निर्मल प्रकाश सब में समाया हुआ है। जो साधक ध्यान द्वारा उस निर्मल वाणी का अभ्यास करते हैं, उनकी सब मैल दूर हो जाती है और वे उस शब्द, वाणी या हरि की तरह निर्मल हो जाते हैं। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

किरपा कर कै आपणी गुर सबद मिलाइआ॥
गुर की बाणी निरमली हर रस पीआइआ॥[192]

प्रभु की कृपा से लिव निर्मल वाणी के साथ जुड़ जाती है तो अंदर से अमृत की प्राप्ति हो जाती है।

नामे नाम रहै बैरागी साच रखिआ उर धारे॥
नानक बिन नावै जोग कदे न होवै देखहो रिदै बीचारे॥

सच्चे वैराग्य का आधार भी नाम है और सच्चे योग की प्राप्ति भी केवल नाम द्वारा ही हो सकती है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जब तक मन को अंदर से शब्द (नाम) का अमृत नहीं मिलता, तब तक यह कभी भी संसार और ऐंद्रिय भोगों की ओर से उपराम नहीं हो सकता। कबीर साहिब बिलावल राग के एक शब्द में कहते हैं:

ग्रिह तज बन खंड जाईऐ चुन खाईऐ कंदा॥
अजहु बिकार न छोडई पापी मन मंदा॥
.....
बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई॥
अनिक जतन कर राखीऐ फिर फिर लपटाई॥[193]

हम शरीर द्वारा जंगलों में जा सकते हैं, परंतु विषयों का संबंध मन से है और मन वहाँ भी साथ ही जाता है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

नाम मिलै मन त्रिपतीऐ बिन नामै ध्रिग जीवास॥
कोई गुरमुख सजण जे मिलै मै दसे प्रभ गुणतास॥[194]

आप कहते हैं कि नाम का अमृत पीने से मन की विषय-विकारों की प्यास सदा के लिए शांत हो जाती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है: 'नाम रसाइण मन त्रिपताइण गुरमुख अंम्रित पीवां जीउ॥'[195] गुरु अमरदास जी मारू राग के एक शब्द में कहते हैं:

गुरमुख नाम मिलै वडिआई॥ मनमुख निंदक पत गवाई॥
नाम रते परम हंस बैरागी निज घर ताड़ी लाई हे॥
.....
इक सिध साधिक बहुत वीचारी॥ इक अहिनिस नाम रते निरंकारी॥
जिस नो आप मिलाए सो बूझै भगति भाए भउ जाई हे॥[196]

आप समझाते हैं कि सच्चे वैरागी या त्यागी वही हैं, जिन्होंने समाधि की अवस्था में अपनी लिव अंदर नाम के साथ जोड़ी हुई है। उनका मन शरीर और संसार से निर्लेप होकर निज घर में स्थिर हो जाता है। उन्हें परम पद प्राप्त हो जाता है।

गुरमुख साच सबद बीचारै कोए॥ गुरमुख सच बाणी परगट होए॥
गुरमुख मन भीजै विरला बूझै कोए॥ गुरमुख निज घर वासा होए॥
गुरमुख जोगी जुगत पछाणै॥ गुरमुख नानक एको जाणै॥ ६९॥

सरलार्थः गुरु साहिब कहते हैं: कोई विरला जीव, सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द का अभ्यास करता है। सतगुरु की दया से ऐसे जीव के अंदर नामरूपी गुप्त वाणी प्रकट हो जाती है। सतगुरु की कृपा से ऐसे गुरुभक्त का मन प्रभु के प्रेम यानी नाम के रंग में रँग जाता है। प्रभुरूपी सत्य की सूझ किसी विरले जीव को होती है। गुरु के बताए मार्ग पर चलनेवाले साधक को निज घर में निवास प्राप्त हो जाता है। सतगुरु से प्रभु के साथ मिलाप की युक्ति प्राप्त करके ही कोई सच्चा योगी बनता है और सतगुरु की सहायता द्वारा ही उस प्रभु की पहचान का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

❖ 68वीं और 69वीं दोनों पउड़ियों में सच्चे वैरागी या योगी की यह निशानी बताई गई है कि वह सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द से जुड़कर निज घर पहुँच जाता है। इस तरह उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। यही सच्चा योग है।

बिन सतगुर सेवे जोग न होई॥ बिन सतगुर भेटे मुकत न कोई॥
बिन सतगुर भेटे नाम पाइआ न जाए॥ बिन सतगुर भेटे महा दुख पाए॥
बिन सतगुर भेटे महा गरब गुबार॥ नानक बिन गुर मुआ जनम हार॥ ७०॥

शब्दार्थः गरब गुबार=अहंकार का अंधकार।

सरलार्थः पिछली पउड़ी में योग की प्राप्ति को नाम के साथ जोड़ा था। इस पउड़ी में नाम की प्राप्ति को गुरु से जोड़ते हुए कहते हैं: सतगुरु की सेवा के बिना योग असंभव है। जब तक सतगुरु की शरण प्राप्त नहीं होती, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सतगुरु के बिना नाम प्राप्त नहीं हो सकता।

सतगुरु के बिना जीव सदा दु:खों की चक्की में पिसता रहता है। सतगुरु से मिलाप के बिना जीव अहंकार और अज्ञानता के घने अंधकार में खोया रहता है और मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवाकर मर जाता है।

❖ ***बिन सतगुर सेवे जोग न होई॥ बिन सतगुर भेटे मुकत न कोई॥***— पिछली पउड़ियों के भाव को दूसरे ढंग से बयान करते हुए कहते हैं कि सतगुरु की सेवा के बिना योग में सिद्धि और मुक्ति प्राप्त कर पाना असंभव है। सतगुरु की सेवा का अर्थ है सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द यानी नाम का अभ्यास करना। गुरु साहिब गउड़ी राग के एक शब्द में सतगुरु की सेवा के बारे में समझाते हैं:

1. सतगुर सेवे सो जोगी होए॥
   भै रच रहै सो निरभउ होए॥ जैसा सेवै तैसो होई॥

2. गुर की सेवा सबद वीचार॥ हउमै मारे करणी सार॥
   जप तप संजम पाठ पुराण॥ कहो नानक अपरंपर मान॥[197]

जो सतगुरु की सेवा करता है, वही सच्चा योगी है। सतगुरु की सेवा द्वारा वह सतगुरु का रूप हो जाता है। सतगुरु की सेवा क्या है? शब्द या नाम का अभ्यास ही सतगुरु की सच्ची सेवा है। इस सेवा में जप, तप, संयम, ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ-विचार आदि हर तरह की करनी का सार समाया हुआ है।

बिन सतगुर भेटे नाम पाइआ न जाए॥ बिन सतगुर भेटे महा दुख पाए॥

गुरु साहिब एक ही भाव को अनेक प्रकार से दृढ़ कराने का प्रयत्न करते हैं। आपकी संपूर्ण विचारधारा इस आधार पर खड़ी है कि सतगुरु के बिना नाम नहीं मिलता, नाम के बिना प्रभु से मिलाप नहीं होता और आवागमन के दु:खों से छुटकारा नहीं मिलता।

बिन सतगुर भेटे महा गरब गुबार॥
नानक बिन गुर मुआ जनम हार॥

गुरु साहिब चेतावनी देते हैं कि सतगुरु की शरण के बिना अहंकार का अंधकार दूर नहीं होता और जीव का मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है। मनुष्य जन्म का बहुमूल्य वरदान प्रभु के साथ मिलाप करके आवागमन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बख़्शा जाता है। मनमुख को इस सत्य की सूझ नहीं होती और उसका जन्म कौड़ियों के मूल्य चला जाता है। गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

भई परापत मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥[198]

कबीर साहिब उपदेश देते हैं:

गुर सेवा ते भगति कमाई॥ तब इह मानस देही पाई॥
इस देही कउ सिमरह देव॥ सो देही भज हर की सेव॥
भजहो गोबिंद भूल मत जाहो॥ मानस जनम का एही लाहो॥[199]

आप सावधान करते हैं कि मनुष्य जन्म, सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति द्वारा उनके साथ मिलाप के लिए मिला सुनहरी अवसर है। मनुष्य शरीर के लिए तो देवता भी तरसते हैं, क्योंकि प्रभु की भक्ति करने का सौभाग्य केवल इस शरीर को प्राप्त है। मनुष्य जन्म का वास्तविक लाभ ही यह है कि इसमें बैठकर प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप कर लिया जाए। गुरु अर्जुन देव जी चेतावनी देते हैं:

लख चउरासीह जोन सबाई॥ माणस कउ प्रभ दीई वडिआई॥
इस पउड़ी ते जो नर चूकै सो आए जाए दुख पाइदा॥[200]

गुरमुख मन जीता हउमै मार॥ गुरमुख साच रखिआ उर धार॥
गुरमुख जग जीता जमकाल मार बिदार॥
गुरमुख दरगह न आवै हार॥
गुरमुख मेल मिलाए सो जाणै॥
नानक गुरमुख सबद पछाणै॥७१॥

शब्दार्थ: बिदार=नष्ट कर देता है।

सरलार्थ: पिछली पउड़ी के भाव को आगे बढ़ाते हुए फ़रमाते हैं: गुरु के उपदेश पर चलनेवाला हौंमैं का नाश कर लेता है और मन पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह हृदय में परमात्मारूपी सत्य को धारण कर लेता है। ऐसे साधक को संसार में विजय प्राप्त हो जाती है और वह यम को मारकर उसका नाश कर देता है। उसे मालिक की दरगाह में हार का सामना नहीं करना पड़ता। गुरु जिस जीव का प्रभु के साथ मिलाप करवा देता है, उसे ही सत्य की सूझ होती है। सतगुरु यह सूझ शब्द द्वारा करवाता है।

❖ ***गुरमुख मन जीता हउमै मार॥ गुरमुख साच रखिआ उर धार॥***
गुरमुख जग जीता जमकाल मार बिदार॥

साधक अपने गुरु की शिक्षा पर चलकर मन को वश में कर लेता है और हौंमैं के रोग से मुक्त हो जाता है। उसे सूझ हो जाती है कि रचना में जो कुछ हो रहा है, उस रचयिता की रज़ा से हो रहा है। वह अपने मन को प्रभु की रज़ा के अधीन कर देता है। उसके प्रत्येक कर्म का आधार प्रभु की रज़ा होती है, मन की इच्छा नहीं।

साधक मन को सांसारिक इच्छाओं से मुक्त करके अपना ध्यान सदैव नाम, शब्द या प्रभु में रखता है। काल की, कर्म और फल की सीमा त्रिलोकी तक है। वह शब्द के सहारे त्रिलोकी को पार करके सुरत को प्रभु में अभेद कर लेता है। वह मृत्यु, परिवर्तन और आवागमन की सीमा को पार कर लेता है। इस प्रकार काल उसके लिए निरर्थक हो जाता है। गुरु साहिब 'जप जी' की 28वीं पउड़ी में कहते हैं:

खिंथा काल कुआरी काइआ जुगत डंडा परतीत॥
आई पंथी सगल जमाती मन जीतै जग जीत॥[201]

सच्चा योगी वह है, जो काल को गोदड़ी या आसन बना लेता है। दूसरे शब्दों में वह काल और आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

जो योगी मन को जीत लेता है, वह सारे संसार पर विजय प्राप्त करके उस जगदीश से मिल जाता है। ऐसा योगी हर प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठ जाता है। वह सब जीवों को समान रूप से प्रेम करता है। इस प्रकार वह सच्चा 'आई पंथी' भाव श्रेष्ठ योगी बन जाता है।

गुरमुख दरगह न आवै हार॥
गुरमुख मेल मिलाए सो जाणै॥ नानक गुरमुख सबद पछाणै॥

जो साधक शब्द को हृदय में बसा लेता है, उसे प्रभु के दरबार में पछताना नहीं पड़ता। वह जीवन की बाज़ी जीतकर और निर्मल होकर उस सच्चे दरबार में पहुँच जाता है। केवल उसे ही प्रभु के साथ मिलाप करके उसमें समा जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है, जो सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द का अभ्यास करता है।

गुरु साहिब बार-बार गुरुमुख (सतगुरु) की महिमा कर रहे हैं। 'सिध गोस्ट' का मुख्य उद्देश्य गुरुमत के स्वरूप पर प्रकाश डालना है। गुरुमत का आधार गुरु और उसकी मति है। इसलिए गुरु, सतगुरु या गुरुमुख 'सिध गोस्ट' का प्रधान विषय है। गुरु साहिब ने गोष्ठी की पहली पउड़ी में कहा था: 'नानक संत मिलै सच पाईऐ सहज भाए जस लेउ॥' इसके पश्चात् 40 से अधिक पउड़ियों में अनेक बार गुरु, सतगुरु, गुरुमुख की महिमा की गई है। गुरु की महिमा के वर्णन को 71वीं पउड़ी में पूर्णता प्राप्त हो जाती है। इस पउड़ी में समझाते हैं कि मन भी सतगुरु की सहायता से वश में आता है और हौंमैं का नाश भी सतगुरु की दया से होता है। जगत् पर विजय प्राप्त करके यमदूतों से छुटकारा पाने का सौभाग्य भी सतगुरु की शरण द्वारा प्राप्त होता है, शब्द की पहचान भी सतगुरु द्वारा होती है और प्रभुरूपी सत्य के साथ मिलाप भी सतगुरु की बख़्शिश से होता है।

गुरु साहिब ने 'सिध गोस्ट' के अनेक प्रसंगों में बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि शिष्य को जो भी प्राप्ति होती है, सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द (नाम) के अभ्यास द्वारा होती है। सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द का अभ्यास करना संपूर्ण परमार्थ की नींव है। इसे चाहे संतमत कह लिया जाए,

गुरुमत कह लिया जाए, सुरत-शब्द योग या योगमत कह लिया जाए, एक ही बात है।

सबदै का निबेड़ा सुण तू अउधू बिन नावै जोग न होई॥
नामे राते अनदिन माते नामै ते सुख होई॥
नामै ही ते सभ परगट होवै नामे सोझी पाई॥
बिन नावै भेख करह बहुतेरे सचै आप खुआई॥
सतगुर ते नाम पाईऐ अउधू जोग जुगत ता होई॥
कर बीचार मन देखहो नानक बिन नावै मुकत न होई॥७२॥

शब्दार्थः अनदिन=प्रतिदिन; **माते**=मग्न; **खुआई**=कुमार्ग पर डाला हुआ।

सरलार्थः गुरु साहिब कहते हैं: हे अवधूत! तुम शब्द के विषय में परस्पर हुई संपूर्ण चर्चा का निष्कर्ष सुन लो। इस संपूर्ण गोष्ठी का सार यह है कि नाम के बिना योग असंभव है। जो साधक दिन-रात नाम के रंग में रँगे रहते हैं, उन्हें परम सुख की प्राप्ति होती है। नाम द्वारा ही सभी (गुप्त रूहानी) भेद प्रकट होते हैं और नाम द्वारा ही हर प्रकार का आंतरिक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होता है। जो लोग अन्य अनेक प्रकार के भेषों में लिप्त रहते हैं, समझ लो प्रभु ने स्वयं ही उन्हें कुमार्ग पर डाला हुआ है। हे अवधूत! नाम सतगुरु द्वारा प्राप्त होता है और नाम का अभ्यास करना ही योग प्राप्ति की सच्ची युक्ति है। हे सिद्धो! तुम मन में अच्छी तरह से विचार करके देख लो कि नाम के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

❖ पिछली दो पउड़ियों में सतगुरु की महिमा की गई है और योग की प्राप्ति को सतगुरु की शरण पर आधारित बताया गया है। इस पउड़ी में उस साधन का उल्लेख करते हैं जिसके द्वारा गुरु अपनी शरण में आए जीवों का उद्धार करता है। गुरु साहिब गोष्ठी के सार को प्रकट करते हैं:

1. संपूर्ण गोष्ठी का सार यह है कि नाम के बिना योग अर्थात् प्रभु का मिलाप असंभव है।
2. जो लोग सदा नाम के रंग में रँगे रहते हैं, वे परम आनंद के अधिकारी बन जाते हैं।

3. सभी आध्यात्मिक रहस्य नाम की आराधना द्वारा प्रकट होते हैं।
4. जो लोग नाम के अलावा अन्य भेषों या साधनों में ध्यान लगाए रहते हैं, वे प्रभुरूपी सत्य से दूर हो जाते हैं। वे सदैव अज्ञानता के अंधकार में भटकते रहते हैं।
5. सतगुरु से नाम की युक्ति प्राप्त करके ही योग की युक्ति का ज्ञान होता है।
6. मन में अच्छी तरह विचार करके देखो कि नाम के बिना मुक्ति प्राप्त कर पाना असंभव है।

गुरु साहिब ने 'सिध गोस्ट' की अनेक पउड़ियों में शब्द और नाम को समान अर्थों में प्रयोग किया है और इन पदों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। आपने शब्द को ही अमृत कहा है और उसे ही गुप्ती वाणी, अघड़ वाणी और निर्मल वाणी भी कहा है। गुरु साहिब की संपूर्ण विचारधारा का सार संदेश यह है कि योग, मुक्ति, निर्वाण, भवसागर से पार उतरने अर्थात् प्रभु के मिलाप का साधन शब्द है। चाहे कोई गृहस्थी हो या त्यागी, वह केवल सतगुरु के उपदेशानुसार शब्द की आराधना द्वारा ही मन और जगत् पर विजय प्राप्त करके, आशा-तृष्णा, कर्मों के संस्कारों, हौंमैं और अज्ञानता का नाश करके प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है। आदि-जुगादि से प्रभु प्राप्ति का एकमात्र अटल साधन यही है। अन्य किसी साधन के बारे में विचार करने के लिए कोई स्थान ही नहीं है। गुरु साहिब ने अपनी संपूर्ण विचारधारा का ख़ुलासा कर दिया है कि सतगुरु के बिना नाम नहीं और नाम के बिना मुक्ति नहीं।

गुरु गोबिन्द सिंह जी की वाणी है:

आद अनाद अगाध कथा ध्रुअ से प्रहिलाद अजामल तारे।
नाम उचार तरी गनिका सोई नाम अधार बिचार हमारे॥[202]

आप कहते हैं: वह अगम-अगाध नाम जो आदि-अंत से परे है, उस नाम के अभ्यास से ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल, गणिका आदि का भी उद्धार हो गया। हमने भी उस नाम के अभ्यास को ही अपने जीवन का आधार बनाया हुआ है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सचै सबद सची पत होई॥ बिन नावै मुकत न पावै कोई॥
बिन सतगुर को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बणाई हे॥[203]

प्रभु ने सृष्टि के आरंभ से स्वयं यह नियम (विधान) सृजित किया है कि सतगुरु के बिना शब्द या नाम की सूझ नहीं हो सकती और शब्द के बिना आवागमन से मुक्ति और प्रभु के साथ मिलाप की बड़ाई प्राप्त नहीं हो सकती।

इस चर्चा का अंत गुरु नानक साहिब की वाणी के निम्नलिखित दो शब्दों से करते हैं, जिनमें आप द्वारा 'सिध गोस्ट' में प्रकट की गई पूर्ण विचारधारा का सार समाया हुआ है:

अधिआतम करम करे ता साचा॥ मुकत भेद किआ जाणै काचा॥
ऐसा जोगी जुगत बीचारै॥ पंच मार साच उर धारै॥
जिस कै अंतर साच वसावै॥ जोग जुगत की कीमत पावै॥
रवि ससि एको ग्रिह उदिआनै॥ करणी कीरत करम समानै॥
एक सबद इक भिखिआ मागै॥ गिआन धिआन जुगत सच जागै॥
भै रच रहै न बाहर जाए॥ कीमत कउण रहै लिव लाए॥
आपे मेले भरम चुकाए॥ गुर परसाद परम पद पाए॥
गुर की सेवा सबद वीचार॥ हउमै मारे करणी सार॥
जप तप संजम पाठ पुराण॥ कहो नानक अपरंपर मान॥[204]

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि सच्चा योगी ऐसे कर्म करता है, जो आत्मा का उद्धार करने में सहायक सिद्ध हों। दंभी योगी मुक्ति के रहस्य को कैसे जान सकता है? सच्चा योगी वह युक्ति अपनाता है, जिससे वह पाँच विकारों का नाश करके प्रभु को हृदय में धारण कर लेता है। जिसके अंदर प्रभु समा जाता है, उसे योग की युक्ति की सूझ हो जाती है। जब वह इड़ा और पिंगला के मिलाप के स्थान पर पहुँच जाता है, तो उसके लिए प्रभु की महिमा यानी भक्ति ही हर प्रकार की करनी बन जाती है। वह प्रभु से केवल

उसके शब्द या नाम की भिक्षा माँगता है। उसे सच्चे ज्ञान और सच्चे ध्यान की युक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे वह सत्य के प्रति जाग्रत हो जाता है, सचेत हो जाता है। वह सदैव हरि के भय में रहता है। जो सदैव हरि के साथ लिव जोड़कर रखता है, उसकी बड़ाई कौन बयान कर सकता है? वह प्रभु स्वयं ही हर प्रकार के भ्रमों का नाश करके जीव को सतगुरु के साथ मिला देता है और सतगुरु की कृपा से उसे परम पद की प्राप्ति हो जाती है। गुरु की सेवा का अर्थ उस द्वारा बख़्शे शब्द का अभ्यास है। शब्द के अभ्यास से हौंमैं का नाश कर लेना परमार्थी की करनी का सार है। हर प्रकार के जप, तप, इंद्रियों को वश करने की क्रिया और धर्म ग्रंथों के पाठ-विचार का फल प्रभु के प्रेम में समाया हुआ है।

सुण माछिंद्रा नानक बोलै॥ वसगत पंच करे नह डोलै॥
ऐसी जुगत जोग कउ पाले॥ आप तरै सगले कुल तारे॥
सो अउधूत ऐसी मत पावै॥ अहिनिस सुंन समाध समावै॥
भिखिआ भाए भगति भै चलै॥ होवै सो त्रिपत संतोख अमुलै॥
धिआन रूप होए आसण पावै॥ सच नाम ताड़ी चित लावै॥
नानक बोलै अंम्रित बाणी॥ सुण माछिंद्रा अउधू नीसाणी॥
आसा माहे निरास वलाए निहचउ नानक करते पाए॥
प्रणवत नानक अगम सुणाए॥ गुर चेले की संध मिलाए॥
दीखिआ दारू भोजन खाए॥ छिअ दरसन की सोझी पाए॥[205]

गुरु नानक साहिब कहते हैं: हे मछिंद्रनाथ! मेरी बात ध्यान से सुन। योगी योग की ऐसी युक्ति का पालन करता है, जिससे वह पाँच विकारों पर विजय प्राप्त करके मन को निश्चल कर लेता है, वह स्वयं भी पार उतर जाता है और उसकी कुलों का भी उद्धार हो जाता है।

सच्चा अवधूत अर्थात् विरक्त साधु वह है, जो दिन-रात सुन्न समाधि की अवस्था में मग्न रहता है। उसकी भिक्षा प्रभु का भक्ति-भाव और भय है अर्थात् वह प्रभु का प्रेम और भय का भोजन माँगता है। वह अमूल्य संतोष के साथ सदा के लिए तृप्त हो जाता है। वह हरि के ध्यान द्वारा हरि का

रूप ही हो जाता है। वह समाधि की अवस्था में सदैव नाम के साथ लिव लगाये रखता है। नानक अमृत भरी वाणी बोल रहा है, हे मछिंद्र! ध्यान से सुनो कि सच्चे अवधूत की यह निशानी है कि वह आशा में निराश रहता है, संसार में रहता हुआ, उसकी आशा-तृष्णा से ऊपर उठ जाता है। ऐसे योगी का प्रभु के साथ अवश्य मिलाप होता है।

गुरु साहिब कहते हैं कि मैं यह गहरा रहस्य प्रकट कर रहा हूँ कि जो योगी सुरतरूपी शिष्य का, शब्दगुरु के साथ मिलाप कर लेता है और गुरु के उपदेश को भोजन और औषधि बना लेता है, उसे छः दर्शनों में प्रचारित किए जा रहे ब्रह्मज्ञान की सूझ हो जाती है।

तेरी गत मित तूहै जाणह किआ को आख वखाणै॥
तू आपे गुपता आपे परगट आपे सभ रंग माणै॥
साधिक सिध गुरू बहु चेले खोजत फिरह फुरमाणै॥
मागह नाम पाए इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरबाणै॥
अबिनासी प्रभ खेल रचाइआ गुरमुख सोझी होई॥
नानक सभ जुग आपे वरतै दूजा अवर न कोई॥७३॥

शब्दार्थः गत मित=लीला; **फुरमाणै**=हुक्म के अनुसार।

सरलार्थः गुरु साहिब इस गोष्ठी का समापन प्रभु के गुणगान से करते हैं। आप प्रेम और नम्रता के भाव से कहते हैं: हे प्रभु! अपनी लीला तू स्वयं ही जानता है। कोई दूसरा तेरी महिमा का बखान नहीं कर सकता। तू स्वयं ही गुप्त है, स्वयं ही प्रकट है और स्वयं ही सब का आनंद ले रहा है। अनेक प्रकार की साधना करनेवाले अनेक साधक, सिद्ध पुरुष, अनेक शिष्य और उनके गुरु, तेरी रज़ा के अनुसार तुझे ढूँढ़ते फिर रहे हैं। हे प्रभु! वे आपसे आपके नाम की भिक्षा माँगते हैं। हे ठाकुर! आप दया करके अपने नाम की दात बख़्शो, ताकि आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो जाए।

गुरु साहिब कहते हैं: यह रचना उस अविनाशी कर्ता का खेल है। वह प्रभु प्रत्येक युग में क़ायम रहता है। जो कुछ है, वह एक प्रभु है,

उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं। प्रभु और उसके खेल की समझ पूरे सतगुरु द्वारा प्राप्त होती है।

❖ ***तेरी गत मित तूहै जाणह किआ को आख वखाणै॥***
तू आपे गुपता आपे परगट आपे सभ रंग माणै॥

गुरु साहिब ने संपूर्ण गोष्ठी में प्रभु को सत्य कहकर सराहा है। सत्य वह होता है, जो अपना आधार आप हो; जो सदा एक रंग, एक रस और एक रूप रहता है; जो परिवर्तन रहित और अविनाशी होता है। ऐसा सत्य एकमात्र वह प्रभु है। सतगुरु और नाम को भी सत्य कहा गया है, क्योंकि इनके रूप में भी वह निराकार, निर्लेप प्रभु प्रत्यक्ष मुक्तिदाता के रूप में कार्यशील होता है। इस पउड़ी में उस आदि-जुगादि, अमर-अविनाशी, निराकार, अलख और अगम प्रभु को सर्वशक्तिमान्, कर्ता, सर्वज्ञाता, दाता और बख़्शिंद दयालु कहते हुए, उसके समक्ष, उसके नाम की दात के लिए विनती करते हैं, ताकि उस सुखदाता के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाए।

गुरु साहिब कहते हैं: हे कर्ता पुरुष! अपनी लीला, अपने कार्य और अपनी कार्यविधि को केवल तू ही जानता है। कोई दूसरा उसका वर्णन नहीं कर सकता। तू स्वयं ही गुप्त है, स्वयं ही प्रकट है। जहाँ तू गुप्त है, अपनी रज़ा अनुसार है और जहाँ प्रकट है अपनी रज़ा से है। तू रचना के प्रत्येक आकार में समाया हुआ है, रचना के प्रत्येक अंग में तू रमा हुआ है। कर्ता भी तू है, भुगतनेवाला भी तू है। अनंत रंगों और रूपों वाली सृष्टि का सृजनहार भी तू है और सब रंग-रूपों का आनंद लेनेवाला भी तू है। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

आपे रसीआ आप रस आपे रावणहार॥
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतार॥
रंग रता मेरा साहिब रव रहिआ भरपूर॥
आपे माछी मछुली आपे पाणी जाल॥
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदर लाल॥
आपे बहु बिध रंगुला सखीए मेरा लाल॥

नित रवै सोहागणी देख हमारा हाल॥
प्रणवै नानक बेनती तू सरवर तू हंस॥
कउल तू है कवीआ तू है आपे वेख विगस॥[206]

आप कहते हैं कि जिसमें रस है वह भी, रस भी और रस का आनंद लेनेवाला भी वह स्वयं है। स्त्री भी वही है, सेज भी वही है और पति भी वही है। वह रंगों से भरपूर 'रंग रता' साहिब प्रत्येक स्थान पर मौजूद है। मछली पकड़नेवाला भी वही है, मछली भी वही है, पानी भी वही है और जाल भी वही है तथा जाल के साथ पिरोया हुआ मनका भी वही है। वह एक प्रियतम ही अनेक रंगों में प्रकट हो रहा है। अपने प्रेम की दात बख़्शकर सुहागिनों को सुखी करनेवाला भी वही है और अभागिनों को वियोग के दु:ख में तड़पानेवाला भी वही है। गुरु साहिब नम्रतापूर्वक कहते हैं: तू ही समुद्र है, तू ही हंस है, दिन में खिलनेवाला कमल भी तू ही है, रात में खिलनेवाली कली भी तू है और इन्हें देखकर प्रसन्न होनेवाला भी तू स्वयं ही है। जो कुछ है, तू ही तू है।

साधिक सिध गुरू बहु चेले खोजत फिरह फुरमाणै॥
मागह नाम पाए इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरबाणै॥

हे करतार! अनेक सिद्ध, साधक, गुरु और शिष्य तेरी खोज में लगे हुए हैं। वे तेरे हुक्म में ही विचरण कर रहे हैं। वे तुझ से नाम की भिक्षा माँगते हैं और तेरे दर्शनों पर बलिहारी जाते हैं भाव हम तेरे दर्शनों के अभिलाषी हैं।

गुरु साहिब प्रभु से उसके नाम की भिक्षा माँगते हैं, क्योंकि केवल नाम द्वारा ही प्रभु से मिलाप हो सकता है और उसके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सदा हर रस पाए जा हर भाए रसना सबद सुहाए॥
नाम धिआए सदा सुख पाए नाम रहै लिव लाए॥
नामे उपजै नामे बिनसै नामे सच समाए॥
नानक नाम गुरमती पाईऐ आपे लए लवाए॥[207]

गुरु साहिब समझाते हैं कि सृष्टि का सृजन और इसका नाश करनेवाली शक्ति नाम है और प्रभु के साथ मिलाप करानेवाली शक्ति भी नाम है। जब प्रभु की दया होती है तो वह जीव को गुरु द्वारा नाम के साथ जोड़ देता है। नाम के निरंतर सुमिरन से जीव का प्रभु से मिलाप हो जाता है और उसे सच्चे सुख की प्राप्ति हो जाती है।

अबिनासी प्रभ खेल रचाइआ गुरमुख सोझी होई॥
नानक सभ जुग आपे वरतै दूजा अवर न कोई॥

गुरु साहिब अपने भाव को पूर्ण करते हुए कहते हैं: यह सृष्टि प्रभु का खेल, लीला या नाटक है। इस नाटक और इसके कर्ता की सूझ गुरुमुखों द्वारा प्राप्त होती है। हर युग में, हर समय में वह एक कर्ता ही व्याप्त रहा है, दूसरा कोई न हुआ है, न हो ही सकता है। इसमें जो कुछ हो रहा है, एक सर्वशक्तिमान् कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है। गुरु साहिब 'जप जी' की दूसरी पउड़ी में कहते हैं:

हुकमी होवन आकार हुकम न कहिआ जाई॥
हुकमी होवन जीअ हुकम मिलै वडिआई॥
हुकमी उतम नीच हुकम लिख दुख सुख पाईअह॥
इकना हुकमी बखसीस इक हुकमी सदा भवाईअह॥
हुकमै अंदर सभ को बाहर हुकम न कोए॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोए॥[208]

गुरु साहिब ने रचना को प्रभु के हुक्म (रज़ा) का खेल कहा है। इसमें जो कुछ हो रहा है, उस कर्ता के हुक्म (रज़ा) के अनुसार हो रहा है। कोई पात्र अपनी इच्छा के अनुसार नाटक का अंग नहीं बन सकता और न ही अपनी इच्छा से मुक्त हो सकता है। जो कुछ है, उस नाटककार का खेल है। जो रचनारूपी नाटक का अंग हैं, प्रभु की रज़ा के कारण हैं। जिन्हें वह रचना से मुक्त करके अपने साथ मिलाना चाहता है, उन्हें गुरुमुख के ज़रिये नाम के साथ जोड़कर अपने में अभेद कर लेता है।

सिध गोस्ट: पुनः अवलोकन

* श्री आदि ग्रन्थ में अंकित सब वाणियों में 'सिध गोस्ट' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। संवाद शैली में रचित इस एकमात्र वाणी का अपना ही स्वरूप और स्वभाव है।

* 'सिध गोस्ट' में आपसी संवाद द्वारा दो विचारधाराओं का स्वरूप दिखाई देता है। इसके द्वारा योगमत की मूल मान्यताएँ भी सामने आ जाती हैं और गुरुमत के सच्चे स्वरूप का विशाल और भावपूर्ण चित्र भी सामने आ जाता है।

* सिद्धों के मार्ग को त्याग मार्ग कह सकते हैं तो गुरु साहिब के मार्ग को सहज मार्ग कह सकते हैं। सिद्ध गृहस्थी के त्याग, विशेष प्रकार के भेष, देश-विदेश में भ्रमण, कंद-मूल पर निर्वाह करने, तीर्थों के स्नान और शास्त्रों के पाठ-विचार आदि पर ज़ोर देते हैं। गुरु साहिब योग साधना को पारमार्थिक वृत्ति पर आधारित करते हुए कहते हैं कि योग के लिए त्याग, हठ, वाचक ज्ञान आदि आवश्यक नहीं। संसार का साधारण से साधारण इनसान भी गृहस्थी की सभी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करता हुआ परमार्थ की कमाई करता हुआ प्रभु से मिलाप कर सकता है।

* योगी सिडी और शंख बजाने, घर-घर से भिक्षा माँगने आदि पर ज़ोर देते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि सच्चा योग प्रभु से दया माँगने और सतगुरु से नाम की दात लेने पर आधारित है। इसमें सतगुरु की समझाई युक्ति के अनुसार सुरत को अंदर अनहद शब्द के साथ जोड़ना आवश्यक है। सुरत का शब्द के साथ जुड़ना ही

प्रभु के साथ जुड़ जाना है। यही सच्चा योग है। इसका किसी तरह के बाहरी धर्म-कर्म से कोई संबंध नहीं। शब्द प्रत्येक इनसान के अंदर है, परंतु गुप्त है। सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार शब्द को प्रकट करके सुरत को इसमें लीन कर देना ही सच्चा योग है।

* गुरु साहिब 61वीं पउड़ी में कहते हैं:

  बिन सबदै रस न आवै अउधू हउमै पिआस न जाई॥
  सबद रते अंम्रित रस पाइआ साचे रहे अघाई॥

  हठ योग, ज्ञान मार्ग और हर प्रकार के बाहरी कर्मकांड में आनंद नहीं है। यही कारण है कि इन साधनों द्वारा न तो आशा-तृष्णा शांत होती है और न ही मोह-ममता और हौंमैं से छुटकारा मिलता है। शब्द के अमृत में वह अद्भुत रस और आनंद है कि मन सहज ही इंद्रियों के भोगों और विषय-विकारों की तरफ़ से उपराम हो जाता है। जब आत्मा शब्द में लीन हो जाती है, तो द्वैत या हौंमैं का नाश हो जाता है और सच्चे योग की प्राप्ति हो जाती है।

* योग या गुरुमत की यह विधि अनादि, सर्वव्यापक और परिवर्तन रहित है। सृष्टि के आरंभ में प्रभु द्वारा सृजित एक स्वाभाविक और सहज मार्ग के अलावा प्रभु प्राप्ति का कोई दूसरा मार्ग न हुआ है, न हो ही सकता है। इस मार्ग को गुरुमत, सच्चा योग, सुरत-शब्द योग या भक्ति मार्ग आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। शब्द यानी नाम प्रभु का रूप है। सतगुरु का अस्तित्व उसके अंदर कार्यशील शब्द पर आधारित है। शिष्य की हस्ती उसकी आत्मा है। सतगुरु के अंदर प्रकट शब्द, शिष्य के अंदर गुप्त शब्द को जाग्रत कर देता है। उस शब्द में लीन होकर शिष्य की आत्मा भी सतगुरु की आत्मा की तरह प्रभु में लीन हो जाती है। यही सच्ची गुरुमत है, सच्चा योग है।

बारह माहा: काव्य रूप

संस्कृत काव्य में 'ऋतु-वर्णन' की परंपरा बहुत प्राचीन है। कवि बदलती ऋतुओं की पृष्ठभूमि को लेकर प्रकृति के अनेक रंग-बिरंगे दृश्य चित्रित करते थे। 'बारह माहा' ऋतुओं के वर्णन का ही एक विकसित रूप है। जहाँ कवि पहले छ: ऋतुओं के दो-दो महीनों का इकट्ठा वर्णन करते थे, वहाँ ऋतुओं की जगह महीनों ने ले ली। इस प्रकार 'बारह माहा' की प्रथा चल पड़ी।* 'बारह माहा' पहले लोक काव्य के रूप में विकसित हुआ। यह लोक गीतों का ही एक भेद है।† इसमें कवि साल के बारह महीनों को आधार बनाकर प्रेमिका और प्रियतम के आपसी प्रेम पर प्रकाश डालते थे। गुरु साहिबान ने इसी काव्य रूप को आत्मा और परमात्मा के आपसी प्रेम को प्रकट करने का माध्यम बनाया है।

श्री आदि ग्रन्थ में दो बारह माहा दर्ज हैं—गुरु नानक साहिब का 'तुखारी राग' और गुरु अर्जुन देव जी का 'मांझ राग' में उचारा गया, 'बारह माहा'। ये दोनों मिलकर मानव जीवन का एक संपूर्ण दृश्य प्रस्तुत करते हैं। गुरु नानक साहिब ने वातावरण के चित्रण पर अधिक बल दिया है जबकि गुरु अर्जुन देव जी ने मिलाप के साधन पर।‡

इस पुस्तक में पहले गुरु अर्जुन देव जी द्वारा रचित 'बारह माहा' की विस्तृत व्याख्या की गई है, क्योंकि अनेक धर्म स्थानों पर हर महीने के आरंभ में इसका ही पाठ करने की परंपरा चली आ रही है। गुरु नानक साहिब द्वारा रचित 'बारह माहा' को इस बारह माहा के साथ मिलाकर पढ़ने से दोनों बारह माहों के भाव निखरकर सामने आ जाते हैं। इस लिए

* *पंजाबी बारह माहे*, पृ. 43

† *खोज पत्रिका, वाणी काव्य-रूप* विशेष अंक, पृ. 134

‡ *बारह माहा दर्पण* पृ. 5

गुरु नानक साहिब के 'बारह माहा' की विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता महसूस नहीं की गई।

हर काव्य रूप का अपना अलग स्वरूप होता है। 'जप', 'अनंद', 'सुखमनी', 'सिध गोस्ट' आदि विचार प्रधान रचनाएँ हैं। इनमें सिद्धांतों का क्रमानुसार विस्तार से उल्लेख है। 'बारह माहा' में सभी महीने एक सूत्र से आपस में बँधे हुए हैं, पर हर महीने का अपना अलग स्वरूप है। गुरु साहिब द्वारा रचित 'बारह माहा' में आध्यात्मिक सिद्धांतों को सारगर्भित और संकेतात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका वास्तविक स्वरूप प्रतीकात्मक, भावमय और वैराग्य प्रधान है। आत्मा और परमात्मा के रिश्ते को पति-पत्नी या प्रेमिका और प्रियतम के प्रतीकों द्वारा प्रकट किया गया है। ग्रीष्म ऋतु, शरद ऋतु, वर्षा ऋतु, पतझड़ आदि जीवन की बदलती परिस्थितियों के सूचक हैं।

गुरु अर्जुन देव जी चैत मास के वर्णन में कहते हैं:

चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥
संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥

माघ मास के वर्णन में आप कहते हैं:

माघ मजन संग साधूआ धूड़ी कर इसनान॥
हर का नाम धिआए सुण सभना नो कर दान॥

दोनों में आध्यात्मिक सिद्धांतों का उल्लेख है तथा दोनों का संपूर्ण रंग वैराग्ययुक्त और भावमय है, जैसे:

वैसाख धीरन किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोह॥
हर साजन पुरख विसार कै लगी माइआ धोह॥
पुत्र कलत्र न संग धना हर अविनासी ओह॥
पलच पलच सगली मुई झूठै धंधै मोह॥
इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोह॥
दयु विसार विगुचणा प्रभ बिन अवर न कोए॥

प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोए॥
नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहो परापत होए॥
वैसाख सुहावा तां लगै जा संत भेटै हर सोए॥

गुरु साहिब ने 'पहरे', 'दिन रैण', 'वार सत', 'थितां', 'बारह माहा' के अलावा 'पटी', 'बावन अखरी', 'वार', 'लावां' आदि काव्य रूपों की रचना भी की है। आपका मुख्य उद्देश्य इन काव्य रूपों द्वारा अपनी विचारधारा के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डालना है। गुरु साहिब इन सभी काव्य रूपों में आत्मा और परमात्मा के आपसी रिश्ते पर प्रकाश डालते हैं और परमात्मा द्वारा मनुष्य को संसार में भेजे जाने के उद्देश्य के प्रति सचेत करते हैं। वे जीवात्मा को अज्ञानता के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं जिससे वह मनुष्य जन्म के सुनहरे अवसर से लाभ उठाकर अपने पति परमेश्वर के वियोग के दु:खदायी संकट से मुक्त हो जाए और उसके मिलाप के परम आनंद का सौभाग्य प्राप्त कर ले। प्रस्तुत दोनों रचनाएँ इसी भाव को मुख्य रूप से प्रकट करती हैं कि आत्मारूपी पत्नी का सच्चा और स्थिर सुहाग वह परमेश्वर है। इसको पूर्ण और सच्चा आनंद केवल उस पूर्ण और अमर सुहाग के मिलाप से ही मिल सकता है।

बारह माहा

मांझ महला ५ घरु ४

१ओ सतगुर प्रसाद॥

किरत करम के वीछुड़े कर किरपा मेलहो राम॥
चार कुंट दह दिस भ्रमे थक आए प्रभ की साम॥
धेन दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम॥
जल बिन साख कुमलावती उपजह नाही दाम॥
हर* नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम॥
जित घर हर कंत न प्रगटई भठ नगर से ग्राम॥
स्रब सीगार तंबोल रस सण देही सभ खाम॥
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभ जाम॥
नानक की बेनंतीआ कर किरपा दीजै नाम॥
हर मेलहो सुआमी संग प्रभ जिस का निहचल धाम॥१॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 133-136

किरत=पिछले जन्मों के किए हुए; **चार कुंट**=चारों ओर, हर जगह; **दह दिस**=दसों दिशाएँ; **साम**=शरण; **बाहरी**=बिना; **साख**=फ़सल, खेती; **नाह**=पति; **कत**=कैसे, कहाँ; **भठ**=भट्ठी; **तंबोल**=पान; **सण**=के साथ; **खाम**=कच्चा, बेकार; **जाम**=यम भाव दु:ख देनेवाले।

सरलार्थ: हे प्रभु! अपने ही किए हुए कर्मों के कारण हम आपसे बिछुड़े हुए हैं, आप कृपा करके हमें अपने साथ मिला लो। हमने चारों ओर, दसों दिशाओं को छान मारा है, परंतु हम आपके साथ

* आदि ग्रन्थ की वाणी में प्रयोग हुए 'हर' शब्द का अर्थ है—हरि।

मिलाप नहीं कर सके। अब थककर आपकी शरण में आ गए हैं। आपसे बिछुड़कर हमारी वही हालत है जो दूध विहीन गाय की होती है। जिस प्रकार पानी के बिना खेती मुरझा जाती है और उसकी कोई क़ीमत नहीं रहती, प्रियतम से बिछुड़कर हमारी भी वही हालत है। जब तक हरिरूपी साजन से मिलाप न हो, मन को शांति कैसे मिले, सुख-चैन कैसे आए? जिस शरीर में आत्मा का हरिरूपी पति प्रकट नहीं हुआ, वह शरीर भट्ठी के समान है और जिस संसाररूपी नगर या ग्राम में उस शरीर का निवास है, वह भी भट्ठी के समान है। प्रभुरूपी प्रियतम से बिछुड़ी हुई जीवात्मारूपी स्त्री के देह सहित सारे हार शृंगार झूठे और बेकार हैं और उसके द्वारा भोगे जानेवाले सब रस या स्वाद भी कच्चे और झूठे हैं। प्रियतम के वियोग में तड़प रही आत्मा को मित्र तथा संबंधी यमदूतों के समान दु:खदायी प्रतीत होते हैं। हे स्वामी! हे प्रभु! नानक की प्रार्थना है कि आप कृपा करके उसे अपना नाम बख़्श दें और अपने साथ मिलाकर अपने अविनाशी धाम का वासी बना लें।

❖ ***किरत करम के वीछुड़े कर किरपा मेलहो राम॥***
चार कुंट दह दिस भ्रमे थक आए प्रभ की साम॥

यहाँ गुरु साहिब चार आध्यात्मिक सिद्धांतों की ओर संकेत कर रहे हैं:

1. जीवात्मा अपने पिछले जन्मों के कर्मों के कारण प्रभु से बिछुड़ी हुई है।
2. हर जगह परमात्मा की खोज कर लेने के बावजूद यह उसके साथ मिलाप नहीं कर सकी।
3. यह थककर परमात्मा की शरण में आ गई है।
4. यह परमात्मा के आगे प्रार्थना करती है कि वह इसे बख़्शकर अपनी दया द्वारा अपने साथ मिला ले।

यदि परमात्मा इनसान की बुद्धि और प्रयासों द्वारा मिल सकता तो कोई भी उसके वियोग का दर्द न सहता। परमात्मा की प्राप्ति मनुष्य की कोशिश पर नहीं, बल्कि परमात्मा की दया पर निर्भर है।

धेन दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम॥
जल बिन साख कुमलावती उपजह नाही दाम॥
हर नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम॥
जित घर हर कंत न प्रगटई भठ नगर से ग्राम॥
स्रब सीगार तंबोल रस सण देही सभ खाम॥
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभ जाम॥

इन पंक्तियों में गुरु साहिब हमें कुछ उदाहरणों द्वारा समझाते हैं कि जिस प्रकार दूध न देनेवाली गाय की कोई क़द्र नहीं होती और पानी के बिना मुरझाई खेती की कोई क़ीमत नहीं होती, उसी प्रकार परमात्मारूपी पति के बिना आत्मारूपी स्त्री को कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। जब तक जीवात्मा का अपने पति प्रभु के साथ मिलाप नहीं होता, तब तक उसके अंदर शांति कैसे आ सकती है, उसकी बेचैनी कैसे दूर हो सकती है?

जिसके अंतर में प्रियतम प्रभु प्रकट नहीं हुआ, वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, इच्छाओं और तृष्णाओं की आग में तप रहा है। **भठ नगर से ग्राम॥**—प्रियतम प्रभु से मिलाप के बिना जीवात्मा के लिए यह शरीर भट्ठी के समान है और यह संसार भी भट्ठी के समान है, जिसमें इस शरीर का निवास है।

पति से बिछुड़ी स्त्री को चाहे सुंदर गहनों और कपड़ों से लाद दो, उसका चाहे कितना ही हार-शृंगार कर दो और उसे चाहे छत्तीस प्रकार के व्यंजन खाने के लिए दे दो, उसे कभी शांति नहीं मिलती। अपने पति के बिना उसे मित्र और संबंधी भी यमदूतों के समान डरावने और दु:खदायक प्रतीत होते हैं। आत्मारूपी स्त्री को जब भी सच्चा सुख मिलता है, केवल परमात्मा के मिलाप से ही मिलता है। गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में लिखते हैं, 'इक सजण सभ सजणा इक वैरी सभ वाद॥'[1]—परमेश्वर मित्र बन जाए तो सारा संसार मित्र जान पड़ता है, अन्यथा सारा संसार दुश्मन प्रतीत होता है।

नानक की बेनंतीआ कर किरपा दीजै नाम॥
हर मेलहो सुआमी संग प्रभ जिस का निहचल धाम॥

अपनी निर्बलता को देखती हुई आत्मारूपी स्त्री प्रार्थना करती है: हे दयालु प्रभु! मुझे अपने साथ मिलानेवाले और अपना प्रेम पैदा करनेवाले नाम के साथ जोड़ दें। हे मेरे स्वामी! मुझे इस नाशवान् संसार की भटकन से छुड़ाकर अपने अविनाशी धाम में ले चलें, ताकि मेरा जन्म-जन्मांतरों का भटकना समाप्त हो जाए और आपके स्थायी संग से मुझे परमगति प्राप्त हो जाए।

चेत

चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥
संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥
जिन पाइआ प्रभ आपणा आए तिसह गणा॥
इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥
जल थल महीअल पूरिआ रविआ विच वणा॥
सो प्रभ चित न आवई कितड़ा दुख गणा॥
जिनी राविआ सो प्रभू तिंना भाग मणा॥
हर दरसन कंउ मन लोचदा नानक पिआस मना॥
चेत मिलाए सो प्रभू तिस कै पाए लगा॥२॥

चेत=चैत मास; **अराधीऐ**=आराधना करें; **घणा**=बहुत ज़्यादा; **भणा**=सुमिरन करूँ; **गणा**=गिनती अर्थात् लेखे में आना; **बिरथा**=व्यर्थ; **महीअल**=धरती और आकाश के बीच में; **पूरिआ**=व्याप्त, समाया हुआ; **राविआ**=समाया हुआ; **भाग**=सौभाग्य; **मणा**=कई मन, बहुत ज़्यादा।

सरलार्थ: चैत के महीने की मनुष्य जन्म से उपमा देते हुए कहते हैं कि परमेश्वर की आराधना (भक्ति) करने से हृदय आनंद से भर जाता है। संतजनों और परमेश्वर के प्यारों से मिलकर, नाम का सुमिरन करके परमेश्वर से मिलाप होता है। जिसने परमेश्वर के साथ मिलाप कर लिया है, केवल उसका ही संसार में आना सफल माना जा सकता है। परमेश्वर की याद के बिना एक क्षण के लिए भी जीना, जीवन व्यर्थ खो देना है। जो परमेश्वर पानी, धरती और आकाश में व्याप्त है, जो जंगलों में भी व्याप्त है, यदि उसकी याद

हृदय में नहीं है, तो यह कितने दु:ख की बात है! यह दु:ख वर्णन से परे है। जिन्होंने उस प्रभु के मिलाप का रस पाया है, वे बड़े भाग्यवान् हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मेरे मन में भी प्रभु के दर्शनों की चाह है, उसके मिलाप की प्यास बनी हुई है। मैं चाहता हूँ कि मैं किसी प्रभु प्यारे के चरणों में लग जाऊँ जो मुझे भी प्रभु के साथ मिला दे।

❖ ***चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥***
संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि चैत के महीने अर्थात् मनुष्य जन्म में सच्चा और पूर्ण आनंद गोविंद की भक्ति से ही मिल सकता है। गोविंद की भक्ति का अर्थ नाम की कमाई है और नाम की कमाई की युक्ति संत-सतगुरु समझाते हैं।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि सच्चा और पूर्ण आनंद उस परमेश्वर के मिलाप से ही प्राप्त होगा। इस लिए संतों की संगति करके उस परमेश्वर के नाम द्वारा उसके साथ जुड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

जिन पाइआ प्रभ आपणा आए तिसह गणा॥
इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥

लोग अपनी-अपनी सोच के अनुसार जीवन के लिए अनेक लक्ष्य निर्धारित करते हैं। वे जीवन को उसी तरह ढालने का यत्न करते हैं जिससे उनका मनचाहा लक्ष्य पूरा हो सके। गुरु साहिब कहते हैं कि मनुष्य जन्म तभी सफल है यदि प्रभु के साथ मिलाप हो जाए। प्रभु को पल भर के लिए भी नहीं भुलाना चाहिए। उसे पल भर के लिए भी भूलना अपना जन्म व्यर्थ में गँवा देना है।

परमात्मा ने आत्मा को किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार में भेजा है और कौन-सा कार्य किए बिना मनुष्य जन्म व्यर्थ है? गुरु साहिब कहते हैं: ***इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥*** भाव यह है कि आत्मा अपनी लिव परमात्मा के साथ जोड़कर उसी का रूप हो जाए।

मनुष्य जन्म परमात्मा की भक्ति के द्वारा परमात्मा से मिलाप करने के लिए मिला वरदान है। जो लोग इस सुनहरे अवसर से लाभ उठाकर परमात्मा की भक्ति में लग जाते हैं, वे भवसागर से पार हो जाते हैं। कबीर साहिब का कथन है:

भजहो गोबिंद भूल मत जाहो॥ मानस जनम का एही लाहो॥[2]

जल थल महीअल पूरिआ रविआ विच वणा॥
सो प्रभ चित न आवई कितड़ा दुख गणा॥

आप आश्चर्य प्रकट करते हैं कि उस सर्वव्यापक परमेश्वर को भुला देना कितने दु:ख की बात है! जो प्रभु सारी सृष्टि का जीवन है, जो प्रभु जीवात्मा का आधार है, उसी को भुला देना बड़े दुर्भाग्य की बात है। आपका भाव है कि पत्ते-पत्ते, कण-कण में रमे हुए कर्ता को भुला देने से बढ़कर दु:ख और क्या हो सकता है!

गुरु साहिब दु:ख और अफ़सोस प्रकट करते हैं, ***सो प्रभ चित न आवई कितड़ा दुख गणा॥*** गुरु तेग़ बहादुर साहिब कहते हैं, 'घट घट मै हर जू बसै संतन कहिओ पुकार॥ कहो नानक तिह भज मना भउ निध उतरह पार॥'[3] भाव यह है कि माया-मोह के वश होकर सब सुखों के दाता सर्वव्यापी प्रभु को बिसार देना भारी अज्ञानता है। गुरु अर्जुन साहिब 'आसा राग' के एक शब्द में इस संपूर्ण विचारधारा को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं:

दिन रात कमाइअड़ो सो आइओ माथै॥
जिस पास लुकाइदड़ो सो वेखी साथै॥
संग देखै करणहारा काए पाप कमाईऐ॥
सुक्रित कीजै नाम लीजै नरक मूल न जाईऐ॥
आठ पहर हर नाम सिमरहो चलै तेरै साथे॥
भज साधसंगत सदा नानक मिटह दोख कमाते॥[4]

जिनी राविआ सो प्रभू तिंना भाग मणा॥
हर दरसन कंउ मन लोचदा नानक पिआस मना॥
चेत मिलाए सो प्रभू तिस कै पाए लगा॥

उस सर्वव्यापक परमेश्वर को भुलानेवाले अज्ञानियों की हालत पर दु:ख प्रकट करके गुरु साहिब उन भाग्यशाली जीवों की प्रशंसा करते हैं जो घट-घट में व्याप्त उस परमेश्वर की भक्ति में लगकर उसे पा लेते हैं। आप कहते हैं कि जिन जीवात्माओं का अपने पति परमेश्वर से मिलाप हो गया है, वे बड़ी ख़ुशक़िस्मत हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मेरे अंदर उस हरि के दर्शन की तीव्र इच्छा है। मेरी विनती है कि प्रभु की कृपा से चैत के महीने में मैं उस गुरु के चरणों की शरण लूँ जिसने ख़ुद प्रभु के साथ मिलाप किया हो और जो मुझे भी उस प्यारे के साथ मिला दे।

डॉ. तारन सिंह जी ने अपनी पुस्तक *बारह माहा दर्पण* में चैत के महीने पर कई पहलुओं से विस्तारपूर्वक चर्चा की है जिससे केवल चैत के महीने को ही नहीं, बल्कि पूरे 'बारह माहा' को समझने में आसानी होती है। इस चर्चा का सार इस प्रकार है:

1. मनुष्य आनंद की खोज में है। आनंद की प्राप्ति मनोकामना की पूर्ति से होती है।
2. मनुष्य जो भी कर्म करता है, सुख-शांति या आनंद के लिए करता है। वह पैसा कमाता है ताकि ख़ुशी मिले। वह बाल-बच्चों से प्यार करता है, क्योंकि उसे इनसे ख़ुशी मिलती है। मनुष्य लोक सेवा भी अपनी ख़ुशी के लिए करता है। वह बलिदान भी इस लिए देता है कि उसको इससे ख़ुशी मिलती है।
3. अगर मनुष्य केवल शरीर होता, तो शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाने पर प्रसन्न हो जाता। यदि वह केवल मन होता, तो मानसिक भोग-विलास मिल जाने पर ख़ुश हो जाता।
4. मनुष्य आत्मा है। आत्मा के अंदर प्रभु के साथ मिलने की तीव्र इच्छा है। जब तक यह इच्छा पूरी नहीं होती, आत्मा को आनंद नहीं मिल सकता।

5. आत्मा की परमात्मा के साथ मिलाप की इच्छा परमात्मा के प्रेम द्वारा ही पूरी हो सकती है।
6. परमात्मा का प्रेम उसके नाम के सुमिरन द्वारा पैदा होता है।
7. इस सुमिरन की युक्ति कोई ऐसा पूर्ण संत ही सिखा सकता है जिसने ख़ुद इस युक्ति द्वारा परमात्मा के साथ मिलाप किया हो।*

वैसाख

वैसाख धीरन किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोह॥
हर साजन पुरख विसार कै लगी माइआ धोह॥
पुत्र कलत्र न संग धना हर अविनासी ओह॥
पलच पलच सगली मुई झूठै धंधै मोह॥
इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोह॥
दयु विसार विगुचणा प्रभ बिन अवर न कोए॥
प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोए॥
नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहो परापत होए॥
वैसाख सुहावा तां लगै जा संत भेटै हर सोए॥ ३॥

धीरन=धैर्य कैसे करें; **वाढीआ**=बिछुड़ी हुईं; **धोह**=धोखा; **कलत्र**=स्त्री; **पलच पलच**=फँस-फँसकर, उलझकर; **खोह**=छीन लेना; **दयु**=देव, परमात्मा; **विगुचणा**=ख़राब होना; **सोए**=शोभा।

सरलार्थ: बैसाख के महीने में वे जीवात्मारूपी स्त्रियाँ धैर्य कैसे रखें जो प्रभुरूपी पति से बिछुड़ी हुई हैं और जिनके हृदय में प्रेम की तड़प है। अनेक जीव परमात्मारूपी साजन को भुलाकर माया के धोखे का शिकार हो रहे हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि अंत समय पुत्र, स्त्री, धन आदि में से कुछ भी उनके साथ नहीं जा सकता; ये सब नाशवान् हैं। केवल एक परमात्मा और शब्द ही अविनाशी है। सब लोग माया के झूठे धंधों में उलझकर मर रहे हैं। एक प्रभु के नाम के सिवाय शेष जो कुछ भी है

* विस्तार के लिए देखिए: *बारह माहा दर्पण,* पृ. 16-20

वह परमेश्वर के दरबार की राह में छीन लिया जाता है। प्रभु को भुलाकर आख़िर पछताना पड़ता है, क्योंकि वहाँ प्रभु के सिवाय कोई सहायक नहीं बनता। जो लोग अपने प्यारे प्रभु के चरणों में लगे हुए हैं, केवल उन्हीं को निर्मल भाव सच्ची शोभा प्राप्त होती है। हे प्रभु! नानक की यही विनती है कि आप मेरे हृदय में प्रकट हो जाएँ ताकि मुझे भी आपके साथ मिलाप की निर्मल शोभा प्राप्त हो जाए। बैसाख का महीना तभी सुहावना होता है यदि संतों की संगति से उस प्रभु के साथ मिलाप हो जाए।

❖ ***वैसाख धीरन किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोह॥***
हर साजन पुरख विसार कै लगी माइआ धोह॥

आत्मा का असली भोजन परमात्मा का प्रेम है। जब तक इसको वह भोजन नहीं मिलता, यह भूख से बिलखती रहती है। चैत माह की व्याख्या में विस्तार से देख आए हैं कि जीवात्मा का वास्तविक सहारा परमात्मा है। इसे जब भी सच्चा आनंद मिलता है, प्रभु के मिलाप से मिलता है। गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभुरूपी पति से बिछुड़ी हुई जीवात्मारूपी स्त्रियों को धैर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? शांति कैसे मिल सकती है? नींद कैसे आ सकती है? आत्मा को जब भी सच्ची शांति मिलती है, नाम के द्वारा प्रभु से मिलाप का सुख प्राप्त करके ही मिलती है। आत्मा का सच्चा साजन, सच्चा मित्र, वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, पर जीवात्मा अज्ञानवश उसे भुलाकर माया के धोखे में पड़ी है। कबीर साहिब कहते हैं:

कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुर की भक्ति कर, भावै विषय कमाय॥[5]

यदि मन में मायामय पदार्थों, विषय-विकारों का प्रेम है, तो इसमें प्रभु, नाम और सतगुरु का प्रेम नहीं समा सकता। यदि इसमें परमेश्वर, नाम और सतगुरु का प्रेम है, तो यह अपने-आप ही माया के मोह से मुक्त हो जाता है।

पुत्र कलत्र न संग धना हर अविनासी ओह॥
पलच पलच सगली मुई झूठै धंधै मोह॥

मनुष्य की असली त्रासदी यही है कि यह अपनी तरफ़ से तो सुख के लिए ही प्रयत्न करता रहता है, पर इसके पल्ले दु:ख ही पड़ता है। क्यों? इसलिए कि यह अपनी अधूरी और सीमित बुद्धि के अनुसार ग़लत स्थानों पर और ग़लत साधनों के द्वारा सुख ढूँढ़ता है। आग से ठंडक कैसे प्राप्त की जा सकती है? जो अधूरा, परिवर्तनशील और नाशवान् है, उससे पूर्ण और अविनाशी सुख कैसे मिल सकता है? गुरु साहिब सावधान करते हैं कि माया के प्रभाव के कारण लोग स्त्री, संतान और धन के मोह में फँस जाते हैं और इनमें सुख ढूँढ़ते हैं। वे सारा जीवन इन्हीं में बरबाद कर लेते हैं जबकि अंत समय इनमें से कोई भी चीज़ किसी के साथ नहीं जा सकती। यदि संसार की कोई वस्तु जाते समय साथ चल सकती, तो अब तक सारा संसार ख़ाली हो चुका होता। साथ जाता है तो केवल अविनाशी प्रभु का नाम।

कबीर साहिब कहते हैं:

मोह फंद सब फंदिआ, कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्त्व बिचार॥[6]

आप कहते हैं कि संसार माया के जाल में बुरी तरह फँसा हुआ है। केवल प्रभु के भक्त ही परमतत्त्व की खोज करके इस जाल से मुक्त हो जाते हैं।

इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोह॥
दयु विसार विगुचणा प्रभ बिन अवर न कोए॥

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि हे भलेमानस! दुनिया की धन-दौलत इकट्ठी करने में तुम अपना अमूल्य जन्म व्यर्थ ही बरबाद कर रहे हो, अंत समय वह तेरे साथ नहीं जा सकती और जिन पुण्य कर्मों को तू अज्ञानवश परलोक के साथी समझ रहा है, वे भी धर्मराज के दरबार में पहुँचने से पहले ही तुझसे यमदूतों द्वारा छीन लिए जाएँगे। अंत समय तेरे साथ केवल परमेश्वर का नाम जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

करम धरम पाखंड जो दीसह तिन जम जागाती लूटै॥
निरबाण कीरतन गावहो करते का निमख सिमरत जित छूटै॥[7]

जीव के लिए दो मार्ग हैं – यम मार्ग और नाम मार्ग। 'जा की सोए सुणी मन जीवै॥ रिदै वसै ता ठंढा थीवै॥ गुर मुखहो अलाए ता सोभा पाए तिस जम कै पंथ न पाइणा॥'[8] गुरु की शरण लेकर नाम के साथ लिव जोड़नेवाले साधक की आत्मा को मौत के बाद यम के मार्ग पर नहीं जाना पड़ता। 'मेरे राम राए तूं संता का संत तेरे॥ तेरे सेवक कउ भउ किछ नाही जम नही आवै नेरे॥'[9] यम संतों के सेवकों के पास नहीं आ सकते। संतों के सेवक सतगुरु की सहायता और नाम के प्रताप से कुशलपूर्वक निज घर पहुँच जाते हैं। लेकिन जिन्होंने गुरु की शरण नहीं ली और न ही नाम से लिव जोड़ी, उनकी क्या दशा होती है? उन्हें मृत्यु के बाद यम मार्ग से गुज़रना पड़ता है। यम मार्ग पर क़दम-क़दम पर अनेक संकट हैं। धर्मराज का जगाति (कर उगाहनेवाला कर्मचारी) अर्थात् यमदूत, जीव को उन संकटों से बचाने के बदले उसके सारे पुण्य कर्म छीन लेता है।

प्रभुरूपी सच्चे इष्ट, सच्चे ठाकुर और उसके नाम को भुला देनेवालों को मृत्यु के बाद भटकना पड़ता है। गुरु साहिब के कथन का भाव यह है कि जो गुरुमुख लोग प्रभु तथा उसके नाम से प्रेम करते हैं, उनके लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं। अज्ञानी लोग मायावश मालिक के नाम को भुलाकर लोक और परलोक दोनों बिगाड़ लेते हैं।

प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोए॥
नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहो परापत होए॥
वैसाख सुहावा तां लगै जा संत भेटै हर सोए॥

वह परमेश्वर माया की मैल से रहित है। जिन्होंने उस निर्मल परमेश्वर के चरण कमलों के साथ प्रेम लगा लिया, वे भी निर्मल हो गए। उनके लोक-परलोक दोनों सुधर गए। उनको यहाँ भी और मालिक के दरबार में भी सच्ची शोभा प्राप्त हो गई।

इनसान अपनी बल-बुद्धि द्वारा उस परमेश्वर के चरणों से नहीं लग सकता। गुरु साहिब प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु! तू ख़ुद ही दया करके हमें अपने साथ मिला ले। मनुष्य-जन्मरूपी बैसाख का महीना तभी सुंदर और सुहावना बन सकता है यदि प्रभु कृपा करके किसी ऐसे संत की संगति बख़्श दे जो जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलाप करवा दे।

जेठ

हर जेठ जुड़ंदा लोड़ीऐ जिस अगै सभ निवंन॥
हर सजण दावण लगिआ किसै न देई बंन॥
माणक मोती नाम प्रभ उन लगै नाही संन॥
रंग सभे नाराइणै जेते मन भावंन॥
जो हर लोड़े सो करे सोई जीअ करंन॥
जो प्रभ कीते आपणे सेई कहीअह धंन॥
आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥
हर जेठ रंगीला तिस धणी जिस कै भाग मथंन॥४॥

जुड़ंदा=जुड़ना; **निवंन**=झुकते हैं; **दावण**=दामन के साथ; **बंन**=बाँधना; **संन**=सेंध भाव चुराना; **लोड़े**=चाहता है; **भाग मथंन**=माथे पर लिखा भाग्य, धुर के लेख।

सरलार्थ: जेठ के महीने में उपदेश है कि उस परमेश्वर के साथ जुड़ना चाहिए जिसके आगे सब नतमस्तक होते हैं, झुकते हैं। यमदूत ऐसे किसी जीव को बाँध नहीं सकते जो उस परमेश्वर का दामन पकड़ लेता है। उसका दामन पकड़नेवालों के पास ऐसा नामरूपी रत्न होता है जिसको कोई चुरा नहीं सकता अर्थात् न तो विषय-विकाररूपी चोर इस धन को चुरा सकते हैं और न ही यमदूत इसे किसी भी बहाने छीन सकते हैं। परमेश्वर के रंग न्यारे हैं। हरि वही करता है जो उसको मंज़ूर होता है और जीवों को भी वही कुछ करना पड़ता है जो हरि को प्रिय है। धन्य हैं वे जीव जिन्हें वह प्रभु अपना बना लेता है। यदि परमेश्वर अपनी इच्छा से मिल सकता, तो जिन्हें वह नहीं मिला वे उससे बिछुड़कर रोते क्यों फिरते? हे नानक! प्रभु की प्राप्ति का आनंद वही पाते हैं जिनको साधु का संग प्राप्त हो जाता है। वह आनंद स्वरूप प्रभु उनको ही प्राप्त होता है जिनके भाग्य में लिखा हो और मनुष्य-जन्मरूपी जेठ का महीना भी उनके लिए ही आनंददायक होता है।

❖ गुरु साहिब ने चैत के महीने में उस सर्वव्यापक परमेश्वर के प्रेम का उपदेश दिया है। अब आप हमारे अंदर उस परमेश्वर का प्रेम पैदा करने के लिए जेठ के महीने के कई गुण वर्णन करते हैं:

हर जेठ जुड़ंदा लोड़ीऐ जिस अगै सभ निवंन॥
हर सजण दावण लगिआ किसै न देई बंन॥

समस्त संसार सर्वशक्तिमान् प्रभु को नमस्कार करता है। जो जीवात्मा अपने पति परमेश्वर का दामन पकड़ लेती है, यमदूत उसको बाँधकर धर्मराज के आगे पेश नहीं कर सकते। जिसने हरिरूपी साजन का पल्ला पकड़ लिया अर्थात् परमेश्वर की शरण प्राप्त कर ली, धुर दरगाह तक उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं आती।

माणक मोती नाम प्रभ उन लगै नाही संन॥—प्रभु का नाम अमूल्य है और उसके नाम को कोई चुरा नहीं सकता।

रंग सभे नाराइणै जेते मन भावंन॥
जो हर लोड़े सो करे सोई जीअ करंन॥

उस प्रभु में सबकुछ करने की सामर्थ्य है। वह अपनी रज़ा का मालिक है। वह अपनी मौज में अनेक कौतुक दिखाता है। सारी सृष्टि उसके हुक्म में है और जीव भी वैसा ही करते हैं जैसा उसका हुक्म होता है।

जो प्रभ कीते आपणे सेई कहीअह धंन॥—जिनको प्रभु ने अपनी कृपा से अपना मिलाप बख़्श दिया है, वे बहुत भाग्यशाली हैं। वे धन्य हैं और उनका मनुष्य जन्म लेना भी धन्य है।

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥

जीव स्वयं प्रभु के साथ मिलाप नहीं कर सकता, अन्यथा वह उससे बिछुड़कर रचना में क्यों भटकता फिरता? वह सर्वज्ञ कुल मालिक स्वयं ही किसी को अपने साथ मिलाए तो मिलाए। किसी का अपने-आप उसके साथ मिलाप कर लेने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। प्रभु की प्राप्ति का आदि-मध्य तथा अंत उसकी दया है यानी उसकी प्राप्ति उसकी दया पर निर्भर करती है। जीव प्रभु की दया के लिए विनती कर सकता है। सच्ची बात तो यह है कि हृदय से दया के लिए विनती भी उसकी दया-मेहर से ही निकलती है। परमात्मा साधु की संगति द्वारा मिलता है और जिसे वह प्रभु मिल जाता है, वही सच्चा आनंद पाता है।

हर जेठ रंगीला तिस धणी जिस कै भाग मथंन॥—गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि मस्तक पर धुर से लिखे भाग्य द्वारा ही प्रभु-मिलाप का आनंद प्राप्त किया जा सकता है। जो कुछ हो रहा है, उस एक कर्ता के हुक्म या भाणे के अनुसार हो रहा है।

आसाड़

आसाड़ तपंदा तिस लगै हर नाह न जिंना पास॥
जगजीवन पुरख तिआग कै माणस संदी आस॥
दुयै भाए विगुचीऐ गल पईस जम की फास॥
जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआस॥
रैण विहाणी पछुताणी उठ चली गई निरास॥
जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होए खलास॥
कर किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होए पिआस॥
प्रभ तुध बिन दूजा को नही नानक की अरदास॥
आसाड़ सुहंदा तिस लगै जिस मन हर चरण निवास॥५॥

नाह=पति; **माणस संदी**=मनुष्य की; **दुयै भाए**=द्वैत भाव; **विगुचीऐ**=ख़्वार होते हैं; **लुणै**=काटता है; **भेटीऐ**=मिलाप हो जाए; **खलास**=मुक्त।

सरलार्थ: मनुष्य-जन्मरूपी आषाढ़ का गरम महीना उन जीवरूपी स्त्रियों को तपता हुआ प्रतीत होता है, जिनका हरिरूपी पति उनके साथ नहीं और जिन्होंने उस जगजीवन परमेश्वर को भुलाकर केवल मनुष्य का आसरा लिया हुआ है, मनुष्य से आशा रखी हुई है। एक परमेश्वर के बजाय दूसरों से प्यार करने से जीते-जी तो हरि का वियोग रहता ही है, मरने पर भी यमदूतों का फंदा गले में पड़ता है। जैसा कोई बीज बोता है, वैसी ही उसको फसल काटनी पड़ती है और कर्मों के अनुसार मस्तक पर लिखा भाग्य भोगना पड़ता है। जिस जीवरूपी स्त्री की उम्ररूपी रात परमेश्वररूपी पति के मिलाप के बिना गुज़र जाती है, उसे अंत समय निराशा होती है, पश्चात्ताप होता है। इसके विपरीत जिनका किसी संत-सतगुरु से मिलाप हो जाता है, वे इस संसार में भी आनंद प्राप्त करते हैं और परमेश्वर की दरगाह में पहुँचकर मुक्त भी हो जाते हैं, किसी बंधन में नहीं पड़ते। हे प्रभु! नानक की विनती है कि आप ऐसी कृपा करें कि मन में आपके दर्शनों की प्यास पैदा हो जाए और कोई दूसरा आपके समान प्यारा न लगे। मनुष्य-जन्मरूपी आषाढ़ का महीना केवल उसे सुहावना लगता है जिसके मन में हरि-चरणों का निवास हो जाता है।

❖ ***आसाड़ तपंदा तिस लगै हर नाह न जिंना पास॥***
जगजीवन पुरख तिआग कै माणस संदी आस॥

'नाह' का अर्थ है स्वामी, कंत। गुरु साहिब कहते हैं कि जिन जीवात्मारूपी स्त्रियों का स्वामी उनके साथ नहीं है, उनका मनुष्य जन्म आषाढ़ महीने के समान तपिश से भरा है।

आषाढ़ में सूर्य आग बरसाता है और गर्मी अपने शिखर पर होती है। लोग गर्मी से बचने के लिए ठंडे शरबत पीते हैं; घर से बाहर निकलते हुए डरते हैं; पंखे, कूलर, *एयर कंडीशनर* चलाते हैं। जिनके पास पर्याप्त धन होता है, वे पहाड़ी इलाकों में या ठंडे स्थानों में चले जाते हैं। इन सब साधनों का संबंध शरीर के साथ है। इनसे अषाढ़ की गर्मी से तो बचा जा

सकता है, परंतु इनसे न मन के अंदर लगी हुई प्रचण्ड आशा तृष्णा की आग शांत हो सकती है, न ही आवागमन के दु:ख दूर हो सकते हैं और न ही आत्मा की अपने पति परमेश्वर से वियोग की व्यथा दूर हो सकती है। बुढ़ापा, बीमारी, दु:ख और मृत्यु का नगाड़ा चारों दिशाओं में बज रहा है। बर्फ़ीले इलाकों में रहनेवाले भी आत्मिक संताप भोग रहे हैं।

बाबा फ़रीद के वचन हैं:

काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥
पिरह बिहून कतहे सुख पाए॥ जा होए क्रिपाल ता प्रभू मिलाए॥[10]

आप समझा रहे हैं कि अपने पति परमेश्वर के वियोग में झुलसती हुई जीवात्मा को शांति सिर्फ़ पति के मिलाप से मिल सकती है।

गुरु साहिब इस महीने के अंत में कहते हैं, ***आसाड़ सुहंदा तिस लगै जिस मन हर चरण निवास॥***—जो जीवात्मारूपी स्त्री, अपने पति परमेश्वर से बिछुड़ी हुई है, उसके लिए मनुष्य जन्म आग के समान है; जिसका पति-परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया है, उसके लिए मनुष्य जन्म ख़ुशी और आनंद का स्रोत है।

उस सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञाता, प्रेम रूप, दया रूप, अविनाशी, क्षमाशील दाता को भुलाकर निर्बल, अज्ञानी, स्वार्थी, अधूरे और नाशवान् दुनियादारों को अपना सहारा बना लेने या उनके पीछे लगे रहने से बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? गुरु तेग़ बहादुर साहिब फ़रमाते हैं:

सुख मै बहु संगी भए दुख मै संग न कोए॥
कहो नानक हर भज मना अंत सहाई होए॥[11]

संसार में सब रिश्ते स्वार्थ के हैं। सुख में सभी पास बैठते हैं, पर दु:ख में कोई किसी का साथ नहीं देता।

संग सखा सभ तज गए कोऊ न निबहिओ साथ॥
कहो नानक इह बिपत मै टेक एक रघुनाथ॥[12]

अंत समय कोई मित्र या संबंधी जीव का साथ नहीं देता। उस समय केवल परमेश्वर ही उसका सहारा बन सकता है।

दुयै भाए विगुचीऐ गल पईस जम की फास॥—एक परमेश्वर का सहारा छोड़कर किसी दूसरे के साथ प्रेम करने या किसी दूसरे का सहारा लेने का क्या परिणाम होता है? '*विगुचीऐ*'—ख़्वार होना पड़ता है, परमेश्वर का वियोग सहना पड़ता है, परमेश्वर के साथ मिलाप नहीं होता। '*गल पईस जम की फास॥*'—अंत समय गले में यमदूतों का फंदा पड़ जाता है।

'*दुयै भाए विगुचीऐ*'—एक परमेश्वर के अलावा किसी दूसरे से अर्थात् संसार तथा इसकी शक्लों और पदार्थों से प्रेम करने को 'दूसरा भाव' कहा गया है। दूसरे शब्दों में परमेश्वर को अपना पति, स्वामी, मालिक, इष्ट समझने के बजाय सांसारिक शक्लों और पदार्थों के मोह में खो जाना 'दूसरा भाव' है।

अज्ञानतावश जीवात्मा पूर्ण शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनंद के स्रोत उस अविनाशी प्रभु को विसार देती है। यह अधूरे तथा नश्वर संसार के अधूरे तथा नाशवान् पदार्थों के मोह में फँस जाती है। अज्ञानतावश इनमें से ही सुख तथा शांति की तलाश करती है। यह 'दूसरा भाव' ही आत्मा की मूल त्रासदी है और यही इसके हर प्रकार के संकट और दु:ख का मूल कारण है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

दूजा भाउ न देई लिव लागण जिन हर के चरण विसारे॥
जगजीवन दाता जन सेवक तेरे तिन के तै दूख निवारे॥[13]

जिनके अंदर 'दूसरा भाव' समाया हुआ है, वे परमेश्वर के साथ लिव नहीं लगा सकते। वे सदा दु:खों की चक्की में पिसते रहते हैं। जो गुरुमुख उस एक जीवनदाता के साथ प्रेम करते हैं, उनके सब दु:ख दूर हो जाते हैं और उन्हें सच्चा सुख प्राप्त हो जाता है।

जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआस॥—इस पंक्ति को '*गल पईसु जम की फास*' के साथ मिलाकर पढ़ते हैं। ऊपर वर्णन है कि दूसरे भाव अर्थात् माया-मोह से ग्रस्त जीव अपने किए कर्मों का फल भोगने के आवागमन के

चक्कर में फँस जाते हैं। जो परमेश्वर से प्रेम करते हैं, उनके लिए तो यह जगत् परमेश्वर के साथ मिलाप का साधन है। परंतु जो जगत् से प्रेम करते हैं, उनके लिए यह आवागमन के दु:खों में फँसे रहने का कारण है। जिसको तैरना आता है, उसके लिए तो दरिया पार जाने का साधन है, लेकिन जिसको तैरना नहीं आता, उसके लिए दरिया डूबकर मर जाने का कारण है। प्रभु के साथ लिव लगानेवालों के लिए संसार प्रभु-प्राप्ति का साधन है। परमेश्वर को भुलानेवाले लोगों के लिए संसार कर्म-भूमि है। गुरु साहिब कार्तिक मास के प्रसंग में कहते हैं: 'कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग॥' और भादों के प्रसंग में संसार को 'करमा संदड़ा खेत' कहते हैं। इस संसार में 'जेहा बीजै सो लुणै' का नियम काम करता है। कर्म करने की स्वतंत्रता फल भोगने की मजबूरी को जन्म देती है। प्रारब्ध का लेख धुर से लिखा जाता है, पर यह लेख जीव के पिछले कर्मों के अनुसार लिखा जाता है।

रैण विहाणी पछुताणी उठ चली गई निरास॥—जिस जीवात्मारूपी स्त्री का परमेश्वररूपी पति के साथ मिलाप न हुआ, उसकी मनुष्य-जन्मरूपी रात्रि व्यर्थ चली गई और वह कर्मों की पोटली भी बाँधकर साथ ले गई। पीछे विस्तार से चर्चा कर आए हैं कि गुरु साहिब ने परमेश्वर-प्राप्ति को मनुष्य जन्म का मूल उद्देश्य माना है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

भई परापत मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥
सरंजाम लाग भवजल तरन कै॥ जनम ब्रिथा जात रंग माइआ कै॥[14]

गुरु साहिब ने 'गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥', 'अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥' का उपदेश दिया है। आप सावधान करते हैं कि मनुष्य जन्म को माया के प्रेम में व्यर्थ बरबाद नहीं करना चाहिए। इसको भवसागर पार करके परमेश्वर के साथ मिलने का साधन बनाना चाहिए।

जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होए खलास॥—पीछे 'मिल साधसंगत भज केवल नाम' का उपदेश पढ़ आए हैं। यहाँ गुरु साहिब समझा रहे

हैं कि कर्म और फल के जाल या आवागमन के बंधनों से केवल उनको ही मुक्ति मिलती है जिनको पूर्ण साधु की संगति प्राप्त हो जाती है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

आन आन समधा बहु कीनी पल बैसंतर भसम करीजै॥
महा उग्र पाप साकत नर कीने मिल साधू लूकी दीजै॥[15]

आग की एक चिंगारी ईंधन के बड़े से बड़े ढेर को भी जलाकर राख कर देती है। उसी प्रकार साधु की संगति में पहुँचकर साकत अर्थात् मनमुख पुरुषों के अनंत पापों का नाश हो जाता है। संतों के उपदेशानुसार की गई नाम की कमाई, जीवात्मा को अनंत जन्मों के पापों के बोझ से मुक्त करके परमेश्वर के दरबार में पहुँचने के योग्य बना देती है।

कर किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होए पिआस॥
प्रभ तुध बिन दूजा को नही नानक की अरदास॥
आसाड़ सुहंदा तिस लगै जिस मन हर चरण निवास॥

गुरु साहिब मालिक के आगे प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु! हम दीन-हीन, निर्बल, अज्ञानी जीव बुरी तरह माया के मोह अर्थात् दूसरे भाव में ग्रस्त हैं। तू कृपा करके हमारे अंदर अपने दीदार की प्यास पैदा कर दे।

गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! मुझे तुम्हारे सिवाय और कुछ भी नहीं चाहिए, क्योंकि मनुष्य-जन्मरूपी आषाढ़ का महीना तो तभी सुखपूर्ण और सुहावना हो सकता है यदि तुम्हारे चरणों में निवास हो जाए।

आषाढ़ का महीना जीवन की तपिश अर्थात् दु:खदायी परिस्थितियों का सूचक है। गुरु साहिब कहते हैं कि आत्मारूपी स्त्री को प्रभुरूपी पति के चरणों का सहारा मिल जाए, तो हर तरह की दु:खद परिस्थितियों के बावजूद उसके अंदर शांति और उल्लास भरा रहता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई॥
चउगिरद हमारै राम कार दुख लगै न भाई॥[16]

परमात्मा की शरण लेने से जीव माया के दु:खदायी प्रभाव से ऊपर उठ जाता है। पूर्व कर्मों के आधार पर लिखे गए लेख के अनुसार परमात्मा की भक्ति और नाम की कमाई करनेवाले साधकों को भी दु:खों और सुखों में से गुज़रना पड़ता है। लेकिन उनको अंतर में नाम का प्रबल सहारा मिल जाता है और उनका आत्मबल इतना दृढ़ हो जाता है कि वे बड़े से बड़े कष्ट में से भी ख़ुशी-ख़ुशी गुज़र जाते हैं।

सावण

सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥
मन तन रता सच रंग इको नाम अधार॥
बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसन सभे छार॥
हर अंम्रित बूंद सुहावणी मिल साधू पीवणहार॥
वण तिण प्रभ संग मउलिआ संम्रथ पुरख अपार॥
हर मिलणै नो मन लोचदा करम मिलावणहार॥
जिनी सखीए प्रभ पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥
नानक हर जी मइआ कर सबद सवारणहार॥
सावण तिना सुहागणी जिन राम नाम उर हार॥६॥

सरसी=रस से भर गई, खिल उठी भाव प्रसन्न हो गई; **बिखिआ**=विष भरा; **कूड़ाविआ**=झूठा, नाशवान्; **छार**=ख़ाक जैसा; **वण तिण**=जंगल की घास; **मउलिआ**=हरा-भरा हो गया; **करम**=दया; **मइआ**=दया-मेहर।

सरलार्थ: सावन के महीने में वही जीवात्मारूपी स्त्री खिली रहती है जिसका हरिरूपी प्रियतम के चरण कमलों के साथ प्रेम है, जिसको एकमात्र नाम का ही सहारा है और जिसने अपने तन-मन को परमात्मा के सच्चे प्रेम के रंग में रँग लिया है। उसको मायारूपी विष के सब झूठे आनंद ख़ाक के समान प्रतीत होते हैं। उसको हरिनाम की बूँद सुहावनी लगती है और वह संत-सतगुरु से मिलकर उस बूँद को पीने के योग्य बन जाती है। प्रभुरूपी पति के मिलाप से उसे संपूर्ण वनस्पति सर्वशक्तिमान् प्रभु के अस्तित्व से खिली हुई प्रतीत होती है।

मेरे मन में भी ऐसे सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक परमेश्वर से मिलने की इच्छा है, पर वह प्रभु जिसको भी अपने साथ मिलाता है, ख़ुद अपनी दया से मिलाता है। इस प्राप्ति में प्रभु से मिल चुके संत सहायक होते हैं। इसलिए जिन आत्मारूपी मेरी सखियों ने प्रभु को पाया है, मैं उन पर सदा बलिहारी जाती हूँ। हे प्रभु! अपनी दया से आत्मा को संवारनेवाले शब्द से मेरा मिलाप करवा दो, यही नानक की प्रार्थना है। उन सुहागिनों के लिए सावन का महीना सुहावना है जिन्होंने राम नाम को अपने हृदय का हार बना लिया है।

❖ ***सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥***
मन तन रता सच रंग इको नाम अधार॥

सावन बरसात का महीना है। इस महीने में वर्षा होने से हर ओर जल-थल हो जाता है। जेठ और आषाढ़ की गर्मी से तपी हुई धरती की तपिश दूर हो जाती है। गर्मी की तपन से सूखी हुई वनस्पति फिर हरी-भरी हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि जब जीवात्मारूपी स्त्री का अपने पति परमेश्वर के चरण कमलों से प्रेम हो जाता है, तो वह प्रेम वश उससे मिलाप के लिए अपने तन-मन को नाम-भक्ति के रंग में रँग लेती है। उसके सभी दु:खों और वियोग की जलन दूर हो जाती है तथा जीवन उल्लास और आनंद से भर जाता है।

गुरु साहिब परमेश्वर के चरण कमलों की महिमा करते हुए कहते हैं:

सफल दरसन तुमरा प्रभ प्रीतम चरन कमल आनूप॥
अनिक बार करउ तिह बंदन मनह चर्हावउ धूप॥[17]

गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! तेरे दर्शन धन्य हैं, तेरे चरण कमल अनुपम हैं। मैं बार-बार तेरे चरण कमलों को नमन करता हूँ और मन से उनके आगे धूप जलाता हूँ। एक और जगह आप कहते हैं:

चरन कमल हिरदै उर धारे॥ तेरे दरसन कउ जाई बलिहारे॥[18]

परमेश्वर अंदर है, इसलिए उसके चरण कमल भी अंदर हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

चरण कमल रिद अंतर धारे॥ प्रगटी जोत मिले राम पिआरे॥[19]

जब अंदर शब्द की ज्योति प्रकट हुई तो राम से मिलाप हो गया और उसके चरण कमलों का आधार प्राप्त हो गया। स्पष्ट है कि गुरु साहिब ने अंदर शब्द की ध्वनि और उसके प्रकाश के साथ ध्यान जोड़ने को ही परमेश्वर के चरण-कमलों के साथ ध्यान लग जाने का नाम दिया है।

मन तन रता सच रंग इको नाम अधार॥—संसार भी झूठा है, इसकी शक्लें और पदार्थ भी झूठे और नाशवान् हैं। इसलिए जो जीवात्मा संसार और इसकी शक्लों और पदार्थों की ओर दौड़ती है, उसका मन उनके मोह में फँसकर दु:खी होता है। केवल वह परमेश्वर और उसका नाम सच्चा है। '*इको नाम अधार*'—जो जीवात्मा झूठे और नाशवान् संसार तथा उसकी शक्लों और पदार्थों का आसरा व भरोसा छोड़कर एक परमेश्वर और उसके नाम का आश्रय ले लेती है, उसका रोम-रोम उस सच्चे प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है यानी वह नामरूपी सत्य के रंग में रँग जाती है।

बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसन सभे छार॥—परमेश्वर और उसके नाम के रंग में रँगे जाने का क्या लाभ होता है? पहले जीवात्मा को संसार और इसकी शक्लें तथा पदार्थ सच्चे और स्थायी लगते थे। वह इनको सच्चे और स्थायी सुख का साधन समझने की अज्ञानता की शिकार थी। जब उसके अंदर परमेश्वर और उसके नाम का प्रेम बस जाता है, तो उसे संसार माया का छल भरा खेल प्रतीत होने लगता है। उसे मायामय पदार्थों का रंग झूठा, विष से भरा, विनाशकारी और धूल के समान प्रतीत होने लगता है।

हर अंम्रित बूंद सुहावणी मिल साधू पीवणहार॥—परमेश्वर के भक्त को संसार के भोग ज़हर और हरि तथा उसका नाम अमृत के समान प्रतीत होता है। इसलिए वह प्रभु के भक्तों की संगति का लाभ उठाकर परमेश्वर के नाम का अमृत पीने का प्रयत्न करता है।

अमृत वह होता है जो अमर जीवन प्रदान करता है। ऐसा अमृत कौन-सा है? गुरु अंगद देव जी की वाणी है:

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहे॥
नानक अंम्रित एक है दूजा अंम्रित नाहे॥[20]

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

एको नाम अंम्रित है मीठा जग निरमल सच सोई॥
नानक नाम प्रभू ते पाईऐ जिन कउ धुर लिखिआ होई॥[21]

प्रभु का नाम ही एकमात्र सच्चा अमृत है। यह अमृत परमेश्वर द्वारा लिखे धुर के लेख से मिलता है।

वण तिण प्रभ संग मउलिआ संम्रथ पुरख अपार॥—जब जीवात्मा प्रभु के प्रिय भक्तों के उपदेश के अनुसार प्रभु भक्ति में मग्न हो जाती है, तो उसको नाम के अमृत से रस आने लगता है। संपूर्ण वनस्पति में एक प्रभु के ही अस्तित्व का प्रत्यक्ष आभास होने से उसे सारी वनस्पति खिली हुई प्रतीत होती है। उसको देखकर जीव के मन में सर्वसमर्थ प्रभु से मिलाप की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् है। उस अनंत का अंत पा सकना असंभव है। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

तूं करता तूं करणहार तूहै एक अनेक जीउ॥
तू समरथ तू सरब मै तूहै बुध बिबेक जीउ॥[22]

हे प्रभु! तू सबका कर्ता है। तू ही एक से अनेक होकर सब में समाया हुआ है। तू सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञाता है। आप कहते हैं:

तू समरथ पूरन पारब्रहम॥ सो धिआए पूरा जिस करम॥[23]

हे समर्थ प्रभु! तेरी भक्ति केवल तेरी कृपा द्वारा ही हो सकती है। गुरु साहिब ने यही भाव इन शब्दों में भी प्रकट किया है:

तू समरथ अकथ अगोचर जीउ पिंड तेरी रास॥
रहम तेरी सुख पाइआ सदा नानक की अरदास॥[24]

हर मिलणै नो मन लोचदा करम मिलावणहार॥—परमेश्वर की ऐसी महिमा को देखते हुए मन में उससे मिलाप का चाव पैदा होता है, पर जीव

अपने बल और बुद्धि के द्वारा उससे मिलाप नहीं कर सकता। परमेश्वर का मिलाप उसकी दया-मेहर से होता है। जिस कर्ता के हुक्म से जीवात्मा संसार में आती है, उसकी दया से ही वह संसार से मुक्त होकर उसके साथ मिलाप कर सकती है।

जिनी सखीए प्रभ पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥—बलिहारी जाएँ उन जीवात्मारूपी स्त्रियों पर जिन्हें परमेश्वररूपी पति ने अपनी कृपा से अपने साथ मिला लिया है। उनका मनुष्य जन्म सफल हो गया। वे रचना से मुक्त होकर रचयिता में समा गईं।

नानक हर जी मइआ कर सबद सवारणहार॥—गुरु अर्जुन देव जी ने पहले '*हर मिलणै नो मन लोचदा करम मिलावणहार*' में प्रभु की दया की ओर इशारा किया था। अब आप हरि के करम यानी दया करने के साधन की ओर इशारा कर रहे हैं। '*सबद सवारणहार*'—हरि की दया, शब्द यानी नाम द्वारा कार्यशील होती है। इसलिए गुरु साहिब हमारी ओर से प्रार्थना करते हैं: हे हरि! तू दयापूर्वक आत्मा को निर्मल करके अपने साथ मिलानेवाला शब्द (नाम) बख़्श दे। गुरु नानक साहिब 'जप जी' की 38वीं पउड़ी में परमेश्वर के साथ मिलाप की युक्ति को स्पष्ट करते हुए उसमें आचरण की निर्मलता (जत), यत्न की निरंतरता (धीरज), विवेक और ज्ञान (मत वेद), डर, तप, प्रेम (भउ) का महत्त्व दर्शाते हुए कहते हैं: 'घड़ीऐ सबद सची टकसाल॥ जिन कउ नदर करम तिन कार॥'[25] बाक़ी सब गुण जीवात्मा को शब्द के द्वारा निर्मल किए जाने के लिए तैयार करते हैं जबकि इसको निर्मल बनाकर परमात्मा के साथ मिलाने का कार्य शब्द (नाम) करता है और शब्द के साथ लिव जोड़ने का सौभाग्य परमेश्वर की दया-मेहर से प्राप्त होता है।

सावण तिना सुहागणी जिन राम नाम उर हार॥—मनुष्य-जन्मरूपी सावन के महीने में वे जीवात्माएँ ही सच्ची सुहागिनें हैं जिन्होंने राम नाम का हार धारण किया हुआ है। नाम देह के अंदर है। '*उर हार*'—आत्मा राम-नामरूपी अमूल्य हार को अंदर जाकर ही धारण कर सकती है। गुरु अर्जुन देव जी एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

अंम्रित बन संसार सहाई आप भए॥
राम नाम उर हार बिख के दिवस गए॥[26]

वह प्रभु नामरूपी अमृत का रूप धारण करके संसार का सहारा बन गया। जिन्हें राम-नामरूपी अमृत का हार अपने अंदर प्राप्त हो गया, वे माया के ज़हर से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। गुरु तेग़ बहादुर साहिब का कथन है:

राम नाम उर मै गहिओ जा कै सम नही कोए॥
जिह सिमरत संकट मिटै दरस तुहारो होए॥[27]

राम नाम सबसे बड़ा और ऊँचा है। कोई दूसरी वस्तु इसकी तुलना नहीं कर सकती। जिन्होंने राम नाम को अंदर धारण कर लिया, उनका आवागमन का संकट मिट गया और हरि के साथ मिलाप हो गया।

भादुइ

भादुइ भरम भुलाणीआ दूजै लगा हेत॥
लख सीगार बणाइआ कारज नाही केत॥
जित दिन देह बिनससी तित वेलै कहसन प्रेत॥
पकड़ चलाइन दूत जम किसै न देनी भेत॥
छड खड़ोते खिनै माहे जिन सिउ लगा हेत॥
हथ मरोड़ै तन कपे सिआहहो होआ सेत॥
जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेत॥
नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देत॥
से भादुइ नरक न पाईअह गुर रखण वाला हेत॥७॥

कारज=काम; **भेत**=भेद; **हेत**=प्यार, मोह; **कपे**=काँपता है; **सिआहहो**=काले से; **सेत**=सफ़ेद; **लुणै**=काटता है; **बोहिथ**=जहाज़।

सरलार्थः भादों के महीने में यह उपदेश दिया गया है कि वे जीवात्माएँ भ्रम में पड़ी हुई हैं जिनका प्रभु के बजाय संसार के साथ प्रेम लगा हुआ है। यदि वे परमेश्वर से प्रेम नहीं करतीं, तो भले ही वे

अनेक प्रकार की बहिर्मुखी पूजा-भक्तिरूपी हार-शृंगार कर लें, उनके किसी काम नहीं आएगा, क्योंकि इस तरह के हार-शृंगार परमेश्वर को रिझाकर उससे मिलाप या मुक्ति की प्राप्ति का साधन नहीं हो सकते। जिस समय इस शरीर का अंत हो जाएगा, उस समय घरवाले ही इस शरीर को प्रेत-प्रेत कहने लगेंगे। धर्मराज के दूत जीवात्मा को पकड़कर ले जाएँगे और किसी को इसका पता भी नहीं लगने देंगे कि इसे क्यों और कहाँ लेकर जा रहे हैं। जिनका इसके साथ पहले बहुत प्यार था, उनका कोई वश नहीं चलता और वे पल भर में उसका साथ छोड़कर अलग हो जाते हैं। जीव यमदूतों को देखकर डर से काँपता है, हाथ मलता है अर्थात् पछताता है और उसके चेहरे का रंग भय से सफ़ेद होना शुरू हो जाता है। अब पश्चात्ताप का क्या लाभ है? जैसा कर्मों का बीज बोया था, वैसी ही अब फ़सल काटनी पड़ेगी। इसके विपरीत जो लोग प्रभु की शरण में आ जाते हैं, वे भवसागर से पार हो जाते हैं। भादों के महीने का उपदेश है कि जिनको दयावान् गुरु मिल जाता है, वे नरकों में नहीं डाले जाते।

❖ ***भादुइ भरम भुलाणीआ दूजै लगा हेत॥***
लख सीगार बणाइआ कारज नाही केत॥

'भादुइ' के शाब्दिक अर्थ हैं: दो भा, दो रंग, दो रूप। भादों के महीने में कभी तो ज़बरदस्त ऊमस होती है और कभी एकदम बादल छा जाते हैं। यह भ्रम से भरा हुआ महीना है। गुरु साहिब ऊपर 'सावण तिना सुहागणी जिन राम नाम उर हार' का संदेश दे आए हैं। भादों के महीने में वे दुहागिनें बदक़िस्मत हैं जिन्होंने प्रभुरूपी प्रियतम को भुलाकर माया के साथ प्यार कर लिया। उन्होंने परमात्मारूपी सत्य की ओर से मुँह मोड़ लिया। वे झूठे मायामय संसार तथा इसकी शक्लों तथा पदार्थों को सत्य समझकर भ्रम का शिकार हो गईं।

भ्रम क्या है? अँधेरे के कारण रस्सी साँप होने का भ्रम पैदा करती है। दूर चमक रही रेत पानी होने का भ्रम पैदा करती है। यह मृगतृष्णा एक भ्रम है।

हिरन जैसे-जैसे उस काल्पनिक पानी की ओर दौड़ता है, पानी और आगे जाता प्रतीत होता है। इस प्रकार वह रेत को पानी समझता हुआ उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते अपने प्राण गँवा देता है।

आकाश में बादल हैं। ये बादल कहीं हाथी प्रतीत होते हैं, कहीं महल, कहीं मंदिर। जब बादल तितर-बितर हो जाते हैं, तो वहाँ न कोई हाथी होता है, न महल, न मंदिर। रात को स्वप्न में भिखारी राजा बन जाता है। जब तक स्वप्न चलता है, राजा राज्य करता है। आँख खुलते ही वह फिर भिखारी बन जाता है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि संसार, इसके पदार्थ और रिश्ते-नाते सत्य होने का आभास दिलाते हैं, परंतु ये सब वास्तव में भ्रम हैं। गुरु तेग़ बहादुर साहिब ने संसार को धुएँ का महल, रात का सपना, पानी का बुलबुला आदि कहा है।

गुरु साहिब ने बैसाख के महीने के शब्द में समझाया था, 'इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोह॥'—परमात्मा के नाम के बिना हर तरह के पुण्य कर्म मार्ग में ही छीन लिए जाते हैं। गुरु साहिब यहाँ उसी भाव को दूसरी तरह प्रकट कर रहे हैं। आप कहते हैं कि अपने पति परमेश्वर को भुलाकर माया के मोह में मग्न दुहागिनों ने नेक कर्मों और कई तरह की बहिर्मुखी भक्ति से अपना शृंगार किया, पर अंत समय इनका कौड़ी जितना भी मूल्य न पड़ा। अंत समय भ्रम का बुलबुला फट गया पर 'अब पछताए क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।' अंत समय जीवात्मा पछताती है कि मैंने शरीररूपी भ्रम को सच समझने की अज्ञानता के कारण अपना अमूल्य जन्म बरबाद कर लिया है। गुरु नानक देव जी की वाणी है: 'मिठ रस खाए सो रोग भरीजै कंद मूल सुख नाही॥ नाम विसार चलह अन मारग अंत काल पछुताही॥'[28] जो व्यक्ति नाम की कमाई की जगह दूसरी तरह की पूजा-भक्ति में लगा रहता है, उसको अंत समय पछताना पड़ता है। नाम के सिवाय कोई दूसरी वस्तु अंत समय सहायता नहीं कर सकती।

जित दिन देह बिनससी तित वेलै कहसन प्रेत॥
पकड़ चलाइन दूत जम किसै न देनी भेत॥

जो दुहागिनें भ्रम का शिकार होकर अपने पति परमेश्वर के प्रेम से ख़ाली रह गईं, उनकी क्या हालत होगी? गुरु साहिब कहते हैं: जब उनके प्राण छूट जाएँगे तब जिन सगे-संबंधियों को अपना बनाने की ख़ातिर उन्होंने सारा जन्म बरबाद कर दिया, वे उनकी देह को प्रेत-प्रेत कहकर उनसे दूर भाग जाएँगे। धर्मराज के दूत बिना किसी को कुछ पता दिए, प्रभु को भूलकर संसार से प्रेम करनेवाली जीवरूपी परित्यक्ताओं (पति द्वारा त्यागी हुई) को पकड़कर ले जाएँगे।

गुरु तेग़ बहादुर साहिब लिखते हैं:

प्रीतम जान लेहो मन माही॥
अपने सुख सिउ ही जग फांधिओ को काहू को नाही॥
सुख मै आन बहुत मिल बैठत रहत चहू दिस घेरै॥
बिपत परी सभ ही संग छाडित कोऊ न आवत नेरै॥
घर की नार बहुत हित जा सिउ सदा रहत संग लागी॥
जब ही हंस तजी इह कांइआ प्रेत प्रेत कर भागी॥
इह बिध को बिउहार बनिओ है जा सिउ नेह लगाइओ॥
अंत बार नानक बिन हर जी कोऊ काम न आइओ॥[29]

गुरु साहिब सचेत करते हैं कि अंत समय दूसरे सगे-संबंधी तो मुँह फेर ही लेते हैं, लेकिन जो स्त्री पल भर का भी वियोग बर्दाश्त नहीं करती थी, वह भी इसे प्रेत समझकर इससे दूर भागती है। उस विपत्ति के समय कोई किसी के काम नहीं आता।

कबीर साहिब की वाणी है:

जब लग तेल दीवे मुख बाती तब सूझै सभ कोई॥
तेल जले बाती ठहरानी सूंना मंदर होई॥
रे बउरे तुहे घरी न राखै कोई॥
तूं राम नाम जप सोई॥
का की मात पिता कहो का को कवन पुरख की जोई॥

घट फूटे कोऊ बात न पूछै काढहो काढहो होई॥
देहुरी बैठी माता रोवै खटीआ ले गए भाई॥
लट छिटकाए तिरीआ रोवै हंस इकेला जाई॥
कहत कबीर सुनहो रे संतहो भै सागर कै ताई॥
इस बंदे सिर जुलम होत है जम नही हटै गुसाई॥[30]

आप समझाते हैं कि माता, पिता, बहन, भाई, स्त्री आदि में से कोई भी सगा-संबंधी अंत समय जीव की सहायता नहीं कर सकता और इसे यमों की मार से नहीं बचा सकता। इनसान को चाहिए कि परमेश्वर के प्यारे संतों की संगति में परमेश्वर की भक्ति करे, ताकि उसे इस लोक में सुख मिले और परलोक में भी शोभा प्राप्त हो।

छड खड़ोते खिनै माहे जिन सिउ लगा हेत॥
हथ मरोड़ै तन कपे सिआहहो होआ सेत॥
जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेत॥

जिन संबंधियों के मोह में फँसकर जीव ने परमेश्वर को भुला दिया, वे सब पल भर में साथ छोड़ गए। जब यमदूत जीवात्मा की इच्छा के विरुद्ध इसको शरीर में से निकालते हैं तो यह पछताता है, शरीर काँपता है और चेहरे का रंग भय और पीड़ा से सफ़ेद पड़ जाता है। मृत्यु के बाद इसे किए हुए कर्मों के कारण यमों की मार पड़ती है और नरकों के दु:ख भी भोगने पड़ते हैं। यह जीवन तो कर्मरूपी खेत है जहाँ 'जो बीजो वही काटो' का अटल नियम कार्यशील है।

नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देत॥
से भादुइ नरक न पाईअह गुर रखण वाला हेत॥

गुरु साहिबान की वाणी की यह विशेषता है कि आप सिर्फ़ जीवात्मा के सामने खड़े संकट ही बयान नहीं करते, बल्कि इन संकटों का समाधान भी समझाते हैं। गुरु साहिब सबसे पहले '*प्रभ सरणागती*' और '*चरण बोहिथ*'

का उपदेश देते हैं। आप कहते हैं कि जीवन को सफल बनाना और अंत समय के दु:खों से बचना चाहते हो, तो परमेश्वर की शरण में आ जाओ। शरण लेने का अर्थ है अपने बल, बुद्धि तथा सब सगे-संबंधियों का सहारा त्यागकर अपने-आपको पूरी तरह प्रभु को समर्पण कर देना तथा पूरे विश्वास के साथ उसके हुक्म को स्वीकार कर लेना। वह परमेश्वर केवल सर्वशक्तिमान् ही नहीं, कृपा सिंधु और क्षमाशील सुखदाता भी है। आप कहते हैं:

जो सरण आवै तिस कंठ लावै इह बिरद सुआमी संदा॥
बिनवंत नानक हर कंत मिलिआ सदा केल करंदा॥[31]

परमात्मा का स्वभाव और उसकी मर्यादा यही है कि वह शरण में आए की लाज ज़रूर रखता है। वह शरणागत को अपने साथ मिलाकर चिंतामुक्त कर देता है और आनंद रूप बना लेता है। वह सर्वसमर्थ अपनी दया कैसे बाँटता है? '*से भादुइ नरक न पाईअह गुर रखण वाला हेत॥*'—गुरु के साथ प्रेम करनेवाला व्यक्ति नरकों में नहीं जाता। कबीर साहिब का कथन है:

सोना काई नहिं लगै, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुर-भगत, कबहूँ नरक न जाय॥[32]

जिस शिष्य को पूरा गुरु अपनी शरण में ले लेता है, वह जीवन काल में नाम की कमाई द्वारा अपने सारे कर्म नष्ट न भी कर सका हो, तो भी धर्मराज उसे नरकों में नहीं भेज सकता, क्योंकि पूरा गुरु उसके कर्मों के भुगतान का ज़िम्मेदार होता है।

गुरु नानक साहिब वाणी के एक अन्य शब्द में कहते हैं:

सजण सेई नाल मै चलदिआ नाल चलंन्ह॥
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन॥[33]

जिन जीवों को संत-सतगुरु अपनी शरण में ले लेता है, अंत समय शब्द रूप में वह उनके साथ होकर उन्हें धर्मराज से छुड़ा लेता है।

गुरु साहिब ने एक बात '*चरण बोहिथ*' की और दूसरी '*गुर रखण*' वाला हेत की कही है। कोई व्यक्ति अपने-आप सागर से पार नहीं जा सकता। सागर से पार जाने के लिए '*बोहिथ*' अर्थात् जहाज़ की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार संसाररूपी सागर से पार जाने के लिए जीवात्मा को परमात्मा के चरणों के जहाज़ की आवश्यकता है।

जीवात्मा परमात्मा के चरण कमलों का सहारा कैसे ले? गुरु साहिब '*गुर रखण वाला हेत*' कहते हुए उपदेश देते हैं कि परमात्मा के चरण कमलों की शरण का अर्थ गुरु की शरण और गुरु का प्रेम है।

असुन

असुन प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हर जाए॥
मन तन पिआस दरसन घणी कोई आण मिलावै माए॥
संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाए॥
विण प्रभ किउ सुख पाईऐ दूजी नाही जाए॥
जिंन्ही चाखिआ प्रेम रस से त्रिपत रहे आघाए॥
आप तिआग बिनती करह लेहो प्रभू लड़ लाए॥
जो हर कंत मिलाईआ सि विछुड़ कतहे न जाए॥
प्रभ विण दूजा को नही नानक हर सरणाए॥
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हर राए॥८॥

असुन=असोज (आश्विन) का महीना; **घणी**=बहुत ज़्यादा; **पाए**=पाँव; **जाए**=स्थान; **त्रिपत**=तृप्त; **आप**=हौंमैं, अहं।

सरलार्थ: असोज महीने के वर्णन में उपदेश है कि जीव के मन में प्रभु के प्रेम की उमंग उठी है। भक्त सोचता है कि वह उस परमेश्वर से कैसे मिले? हे मेरी माँ! मेरे तन-मन को दर्शन की बहुत प्यास लगी हुई है। मेरी विनती है कि कोई आकर मुझे हरि से मिला दे। संतजन प्रभु प्रेम में सहायक माने जाते हैं; इसलिए मैं चाहती हूँ कि उनके चरणों से लग जाऊँ। उस प्रभु के बिना सुख कैसे मिल सकता है? उसके सिवाय सुख का कोई स्थान ही नहीं। जिन्होंने उस प्रभु

के प्रेम का रस चख लिया, वे तृप्त हो गए। हमें अहंभाव त्यागकर विनती करनी चाहिए कि वह प्रभु हमें भी अपनी शरण में ले ले। जिन आत्माओं को वह हरिरूपी पति अपने साथ मिला लेता है, उनको फिर उससे बिछुड़कर कहीं और नहीं जाना पड़ता। उस प्रभु के सिवाय कोई रक्षक या सहारा नहीं है, इसलिए मैंने उसकी शरण ली है। जिन जीवात्माओं पर हरि की मेहर हो जाती है, वे असोज (आश्विन) के महीने में सुखी रहती हैं।

❖ ***असुन प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हर जाए॥***
मन तन पिआस दरसन घणी कोई आण मिलावै माए॥

गुरु साहिब ने भादों मास के शब्द में उन दुहागिनों की दर्दनाक अवस्था का वर्णन किया था जो अपने पति परमेश्वर के प्रेम से वंचित रह गईं। अब उन सुहागिनों की हालत बयान कर रहे हैं जिनके हृदय में पति परमेश्वर की प्रीत बस जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि अपने पति परमेश्वर के प्रेम के रंग में रँगी भाग्यशाली जीव स्त्रियों के तन-मन में अपने पति परमेश्वर के दर्शन की चाह हिलोरें मारती है। वे चाहती हैं कि कोई ऐसा प्रभु का प्रेमी मिल जाए जो जल्दी से जल्दी उनके प्रियतम प्रभु से मिलाप करवा दे।

संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाए॥—गुरु साहिब ने भादों माह के शब्द में फ़रमाया था: 'लख सीगार बणाइआ कारज नाही केत॥'—मन के अनुसार की गई अनेक प्रकार की भक्ति परमात्मा से मिलाप का साधन नहीं बन सकती। उसके साथ मिलाप का साधन सच्चा प्रेम है। जिनके हृदय में सच्चा प्रेम जाग्रत हो जाता है और परमेश्वर के दर्शनों की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है, वे प्रभु की कृपा से संतजनों की शरण में पहुँच जाते हैं। संतजन ही परमेश्वर से बिछुड़ी हुई आत्मा का उससे मिलाप करवाते हैं।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

नदरी आवै तिस सिउ मोह॥ किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहे॥[34]

जीवात्मा अपनी विडंबना की ओर इशारा करती हुई कहती है: हे निराकार, अविनाशी प्रभु! मेरा दृश्यमान संसार के साथ मोह पैदा हो चुका है।

तू अदृश्य और निराकार है, इसलिए मैं तुझसे कैसे प्रेम करूँ? इस संकट का समाधान क्या है?

कर किरपा मोहे मारग पावहो॥ साधसंगत कै अंचल लावहो॥[35]

हे प्रभु! तू कृपा करके मुझे पूर्ण साधु की संगति बख़्श दे, ताकि मैं उसके बताए मार्ग पर चलती हुई तुझ तक पहुँच जाऊँ। गुरु साहिब के कहने का भाव यह है कि प्रभु का प्रेम पूर्ण संतों की संगति और दया से प्राप्त होता है। गुरु रामदास जी का कथन है:

बिन गुर प्रेम न लभई जन वेखहो मन निरजास॥
हर गुर विच आप रखिआ हर मेले गुर साबास॥[36]

संत-सतगुरु के बिना प्रभु का प्रेम अप्राप्य है। गुरु प्रभु में समाया है और प्रभु गुरु में समाया है। वास्तविक महिमा उस संत-सतगुरु की है जो मन में प्रभु का प्रेम पैदा करके जीवात्मारूपी स्त्री को उसके पति परमेश्वर के साथ मिला देता है।

विण प्रभ किउ सुख पाईऐ दूजी नाही जाए॥
जिंन्ही चाखिआ प्रेम रस से त्रिपत रहे आघाए॥

अपने पति परमेश्वर के साथ मिलाप के बिना आत्मा को सच्ची शांति प्राप्त नहीं हो सकती। जब जीवात्मा अपने पति परमेश्वर के प्रेम के रंग में रँगी जाती है, तो इसकी सब तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं और यह तृप्त हो जाती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

प्रेम पदारथ नाम है भाई माइआ मोह बिनास॥
तिस भावै ता मेल लए भाई हिरदै नाम निवास॥[37]

नाम प्रेम रूप है। नाम माया-मोह का विनाश करता है। प्रभु की कृपा से जिसके हृदय में नाम बस जाता है उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है।

आप तिआग बिनती करह लेहो प्रभू लड़ लाए॥
जो हर कंत मिलाईआ सि विछुड़ कतहे न जाए॥

जीवात्मा अहंकार का त्याग करके विनती करती है: हे परमेश्वर! मैं ग़रीब, निर्बल, बुद्धिहीन आपकी शरण में आ गई हूँ। आप ग़रीब-निवाज़ हैं; जिसका कोई मान नहीं करता आप उसे मान देनेवाले हैं; निराश्रय के आश्रय हैं। आप क्षमाशील और दयालु हैं। आप दया करके मुझे अपनी शरण में ले लें।

सच्ची विनती करने के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है। जिन्होंने घर-बार, राज-पाट आदि त्याग दिया, लेकिन मान, अहंकार, ख़ुदी को नहीं त्यागा, उन्होंने वास्तव में कुछ भी नहीं त्यागा। जिन्होंने अहंकार को त्याग दिया, उन्होंने सबकुछ त्याग दिया।

परमेश्वररूपी पति जिन जीवात्माओं को अपने साथ मिला लेता है, उनको फिर उसके वियोग का दु:ख नहीं सहना पड़ता। उनको सदा परमेश्वर के मिलाप का आनंद प्राप्त होता रहता है। जिसे वह सर्वशक्तिमान् अपने साथ मिला ले, फिर उसे प्रभु से कौन अलग कर सकता है?

प्रभ विण दूजा को नही नानक हर सरणाए॥
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हर राए॥

हे प्रभु! मेरा तेरे सिवाय कोई आसरा, कोई सहारा नहीं है। मैं सब सहारे त्यागकर तेरी शरण में आ गई हूँ। तू मुझपर दया करके अपने साथ मिला ले, ताकि मेरा मनुष्य जन्म सफल हो जाए और यह जीवन सुख-शांति से भर जाए।

कतिक

कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग॥
परमेसर ते भुलिआं विआपन सभे रोग॥
वेमुख होए राम ते लगन जनम विजोग॥
खिन मह कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥
विच न कोई कर सकै किस थै रोवह रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुर संजोग॥
वडभागी मेरा प्रभ मिलै तां उतरह सभ बिओग॥

नानक कउ प्रभ राख लेह मेरे साहिब बंदी मोच॥
कतिक होवै साधसंग बिनसह सभे सोच॥९॥

काहू जोग=किसी को; **बंदी मोच**=बंधन मुक्त करनेवाले; **बिनसह**=विनष्ट हो जाती है; **सोच**=चिंता।

सरलार्थ: कार्तिक मास के इस शब्द में यह उपदेश दिया गया है कि जीवन में जो भी दु:ख या संकट आते हैं, अपने पिछले कर्मों के फल होते हैं। इसके लिए किसी दूसरे को दोष नहीं दिया जा सकता। जो परमेश्वर को भुला देते हैं, उन्हें सब प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। जो परमेश्वर से विमुख हो जाते हैं, उन्हें जन्म-जन्मान्तरों तक वियोग का दु:ख भोगना पड़ता है। माया के सभी भोग क्षण भर में कड़वे हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कोई बिचौलिया नहीं बन सकता, बीच-बचाव नहीं कर सकता। फिर रोज़-रोज़ किसको अपनी व्यथा सुनाएँ? अपने बल से कुछ नहीं हो सकता, होता वही है जो धुर से भाग्य में लिखा होता है। श्रेष्ठ भाग्य से यदि वह प्रभु मिल जाए तो उसके वियोग से पैदा हुए सब दु:ख दूर हो जाते हैं। हे मुक्तिदाता प्रभु! तू मुझे भी बंधन मुक्त कर दे। कार्तिक के महीने का यही उपदेश है कि साधु की संगति प्राप्त हो जाए तो सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं।

❖ ***कतिक करम कमावणे दोस न काहू जोग॥***
परमेसर ते भुलिआं विआपन सभे रोग॥

कार्तिक के महीने के शब्द में उन अभागे जीवों की दुर्दशा का वर्णन करते हैं जो परमेश्वर को भुला देने के कारण कर्म और फल के जाल में फँसे रहते हैं। ऐसे लोग मन के अनुसार अनेक कर्म करते हैं जो उनके पैरों की ज़ंजीरें बन जाते हैं। उन्हें इन कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार संसार में जन्म लेना पड़ता है।

गुरु नानक साहिब का कथन है:

ददै दोस न देऊ किसै दोस करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोस न दीजै अवर जना॥[38]

आप कहते हैं कि मनुष्य जो भी दु:ख सहता है, वह उसके अपने ही पिछले कर्मों का फल है। यहाँ गुरु अर्जुन देव जी ने भी '*विआपन सभे रोग*' कहते हुए यही चेतावनी दी है। एक अन्य शब्द में गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

दुक्रित सुक्रित मंधे संसार सगलाणा॥
दुहहूं ते रहत भगत है कोई विरला जाणा॥[39]

तीन गुणों की सीमा में संसार के सब लोग अच्छाई और बुराई, पुण्य और पाप के द्वैत भाव में फँसकर कर्मों का फल भोग रहे हैं। कोई विरला सच्चा गुरुमुख ही इस द्वैत से ऊपर उठकर सहज अवस्था प्राप्त करने में सफल होता है।

वेमुख होए राम ते लगन जनम विजोग॥
खिन मह कउड़े होए गए जितड़े माइआ भोग॥

जो लोग परमेश्वर से विमुख रहते हैं, वे अनंत जन्मों तक परमात्मा से बिछुड़े हुए चौरासी के दु:ख भोगते रहते हैं। जिन मायामय भोगों को वे मीठा और स्वादिष्ट समझते हैं, वे क्षणभर में कड़वे और दु:खदायक हो जाते हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं:

देख फरीदा जि थीआ सकर होई विस॥
सांई बाझहो आपणे वेदण कहीऐ किस॥[40]

जो भोग जीव को सुखदायक प्रतीत होते हैं, वे वास्तव में ज़हरीले और विनाशकारी हैं। आप प्रार्थना करते हैं कि मैं अपना दु:ख अपने प्रीतम के सिवा किससे कहूँ?

गुरु अर्जुन देव जी ने सहसक्रिति सलोकों में विस्तारपूर्वक पाँच विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विनाशकारी प्रभावों पर प्रकाश डाला है।

महात्मा समझाते हैं कि मनुष्य यह समझता है कि वह भोगों को भोगता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि भोग उसे भोगते हैं। अफ़ीमची समझता है

कि वह अफ़ीम खाता है, परंतु वास्तव में अफ़ीम उसे खा जाती है। शराबी समझता है कि वह शराब पीता है, लेकिन सच्चाई यह है कि शराब उसको पी जाती है। गुरु नानक साहिब का कथन है: 'काम क्रोध काइआ कउ गालै॥ जिउ कंचन सोहागा ढालै॥'[41] जिस प्रकार सोहागा सोने को ढाल देता है, उसी प्रकार काम-क्रोध काया को गला देते हैं। ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सुखदायी होने के बजाय जीवात्मा के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विनाश का कारण बन जाते हैं।

विच न कोई कर सकै किस थै रोवह रोज॥
कीता किछू न होवई लिखिआ धुर संजोग॥

जब एक बार इनसान मनमरज़ी के कर्म कर बैठता है तो उनका फल भोगने से नहीं बच सकता। धर्मराज के दरबार में कोई बीच-बचाव करके उसे छुटकारा नहीं दिलवा सकता। अपने ही किए हुए कर्मों के अनुसार जो प्रारब्ध विधाता लिख देता है, उसको कोई नहीं टाल सकता। यदि कोई अपराधी जज से कहे कि मुझसे ग़लती से यह कर्म हो गया है, इसलिए मुझे माफ़ कर दो, तो जज कहता है कि हे भलेमानस! अब तो किए हुए कर्म की सज़ा भोग ले, आगे के लिए सावधान रहना। धर्मराज के दरबार में न सिफ़ारिश चलती है, न रिश्वत।

ओथै सचे ही सच निबड़ै चुण वख कढे जजमालिआ॥
थाउ न पाइन कूड़िआर मुह काल्है दोजक चालिआ॥[42]

परमात्मारूपी सत्य को भुलाकर मायारूपी झूठ के साथ प्यार करनेवालों के मुँह काले करके धर्मराज उन्हें नरकों में भेजने का फ़ैसला सुना देता है।

वडभागी मेरा प्रभ मिलै तां उतरह सभ बिओग॥
नानक कउ प्रभ राख लेह मेरे साहिब बंदी मोच॥
कतिक होवै साधसंग बिनसह सभे सोच॥

यदि परमात्मा से मिलाप हो जाए तो वियोग के कारण उत्पन्न होनेवाले हर तरह के शोक-संताप मिट जाते हैं। गुरु साहिब विनती करते हैं: हे बंधन

मुक्त करनेवाले प्रभु! तू दया मेहर करके हमें अपनी शरण में ले ले और हमारा सहारा बनकर हमें भी बंधन मुक्त कर दे। गुरु साहिब कहते हैं कि साधु की संगति मिल जाए तो शोक-संताप और नरकों के दु:खों की सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं। संत-सतगुरु अपनी शरण में आए जीव को माया के मोह से मुक्त करके, उसे परमेश्वर की भक्ति द्वारा परमेश्वर के साथ मिला देते हैं। इससे जीव की सब चिंताएँ मिट जाती हैं और उसे परमात्मा के मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

मंघिर

मंघिर माहे सोहंदीआ हर पिर संग बैठड़ीआह॥
तिन की सोभा किआ गणी जि साहिब मेलड़ीआह॥
तन मन मउलिआ राम सिउ संग साध सहेलड़ीआह॥
साध जना ते बाहरी से रहन इकेलड़ीआह॥
तिन दुख न कबहू उतरै से जम कै वस पड़ीआह॥
जिनी राविआ प्रभ आपणा से दिसन नित खड़ीआह॥
रतन जवेहर लाल हर कंठ तिना जड़ीआह॥
नानक बांछै धूड़ तिन प्रभ सरणी दर पड़ीआह॥
मंघिर प्रभ आराधणा बहुड़ न जनमड़ीआह॥१०॥

मंघिर=अगहन (मघ्घर); **गणी**=गिनती करना भाव वर्णन करना; **मउलिआ**=खिल गया, हरा-भरा हो गया; **बाहरी**=बिना; **खड़ीआह**=खड़ी; **बांछै**=माँगता है; **बहुड़**=दोबारा।

सरलार्थ: अगहन के महीने में यह उपदेश है कि वही जीवात्माएँ सुंदर लगती हैं जो हरिरूपी पति के पास बैठी हैं। जिनको मालिक ने स्वयं अपने साथ मिला लिया है, उनकी शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। जिनका साधुओं के साथ प्रेम हो गया, उनका प्रभु से मिलाप हो गया, उनका तन-मन प्रफुल्लित हो गया, पर जो साधुजनों से दूर रह गईं, वे अकेली रह गईं, उनका प्रभुरूपी पति के साथ मिलाप न हुआ। जिनको साधु का संग न मिला, उनके वियोग का दु:ख कभी दूर नहीं हो सकता और वे यम के वश में पड़ जाती हैं।

जिन्होंने अपने हरि से मिलाप का सुख पाया है, वे दूसरों से अलग पहचानी जाती हैं। उन्होंने गले में हरि नाम के रत्न, जवाहर, लाल पहने हुए हैं। इस प्रकार जो प्रभु के दर पर पहुँचकर उसकी शरण में आ गईं हैं, नानक उनके चरणों की धूलि की कामना करता है। वे मनुष्य-जन्मरूपी अगहन के महीने में प्रभु की आराधना से पुनर्जन्म के बंधन से मुक्ति पा लेती हैं।

❖ ***मंघिर माहे सोहंदीआ हर पिर संग बैठड़ीआह॥***
तिन की सोभा किआ गणी जि साहिब मेलड़ीआह॥

गुरु साहिब कार्तिक के महीने के शब्द में 'परमेसर ते भुलिआं विआपन सभे रोग॥' का उपदेश दे आए हैं। यहाँ समझा रहे हैं कि जो जीवात्माएँ परमेश्वर की दया से उसके साथ मिल जाती हैं, वे शोभायमान होती हैं, वे प्यार और सम्मान के योग्य हैं।

परमेश्वर तो सदा मनुष्य के साथ है, लेकिन मनुष्य परमेश्वर के साथ नहीं है, यही उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जिस जीवात्मारूपी स्त्री को अपने पति परमेश्वर से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, उसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। इस दुनिया में भी बड़े लोगों के साथ मेल-मिलाप रखनेवाले को हर ओर से मान-सम्मान मिलता है। इसी प्रकार जिसको लोक और परलोक, दोनों के स्वामी – उस परमपिता परमेश्वर का साथ प्राप्त हो जाए, उसकी लोक-परलोक दोनों में जय-जयकार होती है। गुरु साहिब ने सुखमनी में ऐसे प्रभु भक्तों को भक्त, साधुजन, गुरुमुख, संत, ब्रह्मज्ञानी आदि कहा है। आप कहते हैं कि प्रभु की तरह उसमें समा चुके ऐसे पूर्ण पुरुषों की बड़ाई बयान से बाहर है।

तन मन मउलिआ राम सिउ संग साध सहेलड़ीआह॥—गुरु साहिब कहते हैं कि जो सौभाग्यशाली जीवात्माएँ संतों की शरण में आ गईं, उनका तन-मन सदा राम के प्रेम के रंग में रँगा रहता है। वे दुनियादारों की संगति त्यागकर सदा प्रभु के प्यारों की संगति में रहती हैं। इस प्रकार वे भी साधुरूप हो जाती हैं।

साध जना ते बाहरी से रहन इकेलड़ीआह॥
तिन दुख न कबहू उतरै से जम कै वस पड़ीआह॥

जिनको संतों की संगति नहीं मिलती, वे माया के रंग में रँगी रहती हैं जिसके कारण उनका प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप नहीं होता। वे प्रियतम के वियोग में दु:खी रहती हैं। उनको इस लोक में भी सच्चा सुख नहीं मिलता और मृत्यु के बाद भी यमदूतों के हाथों वे सताई जाती हैं। गुरु साहिब की वाणी है:

जम जम मरै मरै फिर जंमै॥ बहुत सजाए पइआ देस लंमै॥
जिन कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुख सहै पराणीआ॥[43]

जो अभागा जीव अपने कर्ता से मिलाप नहीं करता, वह चौरासी के लंबे चक्कर में पड़ा हुआ दु:खों की चक्की में पिसता रहता है। आप कहते हैं:

पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईल फड़े फड़ कुठे॥
दोजक पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ॥
संग न कोई भईआ बेबा॥ माल जोबन धन छोड वञेसा॥
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ॥[44]

जो लोग प्रभु को भुलाकर पाप कर्मों में लिप्त रहते हैं, उन्हें यमदूतों के हाथों अनेक प्रकार के दु:ख सहने पड़ते हैं। उनसे हर कर्म का हिसाब माँगा जाता है। वहाँ न सगे-संबंधी सहायता कर सकते हैं, न धन-दौलत और न ही मान-बड़ाई। उनकी ऐसी दुर्गति होती है जैसे कोल्हू में पिस रहे तिलों की होती है।

जिनी राविआ प्रभ आपणा से दिसन नित खड़ीआह॥
रतन जवेहर लाल हर कंठ तिना जड़ीआह॥
नानक बांछै धूड़ तिन प्रभ सरणी दर पड़ीआह॥
मंघिर प्रभ आराधणा बहुड़ न जनमड़ीआह॥

प्रभुरूपी प्रियतम से बिछुड़ी हुई आत्माओं को अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं। परंतु जो अपने प्रियतम के साथ प्रेम करती हैं, वे सदा उसके संग का सुख भोगती हैं। वे सबसे ऊँची और महान् हैं। उनकी पहचान कुछ अलग-सी ही है। कोई दूसरा उनकी बराबरी नहीं कर सकता। उनके गले में हरि के नामरूपी रत्न, जवाहर, लाल सुशोभित होते हैं अर्थात् वे सदा प्रियतम के संग का सुख पाती हैं। उनको पल भर के लिए भी उसका वियोग सहन नहीं करना पड़ता। गुरु साहिब कहते हैं कि जिन भाग्यशाली सुहागिनों को अपने पति परमेश्वर की शरण प्राप्त हो गई है, मैं उनकी चरण धूलि का इच्छुक हूँ अर्थात् उनका जितना सम्मान किया जाए, कम है। जो भाग्यशाली सुहागिनें प्रभु भक्ति में लग जाती हैं, वे जन्म-मरण के चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाती हैं। गुरु साहिब बार-बार पति परमेश्वर के मिलाप की महिमा करते हैं, ताकि जीवात्मा को उसके साथ मिलाप करने की प्रेरणा मिले।

पोख

पोख तुखार न विआपई कंठ मिलिआ हर नाह॥
मन बेधिआ चरनारबिंद दरसन लगड़ा साह॥
ओट गोविंद गोपाल राए सेवा सुआमी लाह॥
बिखिआ पोह न सकई मिल साधू गुण गाह॥
जह ते उपजी तह मिली सची प्रीत समाह॥
कर गह लीनी पारब्रहम बहुड़ न विछुड़ीआह॥
बार जाउ लख बेरीआ हर सजण अगम अगाह॥
सरम पई नाराइणै नानक दर पईआह॥
पोख सोहंदा सरब सुख जिस बखसे वेपरवाह॥११॥

तुखार=पाला, शीत; **नाह**=पति; **बेधिया**=बिंध गया भाव लीन हो गया; **चरनारबिंद**=चरण कमल; **साह**=परमात्मारूपी पति या स्वामी; **लाह**=लाभ; **बिखिआ**=मायारूपी ज़हर; **पोह**=भेदना भाव असर करना; **कर**=हाथ; **अगम**=पहुँच से परे; **अगाह**=अगाध; **सरम**=लाज; **सोहंदा**=सुंदर, सुहावना।

सरलार्थ: पूस सर्दी का महीना होता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि उन आत्मारूपी स्त्रियों को दु:खों की सर्दी नहीं लगती जिन्हें उनके परमेश्वररूपी पति ने अपने गले से लगा लिया है। उनका मन प्रभु के चरण-कमलों से बिंध गया है और उन्हें पति के दर्शन हो गए हैं। उन्हें उस गोविन्द, गोपाल, स्वामी का आश्रय है और उसकी सेवा करने का लाभ प्राप्त है। माया का ज़हर उन पर असर नहीं कर सकता और वे साधु की शरण में आकर स्वामी के गुण गाती हैं, स्वामी की भक्ति करती हैं। वे स्वामी की सच्ची प्रीति में मग्न हैं, इसलिए अपने स्रोत में ही जा मिली हैं। उस पारब्रह्म ने स्वयं उनकी बाँह पकड़ ली है, इसलिए उनका पुन: उससे वियोग नहीं होगा। मैं उस अगम, अथाह, हरिरूपी साजन पर लाखों बार बलिहारी जाती हूँ। वह नारायण शरणागत वत्सल है, वह अपने दर पर पड़े जीवों की लाज रख लेता है। गुरु साहिब कहते हैं कि वह बेपरवाह प्रभु जिस पर बख़्शिश कर देता है, उसको सभी सुखों से भरपूर पूस का महीना सुहावना लगता है।

❖ ***पोख तुखार न विआपई कंठ मिलिआ हर नाह॥***
मन बेधिआ चरनारबिंद दरसन लगड़ा साह॥

जिन सुहागिनों का प्रभु प्रियतम के साथ मिलाप हो गया, वे माया की सर्दी से, माया के संताप से सदा के लिए मुक्त हो गईं। उनका परमेश्वर से वियोग, जन्म-मरण और नरकों का दु:ख दूर हो गया। वे संसाररूपी दु:ख की नगरी से निकलकर आनंद रूप परमेश्वर के धाम में पहुँच गईं। गुरु साहिब का अभिप्राय यह है कि जो प्रभु भक्त, प्रभु के साथ लिव जोड़ लेते हैं, वे जीवन में हर प्रकार की परिस्थितियों से ऊपर उठ जाते हैं। वे दु:ख-सुख, मान-अपमान, अमीर-ग़रीब की द्वैत से ऊपर उठकर पूर्ण अद्वैत की सहज अवस्था में स्थिर हो जाते हैं। ऐसी सुहागिनों का ध्यान अन्य सब वस्तुओं से निकलकर उस प्रियतम के चरणों के साथ जुड़ा रहता है। वे अपने प्रियतम के दर्शन में इतनी मग्न हो जाती हैं कि पल भर के लिए भी उनका ध्यान दूसरी ओर नहीं जाता।

ओट गोविंद गोपाल राए सेवा सुआमी लाह॥
बिखिआ पोह न सकई मिल साधू गुण गाह॥

ऐसी सुहागिनें अन्य सभी सहारे त्यागकर एक परमेश्वर की शरण में आ जाती हैं। वे सदा उसकी सेवा या भक्ति का लाभ उठाना चाहती हैं। वे हर समय परमेश्वर भक्ति में ही अपना मंगल और कल्याण मानती हैं। जो सौभाग्यशाली आत्माएँ संतों की संगति में पहुँचकर परमेश्वर की सच्ची भक्ति में लग जाती हैं, माया का विष उन पर असर नहीं कर सकता।

जह ते उपजी तह मिली सची प्रीत समाह॥
कर गह लीनी पारब्रहम बहुड़ न विछुड़ीआह॥

रचना के समय से परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा, पुन: उसी में समा जाती है और सदा उसके प्रेम के रंग में रँगी रहती है।

जिन्हें वह परमेश्वर दया-मेहर का हाथ बढ़ाकर अपने साथ मिला लेता है, उन्हें फिर कभी भी उसके वियोग का दर्द सहन नहीं करना पड़ता।

कई बार मन में डर पैदा होता है कि परमेश्वर की दया-मेहर और उसकी पूजा-भक्ति या नाम की कमाई के द्वारा उसके साथ मिलाप हो भी गया तो कहीं वह प्रभु हमें दोबारा रचना में तो नहीं भेज देगा। गुरु नानक साहिब कहते हैं: 'मिलिआ होए न वीछुड़ै जे मिलिआ होई॥ आवा गउण निवारिआ है साचा सोई॥'[45] – जिसका एक बार उस सच्चे परमेश्वर के साथ मिलाप हो जाता है, वह हमेशा के लिए आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

बार जाउ लख बेरीआ हर सजण अगम अगाह॥—आप कहते हैं कि मैं उस अलख-अगम, अनंत-अथाह प्रभु पर बार-बार बलिहारी जाता हूँ। वह प्रभु बेजोड़ और बेमिसाल है, उसकी तुलना उसके अतिरिक्त किसी दूसरे से नहीं की जा सकती। जिस आत्मारूपी पत्नी का ऐसे अद्भुत, अलौकिक पति से पुनर्मिलन हो जाए, वास्तव में उसके कितने ऊँचे भाग्य हैं!

सरम पई नाराइणै नानक दर पईआह॥
पोख सोहंदा सरब सुख जिस बखसे वेपरवाह॥

जो जीवात्मारूपी स्त्रियाँ बाक़ी सब सहारे त्यागकर उस पूर्ण पुरुष की शरण में आ जाती हैं, वह उनकी लाज अवश्य रखता है और उन पर दया-मेहर करके उनको अपने साथ मिला लेता है। जिस जीवात्मा को वह बेपरवाह प्रभु बख़्शकर अपने साथ मिला लेता है, उसके लिए मनुष्य-जन्मरूपी पूस का महीना सर्वोत्तम सुख, प्रफुल्लता और आनंद का स्रोत बन जाता है। ऐसी आत्मा का संसार में आने का उद्देश्य पूरा हो जाता है। वह माया के बंधनों और आवागमन के दु:खों से मुक्त होकर सदा के लिए आनंद रूप प्रभु में समा जाती है।

माघ

माघ मजन संग साधूआ धूड़ी कर इसनान॥
हर का नाम धिआए सुण सभना नो कर दान॥
जनम करम मल उतरै मन ते जाए गुमान॥
काम करोध न मोहीऐ बिनसै लोभ सुआन॥
सचै मारग चलदिआ उसतत करे जहान॥
अठसठ तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवान॥
जिस नो देवै दइआ कर सोई पुरख सुजान॥
जिना मिलिआ प्रभ आपणा नानक तिन कुरबान॥
माघ सुचे से कांढीअह जिन पूरा गुर मिहरवान॥१२॥

मजन=स्नान; **सुआन**=कुत्ता; **परवान**=स्वीकार्य; **सुजान**=बुद्धिमान; **कांढीअह**=कहे जाते हैं, कहलाते हैं।

सरलार्थ: गुरु साहिब उपदेश देते हैं: मेरे प्यारे! माघरूपी जीवन से पूरा लाभ उठाना चाहते हो तो, सदैव साधु की संगति में रहो और उसकी चरण धूलि में स्नान करो। सुरत द्वारा अन्तर में नाम को सुनो; ख़ुद भी ध्यान हरि के नाम के साथ जोड़ो और दूसरों को भी हरि का नाम जपने की प्रेरणा दो। नाम के अभ्यास से मन पर चढ़ी जन्मों-जन्मों के कर्मों की मैल उतर जाएगी और अहंकार का नाश हो जाएगा। इससे काम, क्रोध और मोह से छुटकारा मिल जाएगा तथा

लोभरूपी कुत्ते का नाश हो जाएगा। जो कोई (प्रभु-प्राप्ति के इस) सच्चे मार्ग पर चलता है, सारा संसार उसकी स्तुति करता है। ऐसे समझना चाहिए कि उसे 68 तीर्थों के स्नान, हर प्रकार के दान-पुण्य, जीव दया आदि श्रेष्ठ कर्मों का फल प्राप्त हो गया है। जिसको प्रभु स्वयं दया करके इस मार्ग पर चलने का सौभाग्य प्रदान करता है, ऐसा पुरुष ही बुद्धिमान् या ज्ञानी है। जिन्हें अपना प्रभु मिल गया है, नानक उन पर बलिहारी है। माघरूपी मनुष्य जन्म में वे पुरुष ही निर्मल कहे जा सकते हैं, जिन पर पूर्ण गुरु ने कृपा कर दी है।

❖ गुरु साहिब द्वारा किए गए माघ माह के वर्णन में उपदेशात्मक भाव प्रबल है। आप परमेश्वर प्राप्ति की इच्छुक आत्मा को वे गुण धारण करने की प्रेरणा देते हैं जिनसे अनंत जन्मों के कर्मों की मैल साफ़ हो जाए और आत्मा निर्मल होकर परमात्मा के साथ मिलाप करने के योग्य हो जाए।

माघ मजन संग साधूआ धूड़ी कर इसनान॥—गुरु साहिब कर्मों के नाश और मन तथा आत्मा की निर्मलता के लिए दो साधन बताते हैं: साधु की संगति और नाम का ध्यान। वाणी का यह प्रसंग पहले पढ़ आए हैं: 'संत का संग वडभागी पाईऐ॥ संत की सेवा नाम धिआईऐ॥'[46] साधु की संगति बड़े भाग्य से मिलती है और परमेश्वर का नाम साधु की संगति में ही जपा जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है

महिमा साधू संग की सुनहो मेरे मीता॥
मैल खोई कोट अघ हरे निरमल भए चीता॥[47]

साधु की संगति की महिमा अपार है। साधु की संगति से मन की मैल दूर होती है, करोड़ों घोर पाप नष्ट हो जाते हैं और मन निर्मल हो जाता है।

मन पर संगति का प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। इनसान जैसी संगति करता है, उसकी मनोदशा वैसी बन जाती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे॥
नानक दास इहै सुख मागै मो कउ कर संतन की धूरे॥[48]

चरण धूड़ तेरे जन की होवा तेरे दरसन कउ बल जाई॥
अंम्रित बचन रिदै उर धारी तउ किरपा ते संग पाई॥[49]

ऐसे प्रसंगों में मनमत त्यागकर सतगुरु की शरण प्राप्त करने और तन-मन से सतगुरु के उपदेश पर अमल करने का भाव प्रकट किया गया है। इनका संबंध सतगुरु के बाहरी स्वरूप से है। इसके साथ ही बहुत-से प्रसंगों में 'चरण धूलि' द्वारा नाम के प्रकाश या सतगुरु के आंतरिक स्वरूप के प्रकाश की ओर भी संकेत किया गया है।

गुरु नानक साहिब का कथन है: 'सबद गुरू सुरत धुन चेला॥'[50] आप समझाते हैं कि गुरु का वास्तविक स्वरूप शब्द यानी नाम है, जिसकी पहचान सुरत को अन्तर में जाने से होती है।

गुरु अर्जुन देव वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सद सदा सिंम्रतब्य सुआमी सास सास गुण बोलई॥
बिनवंत नानक धूर साधू नाम प्रभू अमोलई॥[51]

शब्द (नाम) के प्रकाश और संतों के नूरी स्वरूप के प्रकाश से एक ही भाव है और उसको ही संतों की चरण धूलि भी कहा गया है। प्रभु का भक्त इस धूलि के लिए विनती करता है तथा अपनी लिव सदैव नाम के साथ जोड़कर रखता है।

गुरु रामदास जी की वाणी है:

अंम्रित नाम निधान भोजन खाइआ॥
संत जना की धूर मसतक लाइआ॥[52]

नाम के अमृत को ही संतों की चरण धूलि कहा गया है और इसे ही आत्मा का सच्चा भोजन माना गया है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: 'त्रिपत अघावन साचै नाए॥ अठसठ मजन संत धूराए॥'[53]

आप कहते हैं कि मन में सच्चा संतोष भी प्रभु के नाम द्वारा उत्पन्न होता है। संतों की चरण धूलि के स्नान में अठसठ तीर्थों का स्नान समाया हुआ है। प्रत्यक्ष है कि इस चरण धूलि का बाहरी धूलि से कोई संबंध नहीं है।

हर का नाम धिआए सुण सभना नो कर दान॥—गुरु साहिब '*नाम धिआए सुण*' का उपदेश दे रहे हैं। अंदर लिव लगाकर नाम की ध्वनि को सुनने से धीरे-धीरे आत्मा पर लगी पिछले जन्मों के कर्मों की मैल उतर जाती है और आत्मा निर्मल होकर परमात्मा से मिलाप के योग्य बन जाती है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि सतगुरु के उपदेशानुसार अपनी लिव अंतर में नाम के साथ जोड़ो तथा दूसरों को भी नाम के साथ जुड़ने के लिए प्रेरित करो। जिसे घर में दबा हुआ ख़ज़ाना मिल जाए, वह सारे घरवालों को उसके बारे में बताता है। इसी तरह जिस साधक को अंतर में नाम का अमूल्य भंडार मिल जाता है, वह दूसरों को भी अपने अंतर में वह भंडार प्राप्त करने के लिए कहता है। गुरु रामदास जी की वाणी है: 'जन नानक धूड़ मंगै तिस गुरसिख की जो आप जपै अवरह नाम जपावै॥'[54] गुरु साहिब कहते हैं कि गुरु का वह शिष्य धन्य है जो ख़ुद भी नाम का जाप करता है और दूसरों को भी नाम जपने के लिए प्रेरित करता है।

जनम करम मल उतरै मन ते जाए गुमान॥
काम करोध न मोहीऐ बिनसै लोभ सुआन॥

जो साधक साधु की संगति करके नाम के साथ लिव जोड़ लेता है, उसकी आत्मा से जन्मों-जन्मों के कर्मों की मैल उतर जाती है। वह काम, क्रोध के हमले से बच जाता है और लोभरूपी कुत्ता भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह मोह-ममता और आशा-तृष्णा के रोग से भी मुक्त हो जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सबद रते से निरमले तज काम क्रोध अहंकार॥
नाम सलाहन सद सदा हर राखह उर धार॥[55]

जिनकी आत्मा शब्द (नाम) के रंग में रँग जाती है, वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त हो जाते हैं और उनका उस निर्मल हरि में निवास हो जाता है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

गुरमुख हर जीउ सदा धिआवह जब लग जीअ परान॥
गुर सबदी मन निरमल होआ चूका मन अभिमान॥[56]

आप उपदेश देते हैं कि गुरुमुखों की संगति द्वारा सारा जीवन, श्वास-श्वास, अपनी लिव परमेश्वर के शब्द के साथ जोड़कर रखो। इससे मन विषय-विकारों के चंगुल से छूटकर अहंकार के रोग से मुक्त हो जाएगा।

सचै मारग चलदिआ उसतत करे जहान॥—इस समय हम सब माया के प्रभाव के कारण झूठे मार्ग पर चल रहे हैं। हम संसार की शक्लों और पदार्थों के मोह में इतना खो जाते हैं कि हमारा परमात्मा की तरफ़ ध्यान ही नहीं जाता, यदि भूले-भटके परमात्मा के साथ मिलाप की भावना जाग्रत होती भी है तो मनमरज़ी के बहिर्मुखी साधनों में खोए रहते हैं। ये सब झूठे मार्ग हैं जिनके द्वारा न लोक सँवरता है, न परलोक।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि केवल चलते जाना काफ़ी नहीं, मार्ग भी ठीक होना चाहिए। यदि मंज़िल पूर्व की ओर है, लेकिन हम पश्चिम की ओर चलते जाते हैं तो जितना ज़्यादा चलते हैं, उतना अधिक मंज़िल से दूर होते जाते हैं। बिना चले कभी कोई मंज़िल पर नहीं पहुँच सकता, परंतु मनमरज़ी के बजाय हमें परमेश्वर के हुक्म के अनुसार चलना है।

गुरु साहिब संत-सतगुरु की संगति में नाम की कमाई करने को सच्चा साधन और सच्चा मार्ग कहते हैं। इस मार्ग पर चलने से परमेश्वर के साथ मिलाप हो जाता है तथा लोक परलोक दोनों में सच्ची बड़ाई प्राप्त होती है।

अठसठ तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवान॥—जिसने साधु की संगति का लाभ उठाकर नाम के साथ लिव जोड़ ली, उसने मानो अड़सठ तीर्थों में स्नान कर लिया और सब पुण्यों का फल ले लिया। गुरु साहिब नाम के दान को ही सच्चा दान और नाम में स्नान को ही सच्चा स्नान मानते हैं। दूसरा कोई स्नान आत्मा को निर्मल नहीं कर सकता और सतगुरु द्वारा नाम के दान के सिवाय कोई दूसरा दान जीवात्मा को जन्म-मरण की ज़ंजीरों से मुक्त नहीं कर सकता।

संतों ने दो प्रकार की दया मानी है। पहले दूसरों पर दया करना और फिर अपनी आत्मा पर दया करना। परमेश्वर से बिछुड़कर चौरासी के चक्कर में फँसी आत्मा को साधु की संगति और प्रभु के नाम द्वारा पुनः प्रभु में

विलीन करके जन्म-मरण के बंधनों से आज़ाद कर लेना अपनी आत्मा पर सबसे बड़ी दया करना है।

गुरु साहिब ने '*परवान*' शब्द का प्रयोग किया है। संतों की संगति द्वारा नाम के साथ लिव जोड़ना और दूसरों को नाम के साथ लिव जोड़ने में सहायता देना श्रेष्ठ पुण्य और सच्ची जीव दया है जो मालिक के दरबार में स्वीकार होती है और जिसके द्वारा जीव का मालिक के दरबार में स्वागत होता है।

जिस नो देवै दइआ कर सोई पुरख सुजान॥—गुरु साहिब सच्ची बुद्धिमत्ता या सच्चा ज्ञान भी नाम की कमाई को ही मानते हैं। आप कहते हैं कि वास्तव में बुद्धिमान् और ज्ञानवान् वही है जिसको परमात्मा दया करके संतों की संगति द्वारा सच्चे नाम की दात बख़्श देता है।

जिना मिलिआ प्रभ आपणा नानक तिन कुरबान॥
माघ सुचे से कांढीअह जिन पूरा गुर मिहरवान॥

जिनका साधु की संगति में नाम की कमाई के द्वारा परमेश्वर के साथ मिलाप हो जाता है, उन पर बलिहारी जाना चाहिए। ऐसे मालिक के भक्तों, प्यारों और गुरुमुखों की जितनी महिमा की जाए, कम है। माघ के महीने में पवित्र और उज्ज्वल वही हैं जिन्होंने पूरे गुरु की दया से नाम के साथ लिव जोड़ ली है।

फलगुण

फलगुण अनंद उपारजना हर सजण प्रगटे आए॥
संत सहाई राम के कर किरपा दीआ मिलाए॥
सेज सुहावी सरब सुख हुण दुखा नाही जाए॥
इछ पुनी वडभागणी वर पाइआ हर राए॥
मिल सहीआ मंगल गावही गीत गोविंद अलाए॥
हर जेहा अवर न दिसई कोई दूजा लवै न लाए॥
हलत पलत सवारिओन निहचल दितीअन जाए॥

संसार सागर ते रखिअन बहुड़ न जनमै धाए॥
जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाए॥
फलगुण नित सलाहीऐ जिस नो तिल न तमाए॥१३॥

उपारजना=उत्पन्न होना; **सहाई**=सहायक; **जाए**=जगह; **इछ पुनी**=इच्छा पूरी हो गई; **सहीआ**=सखियाँ; **अलाए**=उच्चारण करके, गाकर; **लवै...लाए**=उसकी समानता नहीं कर सकता; **हलत पलत**=लोक-परलोक; **सवारिओन**=सँवार दिया; **रखिअन**=भाव बचा लिया; **बहुड़**=पुनः; **धाए**=दौड़ना; **तमाए**=लोभ, लालच।

सरलार्थः फागुन के महीने का उपदेश देते हुए गुरु साहिब कहते हैं कि जिनके हृदय में हरिरूपी साजन प्रकट हो जाता है, उन्हें आनंद प्राप्त हो जाता है। संतजन परमेश्वर के साथ मिलाप में सहायक सिद्ध होते हैं; उन्होंने कृपा करके जीवात्मा का परमेश्वर के साथ मिलाप करवा दिया है। अब सुहावनी सेज मिल गई है। सब सुख मिल गए हैं और दुःखों के लिए कोई स्थान नहीं रहा। वह प्रभुरूपी वर मिल गया है, जीवात्मा की इच्छा पूरी हो गई है और वह सौभाग्यवती हो गई है। अब सखियाँ मिलकर गोविंद के मंगल गीत गा रही हैं। हरि जैसा अन्य कोई नहीं दिखाई देता। कोई दूसरा उसके जैसा हो ही नहीं सकता, उसकी समानता नहीं कर सकता। उस प्रभु ने कृपा करके मेरा लोक-परलोक सँवार दिया है और मुझे स्थायी परमधाम बख़्श दिया है। उसने संसार सागर से बचा लिया है। अब दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। जिह्वा एक है, मालिक के गुण अनेक हैं। हम उसके चरणों में आकर भवसागर से पार होने के योग्य हो गए हैं। फागुनरूपी मनुष्य जन्म में सदा उस हरि की महिमा करनी चाहिए जिसको तिल भर भी किसी चीज़ का लालच नहीं है।

❖ ***फलगुण अनंद उपारजना हर सजण प्रगटे आए॥***
संत सहाई राम के कर किरपा दीआ मिलाए॥

गुरु साहिब ने इस बारह माहा में 'सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥', 'असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हर राए॥', 'मंघिर माहे सोहंदीआ हर पिर संग बैठड़ीआह॥', 'पोख तुखार न विआपई कंठ मिलिआ हर नाह॥' कहकर परमेश्वर से मिलाप के सुख का उल्लेख किया था। यहाँ गुरु साहिब चार बातें कह रहे हैं ***संत सहाई राम के, कर किरपा दीआ मिलाए, हर सजण प्रगटे आए, फलगुण अनंद उपारजना***—जब परमेश्वर के मिलाप में सहायता करनेवाले संतों के साथ मिलाप हो गया तो उन्होंने दया करके परमेश्वर से मिलाप करवा दिया। वह गुप्त परमेश्वर अंदर ही प्रकट हो गया और मन अवर्णनीय आनंद से भर गया।

जब से आत्मा अपने पति परमेश्वर से बिछुड़कर रचना का अंग बनी, तब से यह वियोग का संताप भोग रही थी। पति से मिलाप कैसे हुआ? आश्विन के महीने में कह आए हैं: 'संत सहाई प्रेम के॥' अब कह रहे हैं: ***संत सहाई राम के कर किरपा दीआ मिलाए॥***—हृदय में परमेश्वर का प्रेम संत ही पैदा करते हैं और प्रभु के साथ मिलाप में सहायता करनेवाले भी संत हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं: 'तैडी बंदस मै कोए न डिठा तू नानक मन भाणा॥ घोल घुमाई तिस मित्र विचोले जै मिल कंत पछाणा॥'[57]—मैं संत-सतगुरुरूपी मित्र बिचौले पर क़ुरबान जाता हूँ जिसने पति की पहचान करवा दी और उसके साथ मिलाप करवा दिया।

सेज सुहावी सरब सुख हुण दुखा नाही जाए॥—अब पति के मिलाप से सब सुख प्राप्त हो गए और दुःख हमेशा के लिए पंख लगाकर उड़ गए। जब तक रोगी का रोग दूर न हो, वह आराम कैसे पा सकता है? जब तक ठीक दवा न मिले, रोग कैसे दूर हो सकता है? वियोग की एकमात्र दवा मिलाप है। इस मिलाप की संजीवनी मिलते ही वियोग के दुःख दूर हो गए और चैन आ गया।

इछ पुनी वडभागणी वर पाइआ हर राए॥—जीवात्मारूपी स्त्री के भाग्य खुल गए। बड़े भाग्य से उसकी अपने पति परमेश्वर के साथ मिलाप की चिरकालीन इच्छा पूरी हो गई। उसको अमर सुहाग की प्राप्ति हो गई और यह सच्ची सुहागिन बन गई। एक अन्य स्थान पर गुरु साहिब का कथन है:

बिरहा लजाइआ दरस पाइआ अमिउ द्रिसट सिंचंती॥
बिनवंत नानक मेरी इछ पुंनी मिले जिस खोजंती॥

नस वंञह किलविखह करता घर आइआ॥
दूतह दहन भइआ गोविंद प्रगटाइआ॥
प्रगटे गुपाल गोबिंद लालन साधसंग वखाणिआ॥
आचरज डीठा अमिउ वूठा गुर प्रसादी जाणिआ॥
मन सांत आई वजी वधाई नह अंत जाई पाइआ॥
बिनवंत नानक सुख सहज मेला प्रभू आप बणाइआ॥[58]

आप कहते हैं कि सतगुरु की कृपा से परमेश्वर के साथ मिलाप से वियोग का दु:ख सदा के लिए दूर हो गया। जिस प्रियतम की अनंत काल से खोज थी, उससे मिलाप हो गया और उसकी अमृतभरी दृष्टि प्राप्त हो गई। पापों, विकारों और यमदूतों का सदा के लिए नाश हो गया। परमेश्वर की कृपा से सहज सुख की प्राप्ति हो गई जिससे वियोग और आवागमन के दु:खों से सदा के लिए छुटकारा मिल गया।

मिल सहीआ मंगल गावही गीत गोविंद अलाए॥
हर जेहा अवर न दिसई कोई दूजा लवै न लाए॥

सचखण्ड में पहुँचकर आत्मा अपने से पहले वहाँ पहुँच चुकी सुहागिनों के साथ मिलकर उस प्रियतम की स्तुति के गीत गाती है। फिर इसको यह समझ आ जाती है कि परमात्मा ही सबसे बड़ा, सबसे ऊँचा और सबसे पवित्र है, दूसरा कोई उस जैसा नहीं है। इस मृत्युलोक में अज्ञानवश इसे परमात्मा छोटा और संसार बड़ा लगता था। सचखण्ड में पहुँचकर परमात्मा बड़ा और बाक़ी सबकुछ तुच्छ प्रतीत होता है।

हलत पलत सवारिओन निहचल दितीअन जाए॥
संसार सागर ते रखिअन बहुड़ न जनमै धाए॥
जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाए॥
फलगुण नित सलाहीऐ जिस नो तिल न तमाए॥

पति परमेश्वर के मिलाप से जीवात्मा के लोक-परलोक सुधर गए। उसे लोक और परलोक दोनों में सच्चा आनंद और सच्ची शोभा प्राप्त हो गई।

फिर इसे वह अमर, अडोल, सदा रहनेवाली अवस्था प्राप्त हो गई जो जन्म-मरण, हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि के द्वैत से परे है, ऊपर है। यह भवसागर से पार हो गई और आवागमन के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो गई। उस अवस्था में पहुँचकर यह विस्मयजनक रह गई। इसे अनुभव हुआ कि उस परमेश्वर की महिमा कर सकना संभव नहीं। उस अवस्था में इसे ज्ञान हो जाता है कि प्रभु के किसी भी कार्य में स्वार्थ या लोभ नहीं होता। वह जो कुछ करता है, शुद्ध प्रेम और दया के भाव से करता है। आत्मा उसकी दया तथा बड़ाई देखकर उस पर बलिहारी जाती है।

जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥
हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥
सरब सुखा निध चरण हर भउजल बिखम तरे॥
प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहे जरे॥
कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सच भरे॥
पारब्रहम प्रभ सेवदे मन अंदर एक धरे॥
माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदर करे॥
नानक मंगै दरस दान किरपा करहो हरे॥१४॥

सरे=पूर्ण हो गए; **खरे**=खोट से रहित, पवित्र; **भउजल**=संसाररूपी समुद्र; **बिखम**=मुश्किल; **बिखिआ**=माया का ज़हर; **धरे**=धारण करके; **नदर**=मेहर; **हरे**=हे हरि।

सरलार्थ: जिस-जिस ने परमेश्वर के नाम का सिमरन किया, उनके सब कार्य पूरे हो गए। जिन्होंने पूर्ण गुरु और परमेश्वर की आराधना की है, वे दरगाह में सच्चे और खरे कहे जाएँगे। सब सुखों का ख़ज़ाना परमेश्वर के चरण हैं, जो उन चरणों से जुड़ गए, विकराल भवसागर से पार हो गए। जिन्होंने हरि चरणों की ओट ले ली, उन्हें उसकी प्रेम भक्ति प्राप्त हो गई। उन्हें माया की अग्नि में जलना नहीं पड़ा। उनके हृदय में विद्यमान झूठ नष्ट हो गए, दुविधा दूर हो गई और वे पूर्ण सत्य से भरपूर हो गए। वे मन में उस पारब्रह्म को

धारण करके उसकी सेवा में लग जाते हैं। जिनपर वह दाता दया कर दे, उनके महीने, दिन, मुहूर्त सब शुभ और सुखदायी हो जाते हैं। नानक प्रभु के दर्शन का दान माँगता है। हे हरि! दया करो और दर्शन बख़्श दो।

❖ ***जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥***
हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥

गुरु साहिब ने 'बारह माहा' में आत्मा के अपने पति परमेश्वर से वियोग के दु:ख और उससे मिलाप के साधन और परमसुख का वर्णन किया है। अंत में आप 'बारह माहा' में अपनी विचारधारा और स्पष्ट करते हैं।

उपरोक्त पंक्तियों को चार भागों में बाँट सकते हैं: *1. जिन जिन नाम धिआइआ 2. तिन के काज सरे 3. हर गुर पूरा आराधिआ 4. दरगह सच खरे*—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जिस किसी ने भी पूरे गुरु की कृपा से नाम का जाप किया, उसके कार्य पूरे हो गए और वह निर्मल, पूर्ण, सच्चा होकर परमेश्वर की दरगाह में प्रवेश पा गया। ऐसे भाग्यशाली का मनुष्य जन्म सफल हो गया। उसका लोक भी सँवर गया और परलोक भी सुधर गया।

जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥—गुरु साहिब ने 'जिन जिन' लिखा है। गुरु नानक साहिब ने 'जप जी' के अंत में 'जिनी नाम धिआइआ' का उपदेश दिया है। गुरु साहिबान ने धर्म, देश, जाति, किसी प्रकार के कर्मकांड या वेश को महत्त्व नहीं दिया। आपने अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष, गोरे-काले, अनपढ़-विद्वान् में ही नहीं, भले और बुरे में भी अंतर नहीं किया। आप फ़रमाते हैं कि जो कोई भी परमेश्वर के नाम के साथ लिव जोड़ता है, वह भवसागर से पार हो जाता है और उसका मनुष्य जन्म सफल हो जाता है।

गुरु अर्जुन साहिब 'बारह माहा' में बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि प्रभु से बिछुड़ी हुई जीवात्मा केवल उसके नाम के अभ्यास द्वारा ही उसके साथ मिलाप कर सकती है। आप 'बारह माहा' के शुरू में कहते हैं: 'नानक की बेनंतीआ कर किरपा दीजै नाम॥' आप चैत के महीने में कहते हैं:

'चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥ संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥' गुरु साहिब प्रभु के आगे नाम की दात के लिए विनती करते हैं क्योंकि प्रभु के साथ मिलाप का सच्चा आनंद उसके नाम द्वारा ही प्राप्त होता है। गुरु साहिब ने बैसाख के महीने में कहा है:

इकस हर के नाम बिन अगै लईअह खोहे॥
दयु विसार विगुचणा प्रभ बिन अवर न कोए॥

परमेश्वर के नाम के बिना उसकी दरगाह में सहारा नहीं मिलता और परमात्मा से बिछुड़ी जीवात्मा मायामय संसार में ही भटकती रहती है। गुरु साहिब ने सावन के महीने में भी कहा है:

सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥
मन तन रता सच रंग इको नाम अधार॥
नानक हर जी मइआ कर सबद सवारणहार॥
सावण तिना सुहागणी जिन राम नाम उर हार॥

आप शब्द या नाम का एक ही अर्थ में प्रयोग करते हुए कहते हैं कि जिस जीवात्मा का प्रभु की दया से शब्द अर्थात् नाम के साथ मिलाप हो जाता है, उसको परमेश्वररूपी पति से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

आप 'बारह माहा' के अंत में कहते हैं:

जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥
हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥

जो लोग पूरे गुरु की सहायता से अपना ध्यान परमेश्वर के नाम के साथ जोड़ लेते हैं, उनका मनुष्य जन्म सफल हो जाता है और वे प्रभु की दरगाह में स्वीकार हो जाते हैं।

गुरु नानक साहिब ने भी 'बारह माहा तुखारी' में परमेश्वर के साथ मिलाप के लिए नाम पर बल दिया है। आपने 'बारह माहा' के पहले छंद में नामरूपी अमृत की महिमा की है। तीसरे छंद के अंत में फिर आप कहते हैं:

'नानक द्रिसट दीरघ सुख पावै गुर सबदी मन धीरा॥' जिस जीवात्मा का प्रभु के नाम या शब्द से मिलाप हो जाता है, उसको परमेश्वर के साथ मिलाप का सच्चा सुख प्राप्त हो जाता है। गुरु नानक साहिब अगहन के महीने का अंत इस तरह करते हैं:

गीत नाद कवित कवे सुण राम नाम दुख भागै॥
नानक सा धन नाह पिआरी अभ भगती पिर आगै॥

जो जीवात्मा प्रभु के नाम से लिव जोड़ लेती है, उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। उसका हृदय प्रभुरूपी प्रियतम की प्रेम भक्ति से भर जाता है और वह उसके चरणों में लीन हो जाती है। गुरु नानक साहिब बैसाख माह के अंत में कहते हैं:

दूर न जाना अंतर माना हर का महल पछाना॥
नानक वैसाखीं प्रभ पावै सुरत सबद मन माना॥

जो जीवात्मा सुरत को परमेश्वर के शब्द के साथ जोड़ लेती है, वह हर तरह की बाहरी भटकन से आज़ाद हो जाती है। उसको शरीररूपी महल के अंदर ही प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

सरब सुखा निध चरण हर—प्रभु के चरण सब सुखों का भंडार हैं। जो उस आनंद रूप प्रभु के साथ मिल गए, आनंद रूप हो गए। ***भउजल बिखम तरे॥***—जिन्होंने परमेश्वर के नाम के साथ लिव जोड़ ली, वे भवसागर से पार हो गए। उनकी आवागमन की फाँसी कट गई। वे बार-बार जन्म लेने और मरने के दुःख से मुक्त हो गए।

प्रेम भगति तिन पाईआ—जिन्होंने प्रभु के प्रेम, सतगुरु के प्रेम और नाम के प्रेम द्वारा परमेश्वर के साथ मिलाप कर लिया, ***बिखिआ नाहे जरे॥***—वे माया की अग्नि से बच गए। जिनको नाम का अमृत मिल गया, उन पर माया का ज़हर असर नहीं कर सकता।

कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सच भरे॥—'कूड़' का अर्थ है माया। 'दुबिधा' का अर्थ है संशय, अनिश्चय। इनसान अनंत काल से दुविधा में

ग्रस्त है। इसके अंदर न प्रभु का विश्वास है, न ही प्रेम है। जब प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन हो गए, तब अनंत काल से मन में चल रहा माया के मोह और प्रभु के प्रेम का द्वंद्व समाप्त हो गया। जब प्रभुरूपी सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन हो गए तो दुविधा, द्वंद्व, अविश्वास, संशय, भ्रम, सब पंख लगाकर उड़ गए। परमेश्वर सत्य और जगत् झूठा प्रतीत होने लगा। मन अनेकता के मोह से निकलकर एक के प्रेम में मग्न हो गया। अंतर्मुख निजी अनुभव ने दुविधा की जड़ ही काट दी।

पारब्रहम प्रभ सेवदे मन अंदर एक धरे॥—जिन्होंने प्रभु की प्रेम भक्ति द्वारा उसके साथ मिलाप कर लिया, वे मन-माया के हर प्रकार के झूठ से मुक्त होकर पूर्ण सत्य का रूप बन गए। वे प्रभुरूपी सत्य में समा गए और प्रभुरूपी सत्य उनमें समा गया। इससे उनको वह ऊँची आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त हो गई जिसमें उनकी लिव पल-पल, श्वास-श्वास उस एक परमेश्वर के साथ जुड़ी रहती है।

माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदर करे॥—जब आत्मा का अपने पति परमेश्वर से मिलाप हो गया, तब उसे सभी महीने, सभी दिन और सभी मुहूर्त सुहावने और सुखदायी प्रतीत होने लगे और दुःख-सुख, मान-अपमान, अच्छे-बुरे के द्वैत भाव से मुक्ति मिल गई। गुरु नानक साहिब अपने बारह माहा में कहते हैं:

बे दस माह रुती थिती वार भले॥
घड़ी मूरत पल साचे आए सहज मिले॥[59]

कोई समय अपने-आप में सुहावना या दुःखदायी, शुभ या अशुभ नहीं है। जिस समय परमेश्वर की ओर ध्यान जाए, जिस समय पति परमेश्वर के दर्शन हो जाएँ, वही समय श्रेष्ठ, सुहावना और शुभ है। गुरु साहिबान ने 'राग तुखारी' और 'राग मांझ' में हर महीने का वर्णन करते हुए बार-बार यह भाव दृढ़ता से हमारे मन में बिठाने का यत्न किया है कि जो भाग्यशाली जीवात्मा संतों की कृपा और नाम की कमाई द्वारा अपने पति परमेश्वर के साथ मिलाप कर लेती है, उसके लिए वह महीना (मनुष्य जन्म) सुख-शांति से भर

जाता है। जो अभागिनें माया के भ्रम में फँसकर पति-परमेश्वर से बिछुड़ी रहती हैं, उनके लिए वह महीना दुःख, चिंता और अशांति का रूप बन जाता है।

गुरु साहिब उपदेश कर रहे हैं कि परमात्मा का बनाया हुआ कोई भी समय बुरा नहीं है। दुःखों का कारण इनसान के कर्म होते हैं, ग्रह नहीं। मनुष्य के सब दुःखों का मूल कारण परमेश्वर और उसके नाम को भुलाकर, मनमरज़ी के कर्मों में प्रवृत्त हो जाना है।

नानक मंगै दरस दान किरपा करहो हरे॥—गुरु साहिब हमारे जैसे निर्बल जीवों की ओर से कुल मालिक के आगे प्रार्थना करते हैं कि हे दयालु प्रभु! दया-मेहर करके हमें भी अपने दर्शन का सौभाग्य बख़्श दे और द्वैत से मुक्त करके पूर्ण एकता की सहज अवस्था प्रदान कर दे।

गुरु साहिब ने 'बारह माहा' के आरंभ में परमात्मा के आगे विनती की थी: 'किरत करम के वीछुड़े कर किरपा मेलहो राम॥' आपने 'बारह माहा' का अंत भी ऐसी ही प्रार्थना के साथ किया है: '*नानक मंगै दरस दान किरपा करहो हरे॥*' गुरु साहिब ज़ोर देकर यह समझा रहे हैं कि परमात्मा के हुक्म से, परमात्मा से बिछुड़ी जीवात्मा केवल उसकी दया से ही उसके साथ मिलाप कर सकती है। इस जीवात्मा को बार-बार प्रभु के आगे दया-मेहर के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

गुरु अर्जुन देव जी द्वारा रचे गए 'बारह माहा' और गुरु नानक साहिब द्वारा रचे गए 'तुखारी राग' के 'बारह माहा' में भावों की गहरी एकता है। दोनों गुरु साहिबान अपनी-अपनी शैली में समान भावों को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

बारह माहा

तुखारी छंत महला १

१ ओ सतगुर प्रसाद

तू सुण किरत करंमा पुरब कमाइआ॥
सिर सिर सुख सहंमा देह सो तू भला॥
हर रचना तेरी किआ गत मेरी हर बिन घड़ी न जीवा॥
प्रिअ बाझ दुहेली कोए न बेली गुरमुख अंम्रित पीवां॥
रचना राच रहे निरंकारी प्रभ मन करम सुकरमा॥
नानक पंथ निहाले सा धन तू सुण आतम रामा॥१॥

आदि ग्रन्थ, पृ. 1107-1110

किरत करंमा=किए हुए कर्म; **पुरब**=पिछले, पूर्व जन्मों के; **सहंमा**=दुःख सहना; **दुहेली**=दुःखी; **बेली**=मित्र; **सुकरमा**=श्रेष्ठ कर्म; **पंथ**=राह; **निहाले**=देख रही है; **धन**=जीवात्मारूपी स्त्री; **आतम रामा**=हे सर्वव्यापक प्रभु।

सरलार्थ: हे प्रभु! तुम सब जीवों को उनके पिछले जन्मों के कर्मों के अनुसार जो दुःख-सुख देते हो, वे सब तुम्हारे हुक्म के अनुसार तथा जीव की भलाई के लिए होते हैं। हे प्रभु! संसार तेरी रचना है, कुछ भी मेरे वश में नहीं है; मुझे तेरे बिना पल भर के लिए भी जीना गवारा नहीं है। मेरे प्यारे! मैं तेरे बिना बहुत दुःखी हूँ, मेरी सहायता करनेवाला यहाँ कोई नहीं है। यदि तेरी कृपा हो जाए, तो मुझे किसी गुरुमुख की शरण में पहुँचकर नामरूपी अमृत प्राप्त हो जाए। प्रभु संपूर्ण रचना में समाया हुआ है, परंतु फिर भी वह रचना से निर्लिप्त है। उस प्रभु को मन में बसाना ही सबसे उत्तम कर्म है। हे सर्वव्यापक परमेश्वर! तुम्हारे दर्शनों की प्यासी जीवात्मारूपी स्त्री तुम्हारी राह देख रही है।

❖ ***तू सुण किरत करंमा पुरब कमाइआ॥***—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि परमेश्वर सब जीवों के पिछले कर्मों के अनुसार दुःख-सुख देकर कर्मों का भुगतान करवा रहा है। वह प्रभु जो भी करता है, ठीक करता है। 'बीज बोवस भोग भोगह कीआ अपणा पावए॥'[1] परमात्मा निर्लेप है। वह दोस्ती या दुश्मनी के भाव से सुख-दुःख नहीं देता। न ही वह कभी ग़लती कर सकता है। वह जो कुछ करता है, उसके पीछे कोई कारण और जीव की भलाई का उद्देश्य छिपा होता है।

हर रचना तेरी किआ गत मेरी—संसार भी प्रभु की रचना है, जीव भी प्रभु की रचना है। स्वतंत्रता चित्रकार या नाटककार को होती है, चित्र या पात्र को नहीं। परमात्मा द्वारा सृजित रचना पूरी तरह से उसकी रज़ा के अनुसार चल रही है। यहाँ जीव का वश नहीं चलता। जो कुछ होता है परमेश्वर का किया ही होता है। ***हर बिन घड़ी न जीवा॥***—जिस जीवात्मा के अंदर परमात्मा का प्रेम बस जाता है, उसके लिए प्रभुरूपी प्रियतम के बिना पल-पल गुज़ारना कठिन हो जाता है।

प्रिअ बाझ दुहेली कोए न बेली गुरमुख अंम्रित पीवां॥—जीवात्मा प्रियतम के बिना बिलकुल अकेली है। अपने-आपको वह दुःख में घिरी महसूस करती है। उसे रचना में कोई भी अपना सच्चा मित्र, संबंधी और मददगार दिखाई नहीं देता। वह यही प्रार्थना करती है कि प्रभु की कृपा से उसे किसी गुरुमुख की शरण में पहुँचकर नामरूपी अमृत मिल जाए, ताकि उसका अपने पति परमेश्वर से वियोग दूर हो जाए और अमर जीवन की प्राप्ति हो जाए। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

इक सजण सभ सजणा इक वैरी सभ वाद॥
गुर पूरै देखालिआ विण नावै सभ बाद॥[2]

यदि प्रभुरूपी साजन साथ है तो सारा संसार साजन या मित्र दिखाई देता है, पर यदि वह प्रियतम साथ नहीं तो कुछ भी साथ नहीं, सब कुछ व्यर्थ है। उस प्रियतम का दीदार पूरे गुरुमुख द्वारा नाम के साथ लिव जोड़ने से प्राप्त होता है। गुरुमुख और नाम के बिना सबकुछ व्यर्थ है। वह परमेश्वर सृष्टि

की रचना करके भी इससे निर्लिप्त है। 'आद निरंजन प्रभ निरंकारा॥ सभ मह वरतै आप निरारा॥'[3] वह प्रभु सब में रमा होने के बावजूद सबसे निर्लिप्त है। जीव परमेश्वर को भूलकर उसके द्वारा रचित सृष्टि में मस्त होकर अनेक प्रकार के कर्म कर रहे हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि सब से उत्तम कर्म उस कर्ता को मन में धारण करना है, उस कर्ता के साथ प्रेम करना है। जीवात्मारूपी स्त्री प्रार्थना करती है: हे मेरे पति परमेश्वर! मैं तेरी राह देख रही हूँ, तू कृपा करके मुझे अपना दीदार बख़्श दे।

बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआ॥
सा धन सभ रस चोलै अंक समाणीआ॥
हर अंक समाणी जा प्रभ भाणी सा सोहागण नारे॥
नव घर थाप महल घर ऊचउ निज घर वास मुरारे॥
सभ तेरी तू मेरा प्रीतम निस बासुर रंग रावै॥
नानक प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा कोकिल सबद सुहावै॥ २॥

बाबीहा=पपीहा; **प्रिउ बोले**=पीहू-पीहू करता है; **कोकिल**=कोयल; **बाणीआ**=वाणी बोलती है भाव कू-कू करती है; **चोलै**=भोगती है; **नव घर**=नौ द्वार—दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुँह, मल-मूत्र की दो इंद्रियाँ; **थाप**=बनाना; **रावै**=रमना; **चवै**=बोलता है; **सबद**=शब्द के साथ।

सरलार्थ: पपीहा 'पीहू-पीहू' बोलता है, कोयल 'कू-कू' करती है। जो जीवात्मारूपी स्त्री अपने पति परमेश्वर के संग रहती है, वह सारे सुख-आनंद भोगती है। जब वह प्रभु को प्यारी लगती है तभी वह उसके साथ जुड़ पाती है। इस प्रकार वह सच्ची सुहागिन बन जाती है। प्रभु ने शरीर के नौ द्वार सांसारिक कार्य-व्यवहार के लिए बनाए हैं। वह निज घर जिसमें उसका निवास है, इन नौ द्वारों से बहुत ऊँचा है। हे प्रभु! जो कुछ है सब तेरा है, सारी सृष्टि तेरी है। तू मेरा प्रियतम है, मैं दिन-रात तेरे प्रेम के रंग में रँगी हुई हूँ। जैसे पीहू-पीहू करता हुआ पपीहा सुंदर लगता है, मीठी बोली बोलती हुई कोयल सुंदर लगती है, वैसे ही शब्द के साथ जुड़ी हुई आत्मारूपी स्त्री सुंदर लगती है।

❖ गुरु साहिब कहते हैं कि जैसे पपीहा पीहू-पीहू की रट लगाए रहता है और कोयल मीठी बोली बोलती है, उसी प्रकार प्रभुरूपी प्रियतम के प्रेम के रंग में रँगी जीवात्मारूपी स्त्री सदा उस प्रियतम के शब्द की मीठी बोली बोलती है। प्रभु का प्रेम, प्रभु के नाम का सुमिरन उसके जीवन का आधार बन जाता है। जब वह प्रभु को भाती है तो उसके प्रेम और उसके सुमिरन द्वारा प्रभु में समा जाती है। इस प्रकार वह सच्ची सुहागिन बन जाती है। उसका अपने अविनाशी सुहाग के साथ मिलाप हो जाता है।

आत्मा का उस अमर सुहाग से मिलाप कहाँ हुआ? उसे कहीं बाहर नहीं भटकना पड़ा। शरीररूपी घर में उसका पति-परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया। **नव घर थाप महल घर ऊचउ निज घर वास मुरारे॥**—आप कहते हैं कि शरीर के नौ द्वार सांसारिक कार्य-व्यवहार के लिए बनाए गए हैं, जबकि प्रभु का निवास दसवें द्वार के ऊपर स्थित ऊँचे और पवित्र महल में है।

तू सुण हर रस भिंने प्रीतम आपणे॥
मन तन रवत रवंने घड़ी न बीसरै॥
किउ घड़ी बिसारी हउ बलिहारी हउ जीवा गुण गाए॥
ना कोई मेरा हउ किस केरा हर बिन रहण न जाए॥
ओट गही हर चरण निवासे भए पवित्र सरीरा॥
नानक द्रिसट दीरघ सुख पावै गुर सबदी मन धीरा॥ ३॥

रस भिंने=रसीले भाव प्रेम रूप; **रवंने**=रमे हुए; **बीसरै**=भूलना; **धीरा**=धैर्य पाया या मिला।

सरलार्थः हे प्रेम रूप मेरे प्रियतम! मेरी विनती सुन। हे मेरे तन-मन में रमे हुए प्रभु! मैं तुझे एक पल के लिए भी भूल नहीं पाती। मैं तुझे भुला भी कैसे सकती हूँ? मैं तुझ पर क़ुरबान जाती हूँ और तेरी याद के सहारे ही ज़िंदा हूँ। तेरा गुणगान ही मेरे जीवन का आधार है। तेरे सिवाय मेरा कोई नहीं, मैं भी तेरे सिवाय किसी की नहीं हूँ। मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकती। अब तेरी शरण में आ गई हूँ, तेरे चरणों में निवास कर लिया है। इस प्रकार मेरा रोम-रोम

निर्मल हो गया है। तेरी दया दृष्टि से मुझे स्थायी आनंद मिल रहा है। मुझे गुरु मिल गया है और उसके शब्द यानी नाम द्वारा मन को सच्चा धैर्य मिल गया है।

❖ गुरु साहिब यहाँ प्रभु को रसीला अर्थात् प्रेम रूप प्रियतम कह रहे हैं। वह प्रियतम कहीं बाहर नहीं है: **मन तन रवत रवंने**—वह अंदर है और रोम-रोम में समाया हुआ है। **घड़ी न बीसरै**—जो अंदर उसके साथ लिव जोड़ लेता है, वह प्रियतम को पल भर के लिए भी नहीं भूलता। **किउ घड़ी बिसारी**—गुरु साहिब कहते हैं कि मैं अपने प्राणों से प्यारे प्रियतम को कैसे भुला सकता हूँ? **हउ जीवा गुण गाए॥**—आप कहते हैं कि मेरा जीवन तेरी महिमा, तेरी स्तुति, तेरे सुमिरन के सहारे क़ायम है। **ना कोई मेरा**—प्रभु परमेश्वर के सिवाय संसार में मेरा कोई मित्र-संबंधी नहीं है। मेरा एकमात्र सच्चा संबंधी वह परमात्मा ही है। **हउ किस केरा**—न मेरा कोई और है, न ही मैं किसी और का हूँ। मेरे प्रेम का आधार केवल एक परमात्मा है। मेरा एकमात्र आसरा वह प्रभु-प्रियतम है। **हर बिन रहण न जाए॥**—मैं उसके बिना अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता। **ओट गही हर चरण निवासे**—मैंने उस हरि के चरण कमलों का आश्रय लिया है, उसके चरण कमलों को अपना निवास स्थान बना लिया है। मैं उसके चरण कमलों को छोड़कर कहीं और नहीं जाना चाहता। **भए पवित्र सरीरा**—उसकी संगति में रहकर मेरा रोम-रोम पवित्र हो गया है। **नानक द्रिसट दीरघ सुख पावै गुर सबदी मन धीरा॥**—सतगुरु के शब्द से जुड़कर मन स्थिर और शांत हो गया है। इस प्रकार प्रियतम की कृपा भरी दृष्टि से मुझे अपार आनंद की प्राप्ति हो गई है।

बरसै अंम्रित धार बूंद सुहावणी॥
हर सिउ प्रीत बणी साजन मिले सहज सुभाए॥
हर मंदर आवै जा प्रभ भावै धन ऊभी गुण सारी॥
घर घर कंत रवै सोहागण हउ किउ कंत विसारी॥
उनव घन छाए बरस सुभाए मन तन प्रेम सुखावै॥
नानक वरसै अंम्रित बाणी कर किरपा घर आवै॥ ४॥

सहज=सहज ही, स्वाभाविक रूप से; **सुभाए**=प्रेम में; **मंदर**=शरीररूपी घर में; **धन**=स्त्री; **ऊभी**=खड़े होकर, उठकर भाव सचेत होकर; **सारी**=धारण करती है; **कंत**=प्रभु पति; **रवै**=आनंद मानती है; **उनव**=झुककर; **सुखावै**=सुखदायक लगता है।

सरलार्थः अमृत की धारा बरस रही है, सुहावनी बूँदा-बाँदी हो रही है। उस हरि के साथ प्रेम पैदा हो गया है और वह प्रियतम सहज रूप से ही मिल गया है। वह हरि, शरीररूपी मंदिर में तभी प्रकट होता है जब उसे अच्छा लगे। फिर जीवात्मारूपी स्त्री सचेत होकर उसके गुण गाती है। सुहागिनें घट-घट में व्याप्त हरिरूपी पति की संगति का आनंद लेती हैं, पर मेरे पति ने मुझे क्यों भुला दिया है? बादल बरसने के लिए तैयार हैं। प्रभु का प्रेम तन-मन को सुखदायक लगता है। अमृतवाणी की वर्षा हो रही है। नानक की विनती है कि हे हरि! कृपा करके मेरे हृदयरूपी घर में आ जाओ।

❖ ***बरसै अंम्रित धार बूंद सुहावणी॥***
हर सिउ प्रीत बणी साजन मिले सहज सुभाए॥
हर मंदर आवै जा प्रभ भावै धन ऊभी गुण सारी॥

गुरु साहिब ने पीछे कहा था: 'नानक द्रिसट दीरघ सुख पावै गुर सबदी मन धीरा॥' अब कह रहे हैं कि सतगुरु की कृपा से अंदर नामरूपी अमृत की मीठी, प्यारी, सुहावनी धारा बरस रही है। जिस प्रियतम के मिलाप के लिए संसार के जीव लाखों प्रकार के यत्न कर रहे हैं, गुरु-कृपा से नाम के द्वारा सहज ही मेरे हृदयरूपी घर में उसके साथ मिलाप हो गया है। पहले मन में संसार का मोह समाया हुआ था और परमेश्वर के साथ प्रेम करना असंभव प्रतीत होता था। अब हालत बिलकुल बदल गई है। अब मन हरि के प्रेम से बिंध गया है। मन में परमेश्वर की प्रीति ने घर कर लिया है। उसे जब मंजूर होता है तब ही वह शरीररूपी हरि मंदिर में प्रकट होता है। जब आत्मारूपी स्त्री उसको भाती है, तब ही वह सावधान होकर प्रभु भक्ति या नाम की कमाई का गुण धारण करती है। गुरु अमरदास जी ने फ़रमाया है:

हर मंदर एह सरीर है गिआन रतन परगट होए॥[4]

यह शरीर परमात्मा का असली मंदिर है। प्रभु ने अपना शब्द भी इसके अंदर ही रखा हुआ है। जब जीवात्मारूपी प्रेमिका अंदर शब्द के साथ लिव जोड़ लेती है, तो कायारूपी हरिमंदिर का सृजन करनेवाला हरि अंदर स्वयं ही प्रकट हो जाता है और आत्मारूपी स्त्री सच्ची सुहागिन बन जाती है।

घर घर कंत रवै सोहागण हउ किउ कंत विसारी॥—जीवात्मारूपी प्रेमिका शिकायत करती है कि हे मेरे प्रियतम! तुमने अनेक भाग्यशाली जीवात्माओं के हृदय में प्रकट होकर उनको सुहागिन बना लिया, पर मुझे ही क्यों भुला दिया है? तू मुझे भी दर्शन देकर सुहागिन बना दे। वास्तव में परमेश्वर सबके अंदर समान रूप से विद्यमान है। लेकिन जिन जीवात्माओं के अंदर वह प्रकट नहीं हुआ, वे समझती हैं कि मालिक ने उन्हें भुला दिया है।

सब घट मेरा साइयां सूनी सेज न कोय॥
बलिहारी वा घट की जा घट परगट होय।[5]

गुपत परगट तूं सभनी थाई॥ गुर परसादी मिल सोझी पाई॥
नानक नाम सलाहे सदा तूं गुरमुख मंन वसावणिआ॥[6]

वास्तविक महिमा उस घट की है जिसमें गुरु-कृपा से शब्द की कमाई के द्वारा परमात्मा प्रकट हो जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि सच्ची सुहागिन वही है जो अंदर बैठे सुहाग को पल भर के लिए भी नहीं भुलाती।

उनव घन छाए बरस सुभाए मन तन प्रेम सुखावै॥
नानक वरसै अंम्रित बाणी कर किरपा घर आवै॥

जब प्रभुरूपी प्रियतम मन में आ बसता है तो उसकी शब्दरूपी वाणी की मीठी, प्यारी धारा अंतर में बरसती रहती है। जीवात्मा पूरी तरह से उस प्रेमभरी सुखदायक धारा में भीग जाती है। उसके रोम-रोम में प्रियतम के प्रेम और उसके मिलाप का आनंद छाया रहता है। ज्ञानी हरबंस सिंह जी लिखते हैं: ''यह प्रेम भक्ति और सहज अवस्था का दर्शन गुरु साहिब

का निजी अनुभव है। यह अवस्था हर एक को प्राप्त नहीं होती। हर एक जीवात्मारूपी स्त्री पति को नहीं पुकारती। यह तो कोई विरहिणी आत्मा ही आशावान होकर उसे पुकारती है:

आसावंती आस गुसाई पूरीऐ॥
मिल गोपाल गोबिंद न कबहू झूरीऐ॥[7]

"अगर आंतरिक भावों की ओर विचार करें तो जितना भी रूपक शब्दावली का प्रयोग हुआ है, उसका एक अलग रहस्य है। 'बादल' के बरसने का भाव गुरु की अमृतवाणी अर्थात् अमृत दृष्टि का बरसना है। 'बूँद' नाम की प्रतीक है। 'बरस मेघ जी तिल बिलम न लाउ॥ बरस पिआरे मनह सधारे होए अनद सदा मन चाउ॥'[8] यह उस सुहावनी बूँद की महिमा है, यहाँ बुद्धि का सुहावना हो जाना प्रकरण के अनुकूल है। सुहागिनें कौन हैं? जो गुरुमुख हैं। उनके चिह्न का वर्णन गुरबानी में इस तरह किया गया है:

नानक सोहागण का किआ चिहन है
अंदर सच मुख उजला खसमै माहे समाए॥[9]

"जिनको उठते बैठते नाम नहीं भूलता, उनकी मन तन प्रेम सुखावै॥ की अवस्था बनी रहती है। घर घर कंत का भाव है कि परमेश्वर प्रत्येक हृदय में व्याप्त है, उसको मैं कैसे भुलाऊँ। यह साजन के साथ बनी प्रीत का अत्यंत अनुपम और सुंदर वर्णन है जो प्रत्येक जीवात्मारूपी स्त्री को पति से मिलाप के लिए प्रेरित करता है।"[10]

चेत बसंत भला भवर सुहावड़े॥
बन फूले मंझ बार मै पिर घर बाहुड़ै॥
पिर घर नही आवै धन किउ सुख पावै बिरह बिरोध तन छीजै॥
कोकिल अंब सुहावी बोलै किउ दुख अंक सहीजै॥
भवर भवंता फूली डाली किउ जीवा मर माए॥
नानक चेत सहज सुख पावै जे हर वर घर धन पाए॥५॥

भवर=भँवरे; **सुहावड़े**=सुहावने, सुंदर; **बार**=खुले मैदानों में, बार के इलाके में; **पिर**=पति; **बाहुड़ै**=लौट आए; **धन**=आत्मारूपी स्त्री; **छीजै**=क्षीण होता है, टूटता है; **अंब**=आम; **अंक**=हृदय में; **मर**=मृत्यु; **माए**=हे मेरी माँ; **वर**=पति, सुहाग; **घर**=अंदर, प्रभु का घर तो शरीर है; **पाए**=मिल गए।

सरलार्थ: चैत के महीने में बसंत का सुहावना मौसम प्यारा लगता है। इस महीने में खुले मैदानों में वनस्पति खिली हुई होती है, बेलों पर फूल लगे होते हैं। फूलों के आस-पास मँडराते भँवरे सुंदर लगते हैं। ऐसे में यदि मेरा प्रियतम घर लौट आए, तो मेरे घर में भी बहार आ जाए। जिस जीवात्मारूपी स्त्री का प्रभुरूपी पति अंदर प्रकट न हो, उसे ख़ुशी या आनंद नहीं मिल सकता। उसका तन-मन वियोग की पीड़ा से छीजता जाता है, फटता जाता है। कोयल आम के वृक्ष पर बैठी मीठी बोली बोलती है, पर विरहिणी के लिए वियोग का दर्द असह्य हो जाता है। भँवरे डाल-डाल पर फूलों के आस-पास मँडराते हैं, परंतु मेरे लिए वियोगभरा जीवन बिताना कठिन हो गया है। हे माँ! वियोग के इस दर्द से मैं मर क्यों न जाऊँ? गुरु नानक साहिब कहते हैं कि यदि हरिरूपी पति अंतर में प्रकट हो जाए तो जीवात्मारूपी पत्नी को सहज सुख की प्राप्ति हो जाए।

❖ पिछले छंदों में गुरु साहिब ने जीवात्मारूपी स्त्री के प्रभुरूपी पति परमेश्वर के साथ मिलाप के सहज सुख का वर्णन किया है। यह छंद तुखारी राग की मंगलमयी भूमिका है। चैत के महीने के साथ बारह माहा का आरंभ होता है।

'बारह माहा' स्वाभाविक तौर पर बदलते मौसम, बदलती ऋतुओं और उनके अनुसार बदलती प्रकृति के साथ संबंधित है। गुरु नानक साहिब ने सारे 'बारह माहा' में यही भाव व्यक्त किया है कि बाहरी वातावरण तभी सुहावना लगता है यदि मन प्रफुल्लित हो। यदि मन में शांति हो तो कोई भी कष्ट दुःखदायी प्रतीत नहीं होता। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: 'सुखीए कउ पेखै सभ सुखीआ रोगी कै भाणै सभ रोगी॥'[11] गुरु नानक साहिब एक

ओर चैत के महीने के सुंदर सुहावने बसंत के मौसम का वर्णन करते हैं, तो दूसरी ओर अपने पति परमेश्वर के वियोग में तड़प रही जीवात्मा की पीड़ा बयान करते हैं। ***मै पिर घर बाहुड़ै॥***—पत्नी कहती है कि जब तक मेरा प्रियतम घर नहीं आता, मेरे लिए चैत का, बसंत का सुंदर-सुहावना मौसम किसी काम का नहीं। हर ओर वनस्पति खिली हुई है पर विरहिणी का मन मुरझाया हुआ है। जब तक प्रियतम घर नहीं आता, विरहिणी का तन-मन अवर्णनीय, असह्य दु:ख से जल रहा प्रतीत होता है। कोयल आम पर बैठी मीठी बोली बोलती है। उसे आम की छाया प्राप्त है, पर विरहिणी अकेली है। उसको पति का आसरा, पति की छाया प्राप्त नहीं है, उसके लिए पति का वियोग असह्य है। भँवरे फूलों के आस-पास मँडरा रहे हैं, पर विरहिणी का मन किस फूल के इर्द-गिर्द मँडराए? भँवरा आनंदित हो रहा है, पर विरहिणी के लिए यह सब मौत के समान है। वह पति के बिना ज़िंदा रहने के बजाय मर जाना बेहतर समझती है। यदि परमात्मारूपी पति घर आ जाए तो मनुष्य-जन्मरूपी चैत के महीने में आत्मारूपी पत्नी को भी अमर, अविनाशी सुख की प्राप्ति हो जाए। उसके सब दु:ख दूर हो जाएँ और उसे भी परम आनंद प्राप्त हो जाए। गुरु अंगद देव जी का कथन है:

नानक तिना बसंत है जिन्ह घर वसिआ कंत॥
जिन के कंत दिसापुरी से अहिनिस फिरह जलंत॥[12]

जिनका पति घर में है, उनके लिए सदा बसंत है, पर जिन्हें पति का वियोग है, जिनका पति दूर है, वे सदा उसके वियोग की अग्नि में जलती रहती हैं। गुरु अमरदास जी इसी भाव को इस प्रकार भी प्रकट करते हैं:

नानक तिना बसंत है जिना गुरमुख वसिआ मन सोए॥
हर वुठै मन तन परफड़ै सभ जग हरिआ होए॥[13]

जिनकी सुरत सतगुरु की दया से अंदर शब्दरूपी परमेश्वर के साथ जुड़ जाती है, उनके लिए मनुष्य जन्म बसंत के समान आनंद भरा बन जाता है।

वैसाख भला साखा वेस करे॥
धन देखै हर दुआर आवहो दइआ करे॥
घर आउ पिआरे दुतर तारे तुध बिन अढ न मोलो॥
कीमत कउण करे तुध भावां देख दिखावै ढोलो॥
दूर न जाना अंतर माना हर का महल पछाना॥
नानक वैसाखीं प्रभ पावै सुरत सबद मन माना॥६॥

साखा=शाखा, टहनी; **दुतर**=दुस्तर (जिसको तैरना मुश्किल हो); **अढ**=आधी कौड़ी; **मोलो**=मूल्य; **ढोलो**=प्यारा।

सरलार्थ: बैसाख का महीना सुहावना लगता है। वृक्षों की टहनियाँ नया वेश धारण किए हुए हैं। जीवात्मारूपी स्त्री द्वार पर खड़ी, हरिरूपी पति की राह देख रही है। वह विनती करती है कि प्रियतम घर आ जाए। मेरे प्यारे! तुम घर आ जाओ, मुझे इस दुस्तर भवसागर से पार उतार लो, तुम्हारे बिना मैं आधी कौड़ी की भी नहीं हूँ। यदि कोई गुरुमुख प्यारा स्वयं प्रियतम के दर्शन करके मुझे भी दर्शन करवा दे, तो प्रभु, मैं तुझे अच्छी लगने लगूँ। अगर मैं तुझे भा जाऊँ तो फिर मेरा मूल्य कौन दे पाएगा अर्थात् मैं अनमोल हो जाऊँगी। फिर मैं प्रियतम को दूर न समझूँगी। वह मेरे अंतर में ही है और मैं उसे शरीररूपी महल में ही पहचानकर उसके मिलाप का आनंद लेती रहूँगी। गुरु साहिब कहते हैं कि यदि बैसाख में सुरत शब्द से जुड़ जाए तो इससे मन शांत हो जाएगा और परमात्मारूपी प्रियतम से मिलाप हो जाएगा।

❖ बैसाख में वृक्षों की सुंदर टहनियाँ ताज़े नये पत्तों से सजी हैं, अर्थात् रंग-बिरंगी टहनियाँ सुंदर दिखाई देती हैं। इन सुंदर सुहावने दृश्यों को देख रही पति से बिछुड़ी जीवात्मारूपी स्त्री का ध्यान बार-बार अपने प्रभुरूपी पति की ओर जाता है। वह प्रियतम की राह देखती है। गुरु रामदास जी का कथन है:

पंथ दसावा नित खड़ी मुंध जोबन बाली राम राजे॥
हर हर नाम चेताए गुर हर मारग चाली॥[14]

प्रियतम की राह देख रही भोली-भाली आत्मारूपी स्त्री को सतगुरु ने नाम के साथ जोड़कर प्रभु के साथ मिला दिया। कबीर साहिब का कथन है:

पंथ निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा॥
उर न भीजै पग ना खिसै हर दरसन की आसा॥
उडहो न कागा कारे॥ बेग मिलीजै अपुने राम पिआरे॥
कह कबीर जीवन पद कारन हर की भगति करीजै॥
एक आधार नाम नाराइन रसना राम रवीजै॥[15]

जीवात्मारूपी स्त्री के हृदय में प्रियतम प्रभु के दर्शनों की तीव्र प्यास है। उसकी आँखें प्रियतम की राह पर एकटक लगी हुई हैं और वह गहरी लंबी साँस लेती हुई उसका इंतज़ार कर रही है। फिर कौवे को संबोधित करते हुए कहती है कि वह जल्दी उड़कर उसके प्रियतम के पास जाकर उसका संदेश उस तक पहुँचाए। वह चाहती है कि प्रियतम जल्दी से जल्दी आकर दर्शन दे। कबीर साहिब उपदेश देते हैं कि ऐसे समय यदि लिव नाम के साथ जोड़ ली जाए तो विरहिणी को अपने अंदर ही प्रभु प्रियतम के दर्शन हो जाएँ।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

मिटे अंधारे तजे बिकारे ठाकुर सिउ मन माना॥
प्रभ जी भाणी भई निकाणी सफल जनम परवाना॥
भई अमोली भारा तोली मुकत जुगत दर खोल्हा॥
कहो नानक हउ निरभउ होई सो प्रभ मेरा ओल्हा॥[16]

प्रभु प्रियतम के साथ मिलाप के बिना जीवात्मारूपी स्त्री मानहीन, बलहीन और निकम्मी है। जब इसका मिलाप उस प्रियतम के साथ हो जाता है तो यह अमूल्य हो जाती है। फिर इसको किसी की मोहताजी नहीं रहती। इसका जन्म सफल हो जाता है। इसके लिए मुक्ति का द्वार खुल जाता है और यह प्रभु की शरण प्राप्त करके पूरी तरह निर्भय हो जाती है।

यह सारा परिवर्तन कैसे हुआ? ***देख दिखावै ढोलो॥***—जिस गुरुमुख ने ख़ुद प्रभुरूपी प्रियतम का दीदार किया है, वह जीवात्मा को भी उसका दीदार करवा देता है। किस तरह? ***अंतर माना***—गुरुमुख जीवात्मा को हर तरह की बहिर्मुखी भक्ति और भटकन से निकालकर, अंतर में प्रभु की खोज करने की युक्ति सिखा देता है। ***सुरत सबद मन माना॥***—जब साधक गुरुमुखों की समझाई हुई युक्ति के अनुसार अंदर सुरत को शब्द में लीन कर देता है, तो मन शांत हो जाता है और आत्मा प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी वीचार॥
सबद सुरत सुख ऊपजै प्रभ रातउ सुख सार॥[17]

आप कहते हैं कि मन को वश में करने की एकमात्र दवा नाम है। जब मन को नाम में लीन करते हैं तो मन ठहर जाता है। फिर सुरत शब्द में लीन होकर आनंद रूप परमेश्वर में समा जाती है।

माह जेठ भला प्रीतम किउ बिसरै॥
थल तापह सर भार सा धन बिनउ करै॥
धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा॥
साचै महल रहै बैरागी आवण देह त आवा॥
निमाणी निताणी हर बिन किउ पावै सुख महली॥
नानक जेठ जाणै तिस जैसी करम मिलै गुण गहिली॥७॥

थल=रेतीले स्थान; **सर**=की तरह; **भार**=भट्ठी; **धन**=जीवात्मारूपी स्त्री; **सारेदी**=सँभालती है अर्थात् याद करती है; **सारी**=याद करती हूँ; **करम**=दया से; **गहिली**=ग्रहण करनेवाली।

सरलार्थ: जेठ का महीना अच्छा है अर्थात् प्रभु के साथ मिलाप का सुंदर अवसर है। इस लिए प्रियतम को क्यों भुलाया जाए? धरती भट्ठी की तरह तप रही है, जीवात्मारूपी स्त्री अपने प्रभुरूपी पति के वियोग की तपन में जलती हुई प्रभु से मिलाप के लिए प्रार्थना करती है कि मेरे अंदर प्रभु भक्ति का, नाम की कमाई का गुण पैदा

हो जाए, तभी मैं पति को अच्छी लग सकती हूँ। इसलिए मुझे वह गुण धारण करना चाहिए। प्रभुरूपी प्रियतम निर्लिप्त होकर शरीररूपी सच्चे महल में विराजमान है। जब वह महल में आने दे, तब ही मैं उसके महल में आ सकती हूँ। मैं हरि के बिना एकदम दीन-हीन और निर्बल हूँ। जब तक हरि की कृपा न हो, मुझे उसके महल में पहुँचने का सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? गुरु नानक साहिब कहते हैं कि जेठ में जो जीवात्मारूपी स्त्री अपने पति प्रभु की दया से उससे मिल जाती है, उसके अंदर पति के गुण समा जाते हैं और वह उसका रूप बन जाती है।

❖ चैत-बैसाख की बसंत ऋतु के बाद जेठ के महीने में धरती गर्मी से तपती है। रेतीले स्थान तो भट्ठी की तरह तपने लगते हैं। भाव यह है कि परमात्मा से बिछुड़ी जीवात्मा को संसार भट्ठी के समान तपता हुआ महसूस होता है, इस लिए वह परमात्मा के आगे मिलाप के लिए प्रार्थना करती है। कुल मालिक की दया से उसे ऐसा लगता है कि वह अपनी बल-बुद्धि के द्वारा कभी भी परमेश्वर के साथ मिलाप नहीं कर सकती। परमेश्वर के साथ मिलाप केवल उसकी दया-मेहर से ही हो सकता है। गुरु साहिब ने 'जप जी' में फ़रमाया है: 'करमी आवै कपड़ा नदरी मोख दुआर॥'[18]—मनुष्य जन्म पिछले कर्मों के अनुसार मिलता है, पर परमात्मा के साथ जब भी मिलाप होता है, उसकी दया-मेहर से होता है। ***आवण देह त आवा॥***—परमात्मा शरीर के अंदर है, पर वह निर्लिप्त होकर अपने महल में विराजमान है। कोई जीव अपनी इच्छा से उसके महल के अंदर दाख़िल नहीं हो सकता। जो कोई उसके महल में पहुँचता है, उसकी रज़ा से पहुँचता है।

परमात्मा किस आधार पर किसी जीव पर दया करता है, यह बात मनुष्य की समझ से बाहर है। संसार के अनेक नेक, गुणवान् लोग परमात्मा का नाम सुनने के लिए तैयार नहीं जबकि कई हत्यारे, डाकू, कसाई अचानक संतों की संगति में पहुँचकर संत-महात्मा बन जाते हैं। जिस मालिक ने

अपने हुक्म से जीव को संसार में भेजा है, केवल वही जानता है कि उसने कब अपनी रहमत से जीव को अपने साथ मिलाना है। जिस जीवात्मा पर उस मालिक की रहमत हो जाती है, वह उसके साथ मिलकर उसके सब गुण धारण कर लेती है और उसमें समाकर उसका ही रूप हो जाती है:

सूरज किरण मिले जल का जल हूआ राम॥
जोती जोत रली संपूरन थीआ राम॥[19]

जिस प्रकार सूर्य की किरण सूर्य में मिलकर तथा सागर की बूँद सागर में समाकर उसका रूप हो जाती है, इसी तरह आत्मा की ज्योति प्रभु की परम ज्योति में समाकर उसका रूप बन जाती है।

मिट्टी में मिली पानी की बूँद सूर्य की तपिश से भाप बनकर बादलों में समा जाती है या नदी में मिलकर समुद्र में समा जाती है। सूर्य की किरण केवल दिखने में सूर्य से अलग लगती है, वास्तव में वह हमेशा सूर्य का अंग होती है। इसी प्रकार आत्मा मन, माया और कर्मों की मैल से मुक्त होकर अपना असली स्वरूप प्राप्त कर लेती है और अपने स्रोत उस परमेश्वर में समाकर उस जैसी ही हो जाती है।

आसाड़ भला सूरज गगन तपै॥
धरती दूख सहै सोखै अगन भखै॥
अगन रस सोखै मरीऐ धोखै भी सो किरत न हारे॥
रथ फिरै छाइआ धन ताकै टीड लवै मंझ बारे॥
अवगण बाध चली दुख आगै सुख तिस साच समाले॥
नानक जिस नो इह मन दीआ मरण जीवण प्रभ नाले॥८॥

सोखै=सूख जाती है; **भखै**=तपती है; **रस**=जल; **धोखै**=सुलग-सुलगकर; **किरत**=कर्तव्य; **रथ**=भाव सूर्य; **टीड**=टिड्डा; **लवै**=टीं-टीं करता है; **समाले**=सँभालती है भाव जुड़ी रहती है।

सरलार्थ: आषाढ़ के महीने में सूर्य आकाश में तपता है। धरती दुःख सहती है, सूख जाती है और आग उगलती है। सूर्य का ताप धरती

का पानी सुखा देता है। धरती सुलग-सुलगकर मरती है पर फिर भी अपना कर्तव्य नहीं त्यागती। आकाश में सूर्य का रथ घूमता है। स्त्री पति की छाँव माँगती है। वन में टिड्डा टीं-टीं करता है। जो जीवात्मारूपी स्त्री अपने कर्मों की गठरी सिर पर रख लेती है, समझो उसने दु:खों की पोटली सिर पर रख ली है। वह यहाँ भी दु:ख भोगती है, आगे भी दु:ख पाती है। सुख केवल उसको मिलता है जो प्रभुरूपी सत्य के साथ जुड़ जाती है। जो सुहागिन अपने-आपको अपने प्रभुरूपी पति को समर्पित कर देती है, उसका पति इस जीवन में भी उसका साथ निभाता है और आगे भी सदा उसके साथ रहता है।

❖ गुरु साहिब बताते हैं कि आषाढ़ के महीने में सूर्य बहुत अधिक तपता है, धरती पर आग बरसती है। धरती का पानी सूख जाता है। सूर्य आकाश में रथ की तरह घूमता है। ***छाइआ धन ताकै***—जिस प्रकार इस मौसम में लोग सूर्य की तपिश से बचने के लिए छाया ढूँढ़ते हैं, उसी प्रकार जीवात्मारूपी स्त्री परमात्मारूपी पति की छाया चाहती है, उसका सहारा ढूँढ़ती है।

अवगण बाध चली दुख आगै सुख तिस साच समाले॥—एक ओर मनमुख हैं जो मनमरज़ी के कर्म करके सिर पर अवगुणों की भारी गठरी रख लेते हैं। वे इस लोक में भी दु:खी रहते हैं और परलोक में भी दु:ख भोगते हैं। वे अपने ही किए कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार जन्म लेते और मरते हैं। इसके विपरीत गुरुमुख लोग शब्द यानी परमात्मारूपी सत्य के साथ लिव जोड़कर भवसागर से पार हो जाते हैं। वे इस लोक और परलोक में भी सुख और शोभा पाते हैं। ***नानक जिस नो इह मन दीआ मरण जीवण प्रभ नाले॥***—जो जीवात्मारूपी स्त्री अपना अस्तित्व प्रभुरूपी प्रियतम में विलीन कर देती है, वह सदा अपने पति परमेश्वर के अंग संग रहती है। वह परमेश्वर जीते-जी भी सदा उसके साथ रहता है और मरने के बाद भी कभी उसका साथ नहीं छोड़ता।

सावण सरस मना घण वरसह रुत आए॥
मै मन तन सहु भावै पिर परदेस सिधाए॥
पिर घर नही आवै मरीऐ हावै दामन चमक डराए॥
सेज इकेली खरी दुहेली मरण भइआ दुख माए॥
हर बिन नीद भूख कहो कैसी कापड़ तन न सुखावए॥
नानक सा सोहागण कंती पिर कै अंक समावए॥ ९॥

सरस=खिलना, प्रसन्न होना; **घण**=बादल; **सहु**=पति; **सिधाए**=चला गया है; **हावै**=आहें भरकर; **दामन**=बिजली; **खरी दुहेली**=बहुत दु:खी; **सुखावए**=अच्छा लगना; **कंती**=पति वाली स्त्री; **अंक**=गोद में; **समावए**=समाती है।

सरलार्थ: हे मेरे मन! सावन आ गया है। बादल बरस रहे हैं, तू अब ख़ुश हो जा। मुझे अपना पति तन-मन से अच्छा लगता है, पर वह परदेस चला गया है। यदि पति घर न लौटा तो मैं आहें भरती मर जाऊँगी। बिजली चमककर मुझे डराती है। अकेली सेज बहुत दु:खदायी लगती है। मेरी माँ! ऐसा दु:खदायी जीवन मृत्यु के समान है। हरिरूपी पति के बिना नींद कैसे आ सकती है, भूख कैसे लग सकती है? उसके बिना तन पर बढ़िया से बढ़िया कपड़ा भी अच्छा नहीं लगता। गुरु नानक साहिब कहते हैं कि सुहागिन वही है जिसका पति के साथ मिलाप हो गया है, जो अपने प्यारे में समा गई है।

❖ वर्षा की ऋतु में जीवात्मारूपी स्त्री पतिरूपी परमेश्वर का साथ ढूँढ़ती है पर पति परदेस चला गया है और उसका मिलाप नसीब में नहीं है। ***पिर घर नही आवै मरीऐ हावै***—प्रियतम के बिना उसका समय आहें भर-भरकर गुज़रता है। ***सेज इकेली खरी दुहेली***—पति के बिना ख़ाली सेज उसे खाने को आती है, ***मरण भइआ दुख माए॥***—यह दु:खदायी जीवन मृत्यु के समान प्रतीत होता है। पति के बिना खाना-पीना, सोना, हार-शृंगार कुछ भी नहीं भाता। पति से बिछुड़ी दुहागिन सुख की कल्पना भी नहीं कर सकती। ***सा सोहागण कंती***—जिसका पति के साथ मिलाप हो गया है, केवल वही सुहागिन पति के मिलाप का आनंद पाती है।

भादउ भरम भुली भर जोबन पछुताणी॥
जल थल नीर भरे बरस रुते रंग माणी॥
बरसै निस काली किउ सुख बाली दादर मोर लवंते॥
प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा बोले भुइअंगम फिरह डसंते॥
मछर डंग साइर भर सुभर बिन हर किउ सुख पाईऐ॥
नानक पूछ चलउ गुर अपुने जह प्रभ तह ही जाईऐ॥१०॥

भरम=भ्रम; **जोबन**=जवानी में; **नीर**=पानी से; **बरस रुते**=वर्षा की ऋतु में; **रंग माणी**=मौज करूँ; **बाली**=स्त्री; **दादर**=मेंढक; **लवंते**=बोलते हैं; **चवै**=बोलता है; **भुइअंगम**=साँप; **डसंते**=डंक मारते हैं; **साइर**=सरोवर, तालाब; **सुभर**=लबालब।

सरलार्थः भादों के महीने में भ्रम में भूली स्त्री भरी जवानी में पश्चात्ताप करती है। वर्षा की ऋतु है। भूमि और तालाब पानी से भरे हुए हैं। वर्षा ऋतु मौज-मस्ती का मौसम है। काली रात है, वर्षा हो रही है, मेंढक और मोर बोल रहे हैं, विरहिणी स्त्री कैसे सुखी हो? पपीहा पीहू-पीहू बोलता है, साँप डंक मारते फिरते हैं, मच्छर काटते हैं, तालाब लबालब भरे हुए हैं। इस मौज-मस्ती की ऋतु में भी हरि के बिना सुख कैसे पाएँ? गुरु नानक साहिब कहते हैं कि चलकर अपने गुरु से हरि का ठिकाना पूछ लो, क्योंकि जहाँ हरि है, वहीं जाना चाहिए।

❖ दूसरे महीनों की तरह भादों के महीने में भी एक ओर बाहरी प्रकृति का वर्णन है तो दूसरी ओर जीवात्मा की पति परमेश्वर से विरह की मनोदशा चित्रित की गई है।

किउ सुख बाली—पति से बिछुड़ी स्त्री को सुख कैसे मिल सकता है? इस विचार को मुख्य रखते हुए पहली तीन पंक्तियों में कहा गया है कि स्त्री पूरे यौवन में है, निःसंदेह जल-थल पानी से भरपूर हैं और मौज-मस्ती का मौसम है, रात को बिजली चमकती है, मेंढक और मोर बोलते हैं। ***बिन हर किउ सुख पाईऐ॥***—पति परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा सुख कैसे पा सकती है? अगली दो पंक्तियाँ इसी भाव को प्रकट करती हैं। पानी से भरे हुए सरोवर, साँप तथा मच्छरों के डंक, अनेक प्रकार के दुःखों-कष्टों के सूचक

हैं जिनमें जीवात्मा बुरी तरह घिरी हुई है। पपीहा स्वाति बूँद के लिए तड़पता हुआ पीहू-पीहू करता है। इसी तरह जीवात्मारूपी स्त्री अपने पति परमेश्वर के साथ के लिए तड़पती है। गुरु नानक देव जी उसे समझाते हैं कि जाकर गुरु से हरि का पता पूछ लो, क्योंकि हरि को वहीं ढूँढ़ना चाहिए जहाँ वह है। ग़लत स्थान पर खोज करने से व्यर्थ का भटकाव तो होगा ही, मिलाप भी कभी नहीं हो सकेगा। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

भूले कउ गुर मारग पाइआ॥ अवर तिआग हर भगती लाइआ॥
जनम मरन की त्रास मिटाई॥ गुर पूरे की बेअंत वडाई॥[20]

गुरु साधक को ग़लत रास्ते से हटाकर सही रास्ते पर डालता है। वह उसे ग़लत प्रकार की भक्ति से हटाकर सही भक्ति में लगाता है। इस तरह वह जीवात्मा को आवागमन के बंधनों से मुक्त करके परमेश्वर के साथ मिला देता है।

असुन आउ पिरा सा धन झूर मुई॥
ता मिलीऐ प्रभ मेले दूजै भाए खुई॥
झूठ विगुती ता पिर मुती कुकह काह सि फुले॥
आगै घाम पिछै रुत जाडा देख चलत मन डोले॥
दह दिस साख हरी हरीआवल सहज पकै सो मीठा॥
नानक असुन मिलहो पिआरे सतिगुर भए बसीठा॥११॥

असुन=असोज के महीने में; **पिरा**=हे प्रियतम, हे पति; **झूर**=झुर-झुरकर, आहें भर-भरकर; **मेले**=मिला ले; **दूजै भाए**=दूसरे के प्यार में खोकर; एक परमात्मा के सिवाय किसी दूसरी वस्तु के साथ प्यार करने को 'दूजै भाइ' कहा गया है; **खुई**=गुम हो गई, कुमार्ग पर पड़ी; **विगुती**=भटकती हुई; **मुती**=परित्यक्ता, पति द्वारा छोड़ी हुई; **कुकह**=पिलछी; **काह**=सरकंडा; **घाम**=तपिश, गर्मी; **पिछै**=गर्मी के बाद; **चलत**=चरित्र, कौतुक; **दह दिस**=सब दिशाओं में, हर जगह; **सहज**=धीरे-धीरे; **बसीठा**=बिचौलिया।

सरलार्थः असोज के महीने में स्त्री विनती करती है कि हे मेरे प्रियतम! तू आकर दर्शन दे, तेरी पत्नी तेरे वियोग में आहें भर-भरकर

मर रही है। वह पति के साथ तभी मिल सकती है यदि तू स्वयं उसे अपने साथ मिला ले। हे मेरे प्रियतम, मैं आपको छोड़कर अन्य चीज़ों में खो गई हूँ, कुमार्ग पर पड़कर भटक रही हूँ। जो झूठे संसार के मोह में फँस गई है, वह पति द्वारा त्याग दी जाती है। पिलछी की झाड़ियों और सरकंडे में सफ़ेद फूल आ गए हैं। मैंने पहले गर्मी की ऋतु वियोग में काटी थी, आगे सर्दी का मौसम आ रहा है। इस कौतुक को देखकर मन विचलित होता है। हर तरफ़ हरी-भरी शाखाएँ और हरियाली है। धीरे-धीरे पकनेवाले फल सदैव मीठे होते हैं। हे प्यारे! तू मनुष्य-जन्मरूपी असोज के इस महीने में आ मिल, तुमसे मिलाने के लिए मेरे सतगुरु बिचौलिया बन गए हैं।

❖ ***सा धन झूर मुई॥***—गुरु साहिब बार-बार परमेश्वररूपी पति से बिछुड़ी आत्मारूपी पत्नी के असह्य दुःख की ओर ध्यान खींचते हैं। पति के वियोग में स्त्री दुःख से सूखकर मर रही है।

दूजै भाए खुई॥ झूठ विगुती ता पिर मुती—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जीवात्मा प्रभुरूपी पति के साथ प्रेम करने के बजाय, संसार की शक्लों और पदार्थों के प्रेम में खो गई। यह 'एक' से प्रेम करने के बजाय 'अनेक' के मोह जाल में फँस गई। परिणाम यह हुआ कि प्रभुरूपी पति ने भी उसकी ओर से ध्यान हटा लिया। उसकी अवस्था एक परित्यक्ता (पति द्वारा त्यागी हुई स्त्री) के समान हो गई। जिन शक्लों और पदार्थों के साथ उसने प्यार डाल लिया, वे झूठे, नाशवान् और अधूरे हैं; जिसके कारण यह जीवनकाल में भी दुःखी रही और आगे के लिए भी दुःखों की पोटली सिर पर बाँधकर ले गई। ***आगै घाम पिछै रुत जाडा***—अब इसको आगे-पीछे दुःख ही दुःख, संकट ही संकट दिखाई देते हैं। जब प्रभु की कृपा से इसको यह एहसास होता है कि एक प्रभुरूपी पति के प्रेम के सिवाय दूसरी हर चीज़ का प्रेम इसके भटकने का असली कारण है, तो यह प्रभु के आगे विनती करती है। ***असुन मिलहो पिआरे सतिगुर भए बसीठा॥***—अब तो मैंने सतगुरु के उपदेश पर अमल करना शुरू कर दिया है, इसलिए हे प्रभु, तुम से मिलाने के लिए

सतगुरु मेरे बिचौलिया बन गए हैं। अनेक की भक्ति के स्थान पर केवल एक की भक्ति करनी शुरू कर दी है और बाहर की भटकन त्यागकर अंदर नाम के साथ लिव जोड़ ली है, इसलिए आप कृपा करके अनंतकाल के दुःखदायक वियोग को मिलाप के स्थायी आनंद में बदल दें।

बाबा फ़रीद का कलाम है:

फरीदा राती वडीआं धुख धुख उठन पास॥
धिग तिन्हा दा जीविआ जिना विडाणी आस॥[21]

सच्ची सुहागिन को प्रियतम के वियोग में रात्रि वर्षों के समान लंबी प्रतीत होती है और उसका तन मन वियोग की आग में तपता है। जो हृदय में प्रियतम के अलावा किसी और की आशा रखती है, उसका जीवन धिक्कार है। बाबा फ़रीद यह भी कहते हैं:

ढूढेदीए सुहाग कू तउ तन काई कोर॥
जिन्हा नाउ सुहागणी तिन्हा झाक न होर॥[22]

आप सावधान करते हैं: हे प्रभुरूपी प्रियतम की खोज कर रही आत्मा! तू यह बात समझ ले कि तेरे अंदर ही कोई दोष है, कमी या कमज़ोरी है। हे नादान! सच्ची सुहागिन का तो स्वप्न में भी पति के सिवाय किसी दूसरी ओर ध्यान नहीं जाता। 'तिन्हा झाक न होर'—सच्ची सुहागिन के प्रेम का आधार उसका पति होता है, उसकी आशा का आधार भी उसका पति होता है और उसके अंदर विश्वास भी एक पति का ही होता है। जो एकचित्त होकर पति में लीन नहीं हुई, वह पति के साथ मिलाप की आशा नहीं रख सकती।

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

डिठी हभ ढंढोल हिकस बाझ न कोए॥
आउ सजण तू मुख लग मेरा तन मन ठंढा होए॥[23]

आत्मा के लिए परमात्मा के सिवाय कोई और सहारा नहीं है। उसे सच्ची शांति केवल अपने पति परमेश्वर के मिलाप से ही मिलती है।

कतक किरत पइआ जो प्रभ भाइआ॥
दीपक सहज बलै तत जलाइआ॥
दीपक रस तेलो धन पिर मेलो धन ओमाहै सरसी॥
अवगण मारी मरै न सीझै गुण मारी ता मरसी॥
नाम भगति दे निज घर बैठे अजहु तिनाड़ी आसा॥
नानक मिलहो कपट दर खोलहो एक घड़ी खट मासा॥१२॥

कतक=कार्तिक मास में; **किरत**=पिछले किए हुए कर्म; **भाइआ**=अच्छा लगा; **रस तेलो**=प्रेम का तेल; **ओमाहै**=उत्साह से, चाव से; **सरसी**=ख़ुशी से खिल जाती है; **सीझै**=सफल होना; **अजहु**=अभी तक; **तिनाड़ी**=उनकी; **खट**=छः।

सरलार्थः जिस तरह प्रभु को मंज़ूर होता है, उसी प्रकार जीव पिछले कर्मों का फल भोगता है। प्रभु के नाम का दीपक तो सहज रूप से प्रज्वलित है, इसमें सारभूत तत्त्व अर्थात् परमात्मा का प्रकाश है। इस दीपक में प्रेमरूपी तेल है। जब जीवात्मारूपी स्त्री का प्रभुरूपी पति के साथ मेल हो जाता है, वह प्रफुल्लित हो जाती है। जो अवगुणों से भरी होती है, उसको न मुक्ति प्राप्त होती है और न ही उसका जीवन सफल होता है। जब तक वह अपना अहंभाव उस गुण निधान प्रभु में विलीन नहीं करती, तब तक उसे सच्ची मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जिनको उस परमेश्वर ने नाम की भक्ति में लगा दिया, वे निज घर में भक्ति करने बैठ गए और उनके अंदर प्रियतम प्रभु के दीदार की तड़प प्रबल हो गई। ऐसी प्रेम में डूबी जीवात्मा प्रार्थना करती है: हे प्रभु! द्वार खोलकर आ मिलो, क्योंकि आपके वियोग में मुझे एक घड़ी का समय छः महीने के समान लंबा प्रतीत होता है।

❖ ***कतक किरत पइआ जो प्रभ भाइआ॥***—पूर्व में किए कर्मों के भुगतान के लिए जीवात्मा आवागमन के चक्कर में पड़ी रहती है और यह सब परमेश्वर की रज़ा के अनुसार होता है। ***'दीपक सहज बलै तत जलाइआ'***—शब्द या नामरूपी दीपक सहज रूप से निरंतर अंदर जल रहा है। बाहरी दीपक जलते हैं, बुझते हैं। कभी तेल ख़त्म हो गया, दीपक बुझ गया,

कभी बत्ती ख़त्म हो गई, दीपक बुझ गया और कभी दीपक ही टूट गया। परमेश्वर का शब्द यानी नामरूपी दीपक सहज रूप से निरंतर जलता रहता है। इसका न कोई आदि है न अंत। गुरु अमरदास जी का कथन है:

एको सबद एको प्रभ वरतै सभ एकस ते उतपत चलै॥
नानक गुरमुख मेल मिलाए गुरमुख हर हर जाए रलै॥[24]

शब्द के रूप में परमेश्वर सर्वव्यापक है और जो कुछ होता है, उसी का किया होता है। गुरु साहिब का कथन है: 'सबद दीपक वरतै तिहु लोए॥ जो चाखै सो निरमल होए॥'[25]

धन ओमाहै सरसी॥—जब आत्मा को अंदर शब्द के दीपक का प्रकाश नज़र आता है तो इसके अंदर सच्चा उत्साह भर जाता है। फिर यह परमात्मा के प्रेम का रूप हो जाती है। ***अवगण मारी मरै न सीझै***—जब तक जीवात्मा परमात्मारूपी पति को भुलाकर संसार के मोह में फँसी रहती है, यह द्वैत-भाव से भरी रहती है। उस हालत में न इसकी हौंमैं मरती है और न ही इसका जन्म सफल होता है। 'सबद मरै सो मर रहै फिर मरै न दूजी वार॥ सबदै ही ते पाईऐ हर नामे लगै पिआर॥'[26]—जब यह अपना अहं शब्द में अर्थात् गुणनिधान परमात्मा में मिटा देती है, तो जन्म-मरण के चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाती है। फिर यह सच्चे अर्थों में जीवनमुक्त हो जाती है। यह अवस्था किस प्रकार बनती है? ***नाम भगति दे निज घर बैठे***—अब यह नाम के साथ लिव जोड़कर शरीर के नौ द्वारों से सिमटकर अंदर दसवें द्वार में पहुँच जाती है।

गुरु साहिब 'बारह माहा' के शुरू में कह आए हैं, 'नव घर थाप महल घर ऊचउ निज घर वास मुरारे॥' शरीर के नौ द्वार सांसारिक कार्य-व्यवहार के लिए हैं। दसवाँ द्वार आत्मा का निज घर है। दसवें घर में पहुँचकर आत्मा पर चढ़े कर्मों और संस्कारों के सब परदे उतर जाते हैं। यह शुद्ध आत्मिक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है और प्रभु से अभेद होने के योग्य बन जाती है। ***अजहु तिनाड़ी आसा॥ नानक मिलहो कपट दर खोलहो एक घड़ी खट मासा॥***—वर्तमान अवस्था में जीवात्मा के अंदर प्रभु का प्रेम सोया हुआ है।

जब यह मन-माया के परदे उतार लेती है, तो वह सोया हुआ प्रेम इतना बलवान् हो जाता है कि फिर आत्मा परमात्मा का पल भर का भी वियोग सहन नहीं करती। संत-महात्माओं की वाणी में विरह के जो मर्मस्पर्शी वर्णन हैं, वे उस जाग्रत हुई, अपना निज स्वरूप प्राप्त कर चुकी आत्मा की, परमात्मा के प्रति तड़प की अभिव्यक्ति है। बाबा फ़रीद का कथन है:

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतान॥
फरीदा जित तन बिरहो न ऊपजै सो तन जाण मसान॥[27]

विरह की तड़प ही मिलाप का सबसे उत्तम साधन है। जो वियोग में तड़पता है वही मिलाप के प्रयत्न करता है। क़ुरबानी उसके लिए करते हैं, जिसकी कमी महसूस करते हैं। दसवें द्वार में पहुँचकर आत्मा को परमात्मा का पल भर का भी वियोग छः महीने के समान प्रतीत होता है। 'इक घड़ी न मिलते ता कलिजुग होता॥ हुण कद मिलीऐ प्रिअ तुध भगवंता॥'[28]—यह हालत हो जाती है।

मंघर माह भला हर गुण अंक समावए॥
गुणवंती गुण रवै मै पिर निहचल भावए॥
निहचल चतुर सुजाण बिधाता चंचल जगत सबाइआ॥
गिआन धिआन गुण अंक समाणे प्रभ भाणे ता भाइआ॥
गीत नाद कवित कवे सुण राम नाम दुख भागै॥
नानक सा धन नाह पिआरी अभ भगती पिर आगै॥१३॥

मंघर=अगहन मास में; **अंक**=भाव अंदर; **रवै**=याद करती है; **पिर**=प्रियतम, पति; **निहचल**=सदा स्थिर रहनेवाला, अविनाशी; **भावए**=अच्छा लगता है; **बिधाता**=सृजनहार; **चंचल**=अस्थिर; **सबाइआ**=सारा; **अभ भगती**=हृदय की भक्ति, सच्ची भक्ति।

सरलार्थः जिस जीवात्मारूपी स्त्री के अंदर प्रभुरूपी पति के गुण समा गए हैं उसे अगहनरूपी मनुष्य जन्म उत्तम प्रतीत होता है। ऐसी गुणवंती प्रभु के गुणों का गान करती है; उसी तरह मुझे भी अविनाशी प्रियतम प्यारा लगता है। वह चतुर, सुजान विधाता जो संसार को अपनी रज़ा के अनुसार चलाता है और कर्मों के लेख लिखता है, सदा स्थिर है। वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अमर है, बाक़ी सारा संसार अस्थिर या नाशवान् है। उस प्रभु का ध्यान और ज्ञान स्वयं प्रभु की रज़ा से ही होता है। उसकी रज़ा हो तो ही उसके गुण हृदय में समाते हैं। ***राम नाम दुख भागै***—बाहर के गीत, नाद और कवियों की रचनाएँ सुनने से नहीं बल्कि राम नाम के साथ लिव जोड़ने से दूर होता है। जीवात्मारूपी स्त्री परमेश्वररूपी पति को प्रेम भक्ति भेंट करती है, वही प्रियतम को प्यारी लगती है।

❖ अगहन का महीना कैसे सार्थक होता है? ***हर गुण अंक समावए॥***—यदि हरि के गुण हृदय में समा जाएँ। 'हर के गुण हर भावदे से गुरू ते पाए॥ जिन गुर का भाणा मंनिआ तिन घुम घुम जाए॥'[29] हरि को हरि जैसे गुण पसंद हैं। हरि के गुण क्या हैं? हरि प्रेम रूप है, ज्ञान रूप है, आनंद रूप है, दया रूप है। ये गुण कैसे धारण किए जाएँ? हरि के साथ लिव जोड़कर। हरि के साथ लिव कैसे जोड़ें? नाम के साथ लिव जोड़कर। जो गुणवती आत्मा नाम के साथ लिव जोड़कर अपने अंदर प्रभु जैसे गुण पैदा कर लेती है, वह सदा उसके प्रेम के रंग में मग्न रहती है और उसको वह अविनाशी पति प्यारा लगता है। वह जगत् का विधाता अमर अविनाशी है। जो झूठे और चलायमान संसार के मोह में फँसे रहते हैं, वे इस संसार से बँधे रहते हैं और जो उस अमर-अविनाशी प्रभु से जुड़ जाते हैं, वे रचना से मुक्त होकर रचयिता का अंग बन जाते हैं।

गिआन धिआन गुण अंक समाणे—सबसे बड़ा गुण उस एक में समा जाना है, सब से ऊँचा ज्ञान-ध्यान उस एक में समा जाना है और यह बड़ाई प्रभु के हुक्म से प्राप्त होती है। ***प्रभ भाणे ता भाइआ॥***—प्रभु केवल उसको प्यारा लगता है जिसको वह प्यारा लगना चाहता है।

गीत नाद कवित कवे सुण राम नाम दुख भागै॥
नानक सा धन नाह पिआरी अभ भगती पिर आगै॥

प्रभु से वियोग का दु:ख प्रभु के नाम के साथ लिव जोड़ने से दूर होता है और प्रभु के साथ मिलाप नाम के साथ लिव जोड़ने से होता है। बाहर के गीत, नाद और कवियों की रचनाएँ सुनने से नहीं, बल्कि राम-नाम के साथ लिव जोड़ने से दूर होता है।

जो नाम के रंग में रँग जाते हैं, वे परमात्मा में समाकर परमात्मा का ही रूप हो जाते हैं। जो कुछ पैदा होता है, नाम में से पैदा होता है। सच्चे ज्ञान का स्रोत भी नाम है। नाम के बिना न मुक्ति मिलती है, न परमात्मा के साथ मिलाप होता है और न ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

पोख तुखार पड़ै वण त्रिण रस सोखै॥
आवत की नाही मन तन वसह मुखे॥
मन तन रव रहिआ जगजीवन गुर सबदी रंग माणी॥
अंडज जेरज सेतज उतभुज घट घट जोत समाणी॥
दरसन देहो दइआपत दाते गत पावउ मत देहो॥
नानक रंग रवै रस रसीआ हर सिउ प्रीत सनेहो॥१४॥

पोख=पूस में; **तुखार**=कोहरा, पाला; **त्रिण**=घास; **वसह**=बसना; **रंग माणी**=आनंद लेते हैं।

सरलार्थ: पूस के महीने में कोहरा (पाला) पड़ता है जो वन और घास के रस को सुखा देता है। हे मेरे प्रियतम! आप आकर दर्शन क्यों नहीं देते? आप मेरे तन-मन में और जिह्वा पर क्यों नहीं बस जाते? गुरु साहिब कहते हैं कि संपूर्ण जगत् को जीवन देनेवाला वह प्रभु तन-मन में रमा तो अवश्य हुआ है, पर उसके मिलाप का आनंद गुरु के बख़्शे शब्द के द्वारा ही पाया जा सकता है। चारों खानियों और सृष्टि के कण-कण में उसका प्रकाश रम रहा है। विरहिणी आत्मा कह रही है कि हे दयालु दाता! दया करके दर्शन दो, ऐसी सुमति बख़्शो कि मुझे तुम्हारे मिलाप की ऊँची गति प्राप्त हो जाए। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि सच्चा प्रेमी उस प्रभु के प्रेम के रंग में रँग जाता है और सदा आनंदित रहता है।

❖ ***आवत की नाही***—जीवात्मा के अंतर से बेबसी की पुकार उठती है। वह आतुर होकर बिलखती है कि प्रभु उसको जल्दी से जल्दी दर्शन क्यों नहीं देता? वह कहती है कि उसका जीवन नीरस हो चुका है। इसलिए वह चाहती है कि उसका प्रियतम प्यारा तन-मन में बस जाए और उसकी जिह्वा पर सदा उसका नाम रहे।

गुर सबदी रंग माणी॥—यह ठीक है कि संपूर्ण संसार को जीवन देनेवाला प्रभु सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है और हर घट में समाया भी हुआ है, पर उसके साथ मिलाप का सौभाग्य गुरु के बख़्शे शब्द द्वारा ही प्राप्त होता है।

घट घट जोत समाणी॥—चारों खानियों में कोई ऐसा जीव नहीं जिसके अंदर परमेश्वर का प्रकाश न हो। सृष्टि का कोई कण ऐसा नहीं जिसमें उस कर्ता का नूर न समाया हो।

दरसन देहो दइआपत दाते—जीवात्मा प्रभु से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे प्रभु! तू दयालु दाता है। तू अपने यश की लाज रखकर अपना दीदार बख़्श दे। तू ख़ुद ही सुमति देकर मेरी कुमति दूर कर दे और मुझे ऊँची अवस्था बख़्शकर दुर्गति से बचा ले।

नानक रंग रवै रस रसीआ हर सिउ प्रीत सनेहो॥—दुनियादार लोग दुनिया की शक़्लों तथा पदार्थों के मोह में फँसे हैं। परमेश्वर का सच्चा भक्त उस सच्चे प्रियतम के प्रेम के रंग में रँगा होता है। उसकी प्रीत का आधार वह प्रियतम होता है। वह अनेक के मोह से मुक्त होकर उस एक के प्रेम में मग्न होता है।

माघ पुनीत भई तीरथ अंतर जानिआ॥
साजन सहज मिले गुण गह अंक समानिआ॥
प्रीतम गुण अंके सुण प्रभ बंके तुध भावा सर नावा॥
गंग जमुन तह बेणी संगम सात समुंद समावा॥
पुंन दान पूजा परमेसुर जुग जुग एको जाता॥
नानक माघ महा रस हर जप अठसठ तीरथ नाता॥१५॥

माघ=माघ मास में; **पुनीत**=पवित्र; **अंतर**=हृदय में; **गह**=ग्रहण करके; **अंक**=गोद में; **समानिआ**=विलीन हो गया, समाना; **अंके**=अंदर बसा; **बंके**=बांके, सुंदर; **सर**=सरोवर में, यहाँ आंतरिक संगम से अभिप्राय है; **नावा**=स्नान करूँ; **बेणी संगम**=वेणी, त्रिवेणी, गंगा, यमुना, सरस्वती के मिलाप का स्थान; **जाता**=जान लिया।

सरलार्थः जिस जीवात्मा ने अपने अंतर में सच्चा तीर्थ ढूँढ़ लिया, वह माघ में पवित्र हो गई। उसका अपने साजन के साथ सहज ही मिलाप हो गया। वह प्रभु के गुण ग्रहण करके उसकी गोद में समा गई। हे मेरे सुंदर प्रियतम! मैंने तेरी पसंद के गुण धारण किए हैं। यदि तुझे भा जाए तो मैं अंतर में तीर्थ-स्नान करके तेरे साथ मिलने के क़ाबिल बन जाऊँ। यदि मेरा अंतर में स्थित त्रिवेणी में स्नान हो जाए तो समझो मेरा सात समुद्रों में स्नान हो गया। जिसने उस एक को पहचान लिया, मानो उसने प्रभु-प्राप्ति के लिए सब दान-पुण्य कर लिए हैं, हर तरह की पूजा-भक्ति कर ली है। माघ के महीने में जिस किसी ने भी प्रभु के नाम का जाप कर लिया, मानो उसने अमृत पी लिया और अड़सठ तीर्थों का स्नान कर लिया।

❖ लोग समझते हैं कि त्रिवेणी या अन्य तीर्थों पर स्नान करने से पिछले पापों की मैल धुल जाती है और आत्मा निर्मल होकर परमात्मा के साथ मिलाप के योग्य बन जाती है। गुरु साहिब लोगों को इस भ्रम से निकालते हैं। ***माघ पुनीत भई तीरथ अंतर जानिआ॥***—आप कहते हैं कि माघ के महीने में जिस तीर्थ पर स्नान करने से आत्मा निर्मल होती है, वह अंदर है। आंतरिक तीर्थ पर स्नान अंदर जाकर ही किया जा सकता है।

साजन सहज मिले गुण गह अंक समानिआ॥—जिसने आंतरिक तीर्थ पर स्नान कर लिया, उसकी मैल उतर गई; वह प्रभु के समान निर्मल हो गई और उस साजन से मिलकर उसी का रूप बन गई।

उस तीर्थ पर स्नान कौन कर सकता है? ***तुध भावा सर नावा॥***—बाहरी तीर्थों पर लाखों लोग मनमरज़ी से स्नान करने जाते हैं। उस आंतरिक तीर्थ पर वही स्नान करने जाता है जिस पर उस मालिक की दया-मेहर होती है।

उस बाँके, अलबेले सर्वशक्तिमान् की रज़ा के बिना कोई उस तीर्थ पर नहीं पहुँच सकता।

उस तीर्थ की क्या निशानी है? ***गंग जमुन तह बेणी संगम***—वहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का मेल होता है। आँखों से ऊपर तीन सूक्ष्म नदियाँ (नाड़ियाँ) हैं। बायीं ओर की नदी (नाड़ी) को इड़ा या यमुना, दायीं वाली को पिंगला या गंगा और बीच वाली को सरस्वती या सुषुम्ना कहते हैं। जहाँ इनका मेल होता है, वहाँ शब्द (नाम) का एक सूक्ष्म सरोवर है जिसको संतों ने त्रिवेणी, संगम, प्रयाग, मानसरोवर या अमृतसर कहा है। गुरु साहिब कहते हैं, ***सात समुंद समावा॥*** और ***अठसठ तीरथ नाता॥*** जिसने उस आंतरिक तीर्थ पर स्नान कर लिया, मानो उसने सात समुद्रों में और अड़सठ तीर्थों पर स्नान कर लिया।

नानक माघ महा रस हर जप—आप समझाते हैं कि आंतरिक प्रयाग या अमृतसर में नामरूपी अमृत में स्नान होता है जिससे आत्मा अत्यंत निर्मल हो जाती है।

माघ के महीने में लोग कई प्रकार का दान-पुण्य करते हैं। गुरु साहिब कहते हैं, ***पुंन दान पूजा परमेसुर जुग जुग एको जाता॥***—जब आत्मा आंतरिक तीर्थ पर स्नान करके हर युग में एक रस, एक रंग, एक रूप रहनेवाले परमेश्वर की पहचान कर ले, तो समझो उसने हर प्रकार का दान-पुण्य कर लिया और हर तरह की पूजा भक्ति कर ली।

फलगुन मन रहसी प्रेम सुभाइआ॥
अनदिन रहस भइआ आप गवाइआ॥
मन मोह चुकाइआ जा तिस भाइआ कर किरपा घर आओ॥
बहुते वेस करी पिर बाझहो महली लहा न थाओ॥
हार डोर रस पाट पटंबर पिर लोड़ी सीगारी॥
नानक मेल लई गुर अपणै घर वर पाइआ नारी॥१६॥

फलगुन=फागुन में; **रहसी**=ख़ुश हो गई; **सुभाइआ**=अच्छा लगा; **अनदिन**=हर रोज़; **रहस भइआ**=आनंद मिला; **चुकाइआ**=दूर किया; **थाओ**=स्थान; **डोर**=बाज़ू-बंद; **पाट पटंबर**=रेशमी वस्त्र; **पिर**=पति ने; **लोड़ी**=ढूँढ़ ली; **सीगारी**=शृंगार कर लिया।

सरलार्थः फागुन के महीने में मन ख़ुश है। प्रभु का प्रेम या प्रेम रूप प्रभु भा गया है । जीवात्मा ने अहंभाव त्याग दिया है जिससे दिन-रात उसके अंदर ख़ुशी ही ख़ुशी, आनंद ही आनंद है। प्रभु को स्वीकार हुआ तो जीवात्मा के मन से दुनिया का मोह दूर हो गया। फिर वह प्रार्थना करती है कि अब आप कृपा करके अंतर में दर्शन दें। पति से बिछुड़ी हुई जीवात्मा ने उससे मिलाप के लिए कई प्रकार के वेश धारण किए पर उसके महल में स्थान न मिला। जिस जीवात्मारूपी स्त्री को प्रभु ने अपने साथ मिला लिया, मानो उसने हर तरह का शृंगार कर लिया और सुंदर से सुंदर वस्त्र पहन लिए। जिस जीवात्मारूपी स्त्री को गुरु ने अपने साथ मिला लिया, उसका अपने अंतर में ही पति परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया।

❖ ***अनदिन रहस भइआ आप गवाइआ॥***—आत्मा और परमात्मा के बीच असल रुकावट हौंमैं की, अहं की है। जिस आत्मा ने प्रभु के प्रेम द्वारा अहंभाव ख़त्म कर लिया, उसका अपने पति परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया और उसके अंदर प्रेम का रस छा गया।

प्रभु पति का प्रेम और अहंकार साथ-साथ नहीं चल सकते, क्योंकि अहंकार अपने-आप से प्रेम है और प्रभु पति का प्रेम ख़ुद के प्रेम का वैरी है। कबीर साहिब का कथन है:

जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहो हम नाही॥
अब हम तुम एक भए हह एकै देखत मन पतीआही॥[30]

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ मह रहा न हूं॥
जब आपा पर का मिट गइआ जत देखउ तत तू॥[31]

गुरु अमरदास का कथन है, 'हउमै नावै नाल विरोध है दुइ न वसह इक ठाए॥'[32]—नाम और अहंकार इकट्ठे नहीं रह सकते।

मन मोह चुकाइआ जा तिस भाइआ—मोह भी अहंकार का ही एक रूप है। जब प्रभु की कृपा से मन से मोह-ममता मिट गए तो मन प्रभु के प्रकाश के प्रकट होने के लिए तैयार हो गया।

बहुते वेस करी पिर बाझहो महली लहा न थाओ॥—जब तक मन में प्रेम की लहर नहीं उठी थी, जीवात्मा मनमरज़ी की अनेक प्रकार की पूजा-भक्ति में लगी रही, पर इससे पति-परमेश्वर के महल में निवास न मिला। गुरु नानक साहिब की ही वाणी है:

प्रेम पराइण प्रीतम राउ॥ नदर करे ता बूझै नाउ॥[33]

प्रभु प्रेम रूप है। उसका नाम उसका रूप है। प्रभु अर्थात् नाम से प्रेम के बिना वह किसी प्रकार प्रसन्न नहीं होता। जब उसकी दया होती है तभी जीवात्मा नाम की महत्ता को समझने लगती है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

प्रेम पदारथ नाम है भाई माइआ मोह बिनास॥
तिस भावै ता मेल लए भाई हिरदै नाम निवास॥[34]

परमात्मा का नाम प्रेम का भंडार है। यह माया-मोह और हौंमैं का नाश करके हृदय में प्रभु का प्रेम बसा देता है। जब प्रभु की दया-मेहर होती है तो हृदय में नाम बस जाता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

अत सुंदर कुलीन चतुर मुख डिआनी धनवंत॥
मिरतक कहीअह नानका जिह प्रीत नही भगवंत॥[35]

सबसे सुंदर, सबसे ऊँचे कुल से संबंधित, सबसे चतुर, सबसे बड़ा ज्ञानी और सबसे बड़ा धनवान भी प्रभु की प्रीत के बिना ज़िंदा लाश के समान है।

हार डोर रस पाट पटंबर पिर लोड़ी सीगारी॥—जिस जीवात्मा का प्रभु अपने प्रेम से शृंगार कर देता है, मानो उसने संसार के सर्वोत्तम शृंगार कर लिए हैं। ***नानक मेल लई गुर अपणै घर वर पाइआ नारी॥***—जिस आत्मा को उसके सतगुरु ने परमेश्वर के नाम के द्वारा परमेश्वर के साथ मिला दिया, वह हर प्रकार के भ्रम से मुक्त हो गई और उसका अपने अंतर में ही प्रियतम प्रभु के साथ मिलाप हो गया।

बे दस माह रुती थिती वार भले॥
घड़ी मूरत पल साचे आए सहज मिले॥
प्रभ मिले पिआरे कारज सारे करता सभ बिध जाणै॥
जिन सीगारी तिसह पिआरी मेल भइआ रंग माणै॥
घर सेज सुहावी जा पिर रावी गुरमुख मसतक भागो॥
नानक अहिनिस रावै प्रीतम हर वर थिर सोहागो॥१७॥

बे दस=2+10=12 (बारह); **थिती**=तिथियाँ; **मूरत**=मुहूर्त दो घड़ियों का होता है; **साचे**=सदा स्थिर प्रभु; **रंग**=आनंद; **घर**=अंतर में; **सुहावी**=सुहावनी लगी; **रावी**=आनंद लेती है; **भागो**=भाग्य; **अहिनिस**=दिन-रात; **रावै**=आनंद लेती है; **वर**=पति; **थिर**=स्थायी।

सरलार्थ: जिस जीवात्मारूपी स्त्री को परमेश्वररूपी पति मिल जाए, उसे सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है और उसके लिए बारह महीने, सब ऋतुएँ, तिथियाँ, वार, हर घड़ी, दिन-रात, पल, मुहूर्त सब शुभ हो जाते हैं। वह प्रभु अंतर्यामी है, उस प्यारे के मिलाप से सब कार्य पूरे हो जाते हैं। जिस परमात्मा ने अपनी दया से आत्मा को सजाया-सँवारा, जब वह ख़ुद उसके साथ प्रेम करता है; तभी आत्मा पति के मिलाप का आनंद प्राप्त करती है। इस प्रकार धुर के लिखे लेख के अनुसार सतगुरु ने उसका पतिरूपी प्रभु के साथ मिलाप करवा दिया और उसे अंतर में अपने पति परमेश्वर का संग प्राप्त हो गया। अब सुहागिन को अमर, स्थायी सुहाग मिल गया है और वह दिन-रात, पल-पल उसके मिलाप का आनंद मान रही है।

❖ ***बे दस माह रुती थिती वार भले॥***
घड़ी मूरत पल साचे आए सहज मिले॥

गुरु साहिब 'बारह माहा' का समापन यह समझाते हुए करते हैं कि बारह महीने, छः ऋतुएँ, पंद्रह तिथियाँ, सातों वार और हर घड़ी, मुहूर्त, पल शुभ और सफल हैं, क्योंकि आत्मा को सहज अवस्था प्राप्त हो गई है और उसका सच्चे परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया है। वह कर्ता सबकुछ करने

में समर्थ है। वह अंतर्यामी है, दिलों की जाननेवाला है। वह प्यारा प्रियतम मिल गया है। सब कार्य पूर्ण हो गए हैं। उस दयालु दाता ने ख़ुद ही जीवात्मा को सजा-सँवारकर अपने प्यार के क़ाबिल बनाया और उसका अपने साथ मिलाप कर लिया। अब जीवात्मा उससे मिलाप का आनंद प्राप्त कर रही है। अब मनुष्य शरीररूपी घर भी सुहावना हो गया है, हृदयरूपी सेज भी सुहावनी है, क्योंकि प्रभु द्वारा लिखे धुर के लेख के अनुसार सतगुरु ने प्रियतम प्रभु से मिला दिया है और प्रियतम की संगति का आनंद प्राप्त हो रहा है। 'आपे मेल लए सुखदाता आप मिलिआ घर आए॥ नानक कामण सदा सुहागण ना पिर मरै न जाए'[36] जीवात्मा को वह अविनाशी वर मिल गया है जो जन्म-मरण, आवागमन, समय-स्थान से परे और ऊपर है। इस तरह वह सच्ची सुहागिन बन गई है और पल-पल अपने प्यारे के साथ आनंदमग्न है। गुरु साहिब ने समय के सुहावने होने को प्रभु-प्यारे के मिलाप के साथ जोड़ा है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सो थान सुहाइआ जो हर मन भाइआ॥[37]

वेला वखत सभ सुहाइआ॥ जित सचा मेरे मन भाइआ॥[38]

वह स्थान धन्य है जहाँ प्यारे प्रभु की ओर ध्यान जाए, वह समय धन्य है जब हृदय में प्रियतम के प्रेम की तरंग उठे।

गुरु अर्जुन देव जी ने विरह का वर्णन इस प्रकार किया है: 'इक घड़ी न मिलते ता कलिजुग होता'[39] और 'इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥' इसी तरह गुरु नानक साहिब ने 'बारह माहा तुखारी' में 'एक घड़ी खट मासा' द्वारा यह भाव व्यक्त किया है कि प्रियतम का एक घड़ी का वियोग छः मास के बराबर है। गुरु साहिबान की संपूर्ण विचारधारा इस भाव के इर्द-गिर्द घूमती है कि परमपिता प्रभु; आवागमन की चक्की में पिस रहे जीव पर दया करके उसे मनुष्य जन्म का अमूल्य वरदान बख़्शता है, ताकि यह प्रभु भक्ति अर्थात् नाम की कमाई के द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करके दुःख के निरंतर गतिशील चक्र से मुक्त होकर सच्चे और स्थायी सुख से युक्त घर में पहुँच जाए। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

भई परापत मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवर काज तेरै कितै न काम॥ मिल साधसंगत भज केवल नाम॥[40]

आप सावधान करते हैं कि मनुष्य जन्म का अनमोल अवसर केवल परमात्मा के साथ मिलाप के लिए ही बख़्शा जाता है। यह कार्य साधु की संगति में नाम के साथ लिव जोड़कर पूरा होता है। जो नाम के साथ लिव जोड़ने के प्रयास में लगा हुआ है, वह परमपिता परमेश्वर का हुक्म मान रहा है और जो अन्य धंधों में फँसा है, वह पिता के हुक्म का उल्लंघन कर रहा है। वह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ रहा, अपना ही नुकसान कर रहा है। 'दुलभ देही पाई वडभागी॥ नाम न जपह ते आतम घाती'[41]—जो नाम नहीं जपते, वे आत्मघात कर रहे हैं, स्वयं अपने हाथों से अपनी जड़ें काट रहे हैं।

प्रभ मिले पिआरे कारज सारे करता सभ बिध जाणै॥
जिन सीगारी तिसह पिआरी मेल भइआ रंग माणै॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि भक्त के सब कार्यों को पूरा करनेवाला वह प्रभु आप है। वह ख़ुद ही अपने प्रेम और नाम द्वारा जीवात्मा का श्रृंगार करता है और ख़ुद ही उसको अपने साथ मिलाप की बड़ाई बख़्शता है।

घर सेज सुहावी जा पिर रावी गुरमुख मसतक भागो॥
नानक अहिनिस रावै प्रीतम हर वर थिर सोहागो॥

जिन जीवात्माओं को प्रभु द्वारा लिखे धुर के लेख के अनुसार किसी सच्चे गुरुमुख की शरण प्राप्त हो जाती है, उनको प्रभु से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। वे भाग्यशाली सुहागिनें सदैव अपने प्रियतम के मिलाप के आनंद में मग्न रहती हैं।

दोनों गुरु साहिबान के बारह माहा में गुरुमुखों की महिमा गायी गई है। बारह माहा मांझ और बारह माहा तुखारी दोनों में प्रभु की प्राप्ति के लिए साधु की अर्थात् संत की, गुरु की, गुरुमुख की आवश्यकता पर बल दिया गया है। गुरु अर्जुन देव जी जेठ मास के शब्द में कहते हैं:

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ किउ रोवंन॥
साधू संग परापते नानक रंग माणंन॥

आप फ़रमाते हैं कि जीव अपने यत्न द्वारा नहीं, केवल साधु की सहायता से ही प्रभु-प्राप्ति का सुख प्राप्त कर सकता है। आप माघ मास के शब्द में कहते हैं:

तन मन मउलिआ राम सिउ संग साध सहेलड़ीआह॥
साध जना ते बाहरी से रहन इकेलड़ीआह॥

जिस जीवात्मा को पूर्ण साधु की संगति प्राप्त हो जाती है, उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। अन्य सभी अकेली रहकर उसके वियोग का दुःख भोगती हैं।

गुरु अर्जुन देव जी असोज महीने के शब्द में कहते हैं: 'संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाए॥' जब तक हृदय में परमेश्वर का प्रेम पैदा नहीं होता, जीवात्मा रचना के मोह से मुक्त होकर परमेश्वर से मिलाप नहीं कर सकती। हृदय में परमेश्वर का प्रेम संतों की संगति द्वारा ही पैदा होता है। गुरु साहिब चैत के महीने के शब्द में कहते हैं:

चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥
संत जना मिल पाईऐ रसना नाम भणा॥

प्रभु के साथ मिलाप का आनंद प्रभु के नाम द्वारा ही प्राप्त होता है और प्रभु के नाम की सूझ संतों द्वारा होती है। गुरु साहिब फागुन के महीने के शब्द में कहते हैं:

फलगुण अनंद उपारजना हर सजण प्रगटे आए॥
संत सहाई राम के कर किरपा दीआ मिलाए॥

आप फ़रमाते हैं कि परमेश्वर से मिलाप का आनंद संतों की सहायता से प्राप्त होता है। आप बारह माहा के अंत में कहते हैं:

जिन जिन नाम धिआइआ तिन के काज सरे॥
हर गुर पूरा आराधिआ दरगह सच खरे॥

आप फ़रमाते हैं कि जो कोई पूरे गुरु की सहायता से परमेश्वर के नाम की आराधना करता है, उसका मनुष्य जन्म सफल हो जाता है और वह परमेश्वर के घर में स्थान पा लेता है।

गुरु नानक साहिब बारह माहा तुखारी के पहले शब्द में कहते हैं: 'प्रिअ बाझ दुहेली कोए न बेली गुरमुख अंम्रित पीवां॥' आप तीसरे शब्द में कहते हैं: 'नानक द्रिसट दीरघ सुख पावै गुर सबदी मन धीरा॥' प्रभुरूपी सुहाग से बिछुड़ी जीवात्मा दु:खों की चक्की में पिस रही है। वह केवल गुरुमुखों की सहायता से नाम का अमृत पीकर ही परमसुख की भागी बन सकती है।

गुरु साहिब असोज मास के शब्द में कहते हैं: 'नानक असुन मिलहो पिआरे सतिगुर भए बसीठा॥'—जब सतगुरुरूपी बिचौलिया मिल जाता है तो सहज ही प्रभु से मिलाप हो जाता है।

आप पूस मास के शब्द में कहते हैं: 'मन तन रव रहिआ जगजीवन गुर सबदी रंग माणी॥' वह प्रियतम अंतर में ही है, परंतु उससे मिलाप का सौभाग्य गुरु के बख़्शे शब्द द्वारा ही प्राप्त होता है।

आप फागुन मास के शब्द में कहते हैं: '*नानक मेल लई गुर आपणै घर वर पाइआ नारी॥*' सतगुरु की सहायता से जीवात्मारूपी स्त्री का अपने अंदर ही प्रभुरूपी पति से मिलाप हो गया। गुरु साहिब 'बारह माहा' के अंत में कहते हैं:

घर सेज सुहावी जा पिर रावी गुरमुख मसतक भागो॥
नानक अहिनिस रावै प्रीतम हर वर थिर सोहागो॥

जब परमेश्वर द्वारा लिखे धुर के लेख के अनुसार सतगुरु से मिलाप हो गया तो आत्मारूपी स्त्री को हरिरूपी अविनाशी वर की प्राप्ति हो गई। इस तरह वह सच्ची सुहागिन बन गई। पहले वह परमात्मारूपी पति के वियोग में जगह-जगह भटकती और तड़पती फिरती थी। सतगुरु की कृपा से अब वह प्रभुरूपी पति के संग पल-पल आनंदित हो रही है।

बारह माहा: एक संदेश

परमात्मा और आत्मा: पति और पत्नी

गुरु साहिब की प्रत्येक वाणी का मूल उद्देश्य जीवात्मा के अंदर प्रभु का प्रेम और उस पर विश्वास पैदा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरु साहिब परमेश्वर के अनेक गुणों पर प्रकाश डालते हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने 'बारह माहा' में परमेश्वर को 'अगम अगाह', 'बेपरवाह', 'समर्थ पुरख', 'गोविंद', 'नारायण', 'राम', 'गोपाल', 'पारब्रह्म', 'सच', 'बंदी मोच', आदि कहकर सराहा है। ये सब शब्द प्रभु को अलख और अगम्य, अनंत, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञाता, सर्वव्यापक, सृजनहार, प्रतिपालक और मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसके साथ ही गुरु साहिब ने प्रभु को 'कंत', 'नाह', 'स्वामी', 'सजण (साजन)', 'प्रीतम', आदि भी कहा है। गुरु नानक साहिब ने 'बारह माहा तुखारी' में परमेश्वर के लिए 'कंत', 'वर', 'सुहाग', 'पिर', 'प्रियतम', 'प्यारे', आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ये सब शब्द परमेश्वर को आत्मा के पति, मालिक, प्रीतम और साजन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन शब्दों से आत्मा और परमात्मा के गहरे आपसी प्रेम का पता चलता है।

आत्मा तथा परमात्मा के आपसी संबंध का संत-महात्माओं ने कई तरह से वर्णन किया है। किसी ने माता तथा पुत्र, किसी ने बाप तथा बेटे और किसी ने पति-पत्नी के रिश्ते से इसकी तुलना की है। 'बारह माहा' में आत्मा और परमात्मा के संबंध को पति-पत्नी के उदाहरणों द्वारा समझाया गया है। जैसे पति के बिना पत्नी की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही परमात्मा के बिना आत्मा के अस्तित्व की कल्पना कैसे की जा सकती है?

बाबा फ़रीद की वाणी है: 'जे जाणा लड़ छिजणा पीडी पाई गंढ॥ तै जेवड मै नाहे को सभ जग डिठा हंढ॥'[1]—गुरु साहिबान और सूफ़ी दरवेशों ने इस बात पर बल दिया है कि अनगिनत आत्माएँ परमेश्वर को प्रेम करती हैं, जीवात्मा का परमेश्वर के सिवा कोई प्रियतम और सहारा नहीं है। दोनों गुरु साहिबान के 'बारह माहा' में व्यक्त विचारों का प्रधान पहलू यह है कि जब तक जीवात्मा संसार के मोह को त्यागकर अपने अंदर गुप्त बैठे अपने पति परमेश्वर के प्रति अपने स्वाभाविक प्रेम को जाग्रत नहीं करती, वह कभी भी सच्चे सुख की भागी नहीं बन सकती।

इसी विचार का दूसरा पहलू यह है कि आत्मा के सब दु:खों का मूल कारण परमेश्वर का वियोग है। पति से बिछुड़ी पत्नी के लिए महल और चौबारे, गहने-कपड़े, मान-सम्मान आदि सुख रूप न होकर दु:ख रूप बन जाते हैं। पति है तो सबकुछ है, पति नहीं है तो सब कुछ व्यर्थ है। पति का प्रेम हर वस्तु की कमी पूरी कर देता है, परंतु दूसरी कोई वस्तु पति के प्रेम की कमी पूरी नहीं कर सकती। गुरु नानक साहिब तुखारी राग के 'बारह माहा' के पहले शब्द की अंतिम पंक्ति में कहते हैं: 'नानक पंथ निहाले सा धन तू सुण आतम रामा॥'—जीवात्मारूपी स्त्री, अपने पति परमेश्वर के आगे विनती करती है कि मैं जब से तुमसे बिछुड़कर रचना का अंग बनी हूँ, तुम्हारी राह देख रही हूँ। तुम कृपा करके मुझे अपना मिलाप बख़्श दो और मेरे वियोग के दर्द को उस मिलाप के आनंद में बदल दो।

दोनों गुरु साहिबान का 'बारह माहा' इस विचार के इर्द-गिर्द घूमता है कि आत्मा के लिए न कोई दूसरी चीज़ उसके पति परमेश्वर की जगह ले सकती है और न ही उसके मिलाप के बिना आत्मा को सच्चा और स्थायी सुख मिल सकता है।

वियोग का दु:ख और मिलाप का सुख

'बारह माहा' के अध्ययन से स्पष्ट है कि विरहिणी आत्मा परमात्मा से बिछुड़कर कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रहे सदा बदलते रहनेवाले मृत्युलोक में भटक रही है। समय का प्रवाह परिवर्तन का सूचक है।

महीने और ऋतुएँ जीवन की सदा बदलती रहनेवाली परिस्थितियाँ हैं। पूर्व कर्मों के अनुसार जीवन में कभी बसंत जैसा ख़ुशी का मौसम आ जाता है और कभी जेठ आषाढ़ की तपिश जैसा दु:खों का समय आ जाता है। कभी जीवन में दु:खों या सुखों की झड़ी लग जाती है और कभी जीवन बर्फ़ के समान जमा हुआ और नीरस प्रतीत होता है। गुरु साहिब यह संदेश देना चाहते हैं कि बसंत, वर्षा, गर्मी, सर्दी, पतझड़ आदि बाहरी बदलते हालात का संबंध मन-इंद्रियों के साथ है, इनका आत्मिक आनंद के साथ कोई संबंध नहीं। गुरु अर्जुन देव जी बारह माहा के आरंभ में विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि पति परमेश्वर से बिछुड़ी जीवात्मा की वही हालत होती है जो दूध न देनेवाली गाय की और पानी के बिना सूख गई खेती की होती है। पति से बिछुड़ी पत्नी को न छत्तीस प्रकार के व्यंजन सुहाते हैं, न सुंदर वस्त्र, गहने, हार-शृंगार सुहाते हैं, न मान-बड़ाई सुहाती है और न ही मित्र-संबंधी। जीवात्मा का दु:ख-सुख मायामय जगत् के बदलते हालात पर नहीं, परमात्मा से दूरी या निकटता पर निर्भर है। 'हर मेलहो सुआमी संग प्रभ जिस का निहचल धाम॥' जीवात्मारूपी स्त्री परमात्मारूपी स्वामी के साथ मिलना चाहती है, क्योंकि उसको पूर्ण और अविनाशी आनंद उसके मिलाप से ही प्राप्त हो सकता है।

गुरु नानक साहिब के तुखारी राग के 'बारह माहा' में भी पति से वियोग के दु:ख और उसके साथ मिलाप के सुख का रंग प्रधान है। गुरु साहिब 'बारह माहा' के शुरू में कहते हैं कि पिछले कर्मों के कारण अपने पति परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा संसार में अनेक दु:ख भोग रही है।

> हर रचना तेरी किआ गत मेरी हर बिन घड़ी न जीवा॥
> प्रिअ बाझ दुहेली कोए न बेली गुरमुख अंम्रित पीवां॥

जो कुछ हो रहा है, प्रभु के हुक्म के अनुसार हो रहा है। 'हर बिन घड़ी न जीवा'—पति प्रभु के वियोग में पल भर भी जीना कठिन है। *'प्रिअ बाझ दुहेली कोए न बेली'*—पति परमेश्वर के सिवाय कोई भी सच्चा संगी-साथी और सहारा नज़र नहीं आता, इसलिए जीवात्मा दु:खों में पिस रही है।

'नानक पंथ निहाले सा धन तू सुण आतम रामा॥'—प्रभुरूपी पति की प्रतीक्षा में खड़ी जीवात्मा उसकी राह देख रही है। वह प्रभु इसका साजन, मीत और स्वामी है। उसके मिलाप के लिए व्याकुल जीवात्मा बार-बार उसके दीदार के लिए विनती करती है।

गुरु साहिब कहते हैं: *'बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआ॥'*—पपीहे को पल भर के लिए चैन नहीं आता। वह पल-पल, क्षण-क्षण स्वाति बूँद के लिए विलाप करता है। उसको स्वाति बूँद के सिवाय सारा दरिया तो क्या, पूरा समुद्र भी दे दिया जाए तो भी उसको शांति नहीं मिलती। आत्मा को भी पपीहे की तरह पति परमेश्वर के सिवाय किसी भी वस्तु से सुख-चैन नहीं मिल सकता।

गुरु साहिब शारीरिक और मानसिक सुखों को आत्मिक आनंद का विकल्प नहीं मानते। शारीरिक और मानसिक सुख सच्चे आत्मिक आनंद का स्थान नहीं ले सकते। *'चेत गोविंद अराधीऐ होवै अनंद घणा॥'*—आप घने अर्थात् भरपूर या पूर्ण आनंद की बात कह रहे हैं। यह आनंद परमात्मा के मिलाप से ही प्राप्त हो सकता है। जीवात्मा का आनंद बाहरी बसंत पर नहीं, आंतरिक बसंत पर निर्भर है। *'जिन पाइआ प्रभ आपणा आए तिसह गणा॥ इक खिन तिस बिन जीवणा बिरथा जनम जणा॥'*—मनुष्य जन्म उसी जीवात्मा का सफल हो सकता है, जिसका प्रभुरूपी प्रियतम के साथ मिलाप हो गया है। उस प्रियतम के बिना जीवन व्यर्थ है।

'बारह माहा तुखारी' में वियोग के दुःख और मिलाप के सुख की अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'चैत' के महीने पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: चैत में बसंत की सुहावनी ऋतु है। वनों में फूल खिले हुए हैं और हर ओर सुंदर सुहावनी हरियाली है। आमों की छाया में बैठी कोयल गा रही है और भँवरे फूलों के आस-पास मंडरा रहे हैं। सुंदर वातावरण तथा बाहरी हरियाली उसकी जुदाई की पीड़ा को और बढ़ा रहे हैं।

पिर घर नही आवै धन किउ सुख पावै बिरह बिरोध तन छीजै॥
नानक चेत सहज सुख पावै जे हर वर घर धन पाए॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि आत्मारूपी पत्नी को मायामय संसार के क्षणभँगुर सुखों में से नहीं, बल्कि पति परमेश्वर के मिलाप से ही सुख मिल सकता है।

गुरु अर्जुन देव जी बैसाख के महीने में सावधान करते हैं कि पुत्र, स्त्री, धन-दौलत और मायामय संसार के सब धंधे झूठे हैं। इनमें से कोई भी चीज़ अंत समय साथ नहीं चलती। परमात्मा के प्रेम और परमात्मा के नाम के बिना जीव के लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। *'वैसाख सुहावा तां लगै जा संत भेटै हर सोए॥'*—मनुष्य जन्म तभी सुहावना है यदि आत्मा को परमेश्वररूपी पति के साथ मिलाप करवानेवाले पूर्ण संत का संग प्राप्त हो जाए।

गुरु नानक साहिब बैसाख के महीने में दो बातें कहते हैं:

घर आउ पिआरे दुतर तारे तुध बिन अढ न मोलो॥
कीमत कउण करे तुध भावां देख दिखावै ढोलो॥

पति परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा का कौड़ी मूल्य नहीं, पर यदि वह परमेश्वर को भा जाए तो आत्मा की क़ीमत आँक सकना ही असंभव हो जाए।

'आसाड़ तपंदा तिस लगै हर नाह न जिंना पास॥'—मनुष्य जन्म में आत्मा को सांसारिक कष्ट तभी दुःख देते हैं यदि उसे अपने पति परमेश्वर का संग प्राप्त न हो। दुःख का संबंध बाहरी कष्टों के साथ नहीं, प्रभु के वियोग के साथ है।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि आषाढ़ के महीने में सूर्य तपिश देता है। हरी भरी फसलें सूख जाती हैं। गर्मी का मारा राही वृक्ष की छाया खोजता है। उसी तरह पति के वियोग के ताप में जल रही स्त्री पति के साथ की छाया चाहती है।

'सावण सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआर॥'—मनुष्य जन्म आत्मा के लिए तभी सुहावना हो सकता है यदि मन में पति परमेश्वर का सच्चा प्रेम है और मन परमात्मारूपी पति के नाम के रंग में रँगा हुआ है।

गुरु नानक साहिब कहते हैं: *'अवगण बाध चली दुख आगै सुख तिस साच समाले॥'*—परमात्मा से बिछुड़ी जीवात्मा संसार में जो भी कर्म करती है,

उनसे उसके सिर पर लदे दु:खों का भार और बढ़ जाता है। ऐसी जीवात्मा यहाँ भी दु:खी रहती है और आगे जाकर भी दु:ख भोगती है। उसको सच्चा सुख तभी प्राप्त हो सकता है यदि उसका प्रभुरूपी पति के साथ मिलाप हो जाए।

पिर घर नही आवै मरीऐ हावै दामन चमक डराए॥
सेज इकेली खरी दुहेली मरण भइआ दुख माए॥
हर बिन नीद भूख कहो कैसी कापड़ तन न सुखावए॥
नानक सा सोहागण कंती पिर कै अंक समावए॥ ९॥

जिस जीवात्मारूपी पत्नी का प्रभुरूपी पति घर नहीं आता, उसको सुखों की बरसात प्रिय नहीं लगती। पति का विरह पल-पल उसके अंदर आग लगाता है। जब पति घर न हो तो बिजली सुहावनी नहीं, डरावनी लगती है। '*मरीऐ हावै*'—पत्नी वियोग के दु:ख में मरी जाती है। जब हृदयरूपी सेज पति परमेश्वर के बिना सूनी नज़र आती है, तो पत्नीरूपी जीवात्मा के लिए जीना दूभर हो जाता है। उसको न नींद आती है, न भूख लगती है, न सुंदर वस्त्र या हार-शृंगार सुहाते हैं। असल सुहागिन वही है जो प्रियतम में समा जाती है और जिसका प्यारे पति के साथ मिलाप हो जाता है।

'*भादुइ भरम भुलाणीआ दूजै लगा हेत॥*'—गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि मनुष्य जन्म का अनमोल अवसर प्राप्त करके परमेश्वर को भुलाकर दुनिया की शक्लों और पदार्थों के साथ मोह उत्पन्न कर लेना तथा उस आनंद स्वरूप परमेश्वर के सिवाय किसी अन्य चीज़ से सुख-शांति की आशा रखना सबसे बड़ी अज्ञानता है।

'*विण प्रभ किउ सुख पाईऐ दूजी नाही जाए॥ जिंन्ही चाखिआ प्रेम रस से त्रिपत रहे आघाए॥*'—मनुष्य-जन्मरूपी असोज मास में परमेश्वर के सिवा किसी से सुख की आशा रखना भी भ्रम है। जिनका प्रेम रूप प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है, उनके अंदर सदा उत्साह और आनंद भरा रहता है और उन्हें स्थायी शांति प्राप्त हो जाती है।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

मछर डंग साइर भर सुभर बिन हर किउ सुख पाईऐ॥
नानक पूछ चलउ गुर अपुने जह प्रभ तह ही जाईऐ॥

प्रभु प्रियतम के बिना सुख कैसे मिल सकता है? इसलिए सतगुरु से मति लेकर परमेश्वररूपी पति की वहाँ खोज करनी चाहिए जहाँ उसका निवास है। आप यह भी फ़रमाते हैं:

निमाणी निताणी हर बिन किउ पावै सुख महली॥
नानक जेठ जाणै तिस जैसी करम मिलै गुण गहिली॥

पति के सहारे के बिना आत्मारूपी पत्नी निर्बल और निकम्मी है। पति का साथ मिल जाए तो यह गुणों से भरपूर हो जाए। पति से बिछुड़ी हुई वह अवगुणों की खान है। जब पति के साथ मिल जाती है तो उसके अंदर पति के सारे गुण समा जाते हैं। वह पति में समाकर पति जैसी ही हो जाती है।

'*दरसन देहो दइआपत दाते गत पावउ मत देहो॥*'—'बारह माहा तुखारी' के पूस महीने में विरहिणी पुकार करती है: हे दयालु! तू दया करके अपना दीदार बख़्श ताकि मेरी हालत सुधर जाए।

'*मंघिर माहे सोहंदीआ हर पिर संग बैठड़ीआह॥*'—मनुष्य-जन्मरूपी अगहन में बड़ाई या शोभा उन जीवात्मारूपी पत्नियों की है जिनका प्रभुरूपी पति के साथ मिलाप हो गया है। '*साध जना ते बाहरी से रहन इकेलड़ीआह॥ तिन दुख न कबहू उतरै से जम कै वस पड़ीआह॥*'—जो जीवात्मारूपी पत्नियाँ संत-सतगुरु की सहायता द्वारा प्रभु के साथ मिलाप नहीं करतीं, वे सदा वियोग में तड़पती रहती हैं और उनको संसार में किए कर्मों के फलस्वरूप यमदूतों की मार खानी पड़ती है।

'*फलगुण अनंद उपारजना हर सजण प्रगटे आए॥*'—मनुष्य-जन्मरूपी फागुन में उन्हीं को सच्चा सुख मिला जिन्हें परमेश्वररूपी सच्चे साजन का दीदार प्राप्त हो गया। '*सेज सुहावी सरब सुख हुण दुखा नाही जाए॥*'—उनके वियोग के दु:ख सदा के लिए दूर हो गए और उन्हें हर प्रकार के सुख प्राप्त हो गए।

गुरु नानक साहिब आगे फ़रमाते हैं:

फलगुन मन रहसी प्रेम सुभाइआ॥
अनदिन रहस भइआ आप गवाइआ॥
मन मोह चुकाइआ जा तिस भाइआ कर किरपा घर आओ॥
बहुते वेस करी पिर बाझहो महली लहा न थाओ॥
हार डोर रस पाट पटंबर पिर लोड़ी सीगारी॥
नानक मेल लई गुर अपणै घर वर पाइआ नारी॥१६॥

जीवात्मा पत्नी, प्रभु प्रियतम के प्रेम में पुलकित है। जब वह प्रभु की कृपा से माया-मोह और हौंमैं से मुक्त हो गई, तो उसके अंदर आनंद भर गया। अब वह प्रियतम के मिलाप के लिए प्रार्थना करती है: '*कर किरपा घर आओ॥*'—पहले उसने मनमरज़ी के बहुत-से यत्न किए, पर उसका प्रियतम के महल में निवास न हुआ। जब हौंमैं को त्यागकर सतगुरु की शरण ले ली और नाम-सुमिरन की बख़्शिश पाकर उसकी आराधना की, तो वह प्रियतम उस पर रीझ गया। फिर उसके सारे हार-शृंगार पूरे हो गए और सतगुरु की कृपा से उसका शरीररूपी घर के अंदर ही परमेश्वररूपी पति के साथ मिलाप हो गया।

गुरु साहिब 'बारह माहा' की समाप्ति इस प्रकार करते हैं:

बे दस माह रुती थिती वार भले॥
घड़ी मूरत पल साचे आए सहज मिले॥
प्रभ मिले पिआरे कारज सारे करता सभ बिध जाणै॥
जिन सीगारी तिसह पिआरी मेल भइआ रंग माणै॥
घर सेज सुहावी जा पिर रावी गुरमुख मसतक भागो॥
नानक अहिनिस रावै प्रीतम हर वर थिर सोहागो॥१७॥

'*आए सहज मिले॥*'—जब आत्मा का अपने पति परमेश्वर के साथ मिलाप हो गया, तो जीवन का हर पल सुंदर और सुहाना प्रतीत होने लगा। प्रियतम के मिलाप से जीवन के सब कार्य पूरे हो गए। पति परमेश्वर ने स्वयं ही

जीवात्मा का शृंगार किया, क्योंकि वह उसको प्यारी है। उसकी कृपा से सतगुरु की संगति करके वह सच्ची सुहागिन बन जाती है और पति के साथ मिलाप का सहज आनंद प्राप्त करती है।

स्पष्ट है कि महीने अनेक हैं पर गुरु साहिब का भाव एक है: जीवात्मा के सब दु:खों का कारण परमात्मा का वियोग है और इन दु:खों की एकमात्र दवा परमात्मा से मिलाप है। परमेश्वर से मिलाप अविनाशी पूर्ण आनंद का अनंत स्रोत होता है जिसकी सूझ संत-सतगुरु द्वारा होती है।